स्व. श्रीमती उषा परिख की स्मृति में : बुवेन विविर संवाद श्रृंखला–2016

(Dedicated to the Memory of Usha Parikh Buven Vivir Dialogue Series - 2016)

"जीवन का अर्थ तथा अर्थपूर्ण जीवन"

संवाद/बैठक सूची

क्रम संख्या	विषय, तिथि तथा स्थान का विवरण	पृष्ठ संख्या
1	**तिथि : 24 अप्रैल 2015,** जीवन का अर्थ और अर्थपूर्ण जीवन (मीनिंग ऑफ लाइफ मीनिंगफुल लाइफ) कमेटी बनाने योजना, स्थान : सेडेड गेस्ट हॉउस	4
2	**Date: 9 May 2015,** Meaning of life and meaningful life At: India International Centre; **Speech by Ravindra Pathak**	11
3	**तिथि : 4 जनवरी 2016** विषय :स्व. श्रीमती उषा परिख की स्मृति में : बुवेन विविर श्रृंखला–2016 (Dedicated to the Memory of Usha Parikh Buven Vivir Series 2016) "जीवन का अर्थ तथा अर्थपूर्ण जीवन" स्थान : इंडिया इंटरनेशनल सेंटर ; **व्याख्यान–अनुपम मिश्र**	64
4	**तिथि : 1 फरवरी 2016** विषय : बुवेन विविर पर सेडेड संवाद श्रृंखला–जीवन का अर्थ और अर्थमय जीवन/लाओडाटो–सी : पारिस्थितिकीय लोकतंत्र के लिए एक खोज स्थान : गांधी शांति प्रतिष्ठान; **व्याख्यान–वीरेन लोबो**	92
5	**तिथि : 7 फरवरी 2016** विषयः बुवेन विविर' पर सेडेड संवाद श्रृंखला–जीवन का अर्थ तथा अर्थपूर्ण जीवन स्थान : चन्द्रशेखर आजाद भवन, नई दिल्ली ; **व्याख्यान–रघु ठाकुर**	129
6	**तिथि : 20 फरवरी 2016** स्व. श्रीमती उषा परिख की स्मृति में : बुवेन विविर श्रृंखला–2016 (Dedicated to the Memory of Usha Parikh Buven Vivir Series 2016) "जीवन का अर्थ तथा अर्थपूर्ण जीवन":**व्याख्यान–सामदोंग रिंपोचे** स्थान : इंडिया इंटरनेशनल सेंटर	178
7	**तिथि : 17 मार्च 2016** स्व. श्रीमती उषा परिख की स्मृति में : बुवेन विविर श्रृंखला–2016 (Dedicated to the Memory of Usha Parikh Buven Vivir Series 2016) Subject: Meaning of Life-Meaningful life-in the light of Quran "कुरान की रोशनी में जीवन का अर्थ तथा अर्थपूर्ण जीवन" **व्याख्यान : आरिफ मोहम्मद खान** स्थान : इंडिया इंटरनेशनल सेंटर	211

8.	तिथि : 7 मई 2016 स्व. श्रीमती उषा परिख की स्मृति में : बुवेन विविर श्रृंखला–2016 (Dedicated to the Memory of Usha Parikh Buven Vivir Series 2016) **व्याख्यान–सामदोंग रिंपोचे** स्थान : इंडिया इंटरनेशनल सेंटर	251

जीवन का अर्थ और अर्थपूर्ण जीवन (मीनिंग ऑफ लाइफ एडं मीनिंगफुल लाइफ) कमेटी बनाने योजना

तिथि : 24 अप्रैल 2015

स्थान : सेडेड गेस्ट हॉउस

24 अप्रैल 2015 को सेडेड गेस्ट हाउस में जीवन का अर्थ और अर्थपूर्ण जीवन (मीनिंग ऑफ लाइफ एंड मीनिंगफुल ऑफ लाइफ) विषय पर एक कार्यक्रम को शुरू करने के लिए एक कमेटी, कार्ययोजना बनाने के संबंध में बैठक का आयोजन किया गया। जिसमें सेडेड द्वारा पिछली परियोजना में शुरू हुए 'जीवन का अर्थ और अर्थपूर्ण जीवन' विषय को आगे भी जारी रखने (अभी तक सेडेड इस विषय पर चार बैठकों का आयोजन कर चुका है जिसमें एक बोवेन विवेन–पाबलो, डब्लूएसएफ–अनुपम मिश्र, आईआईसी, सेडेड कार्यालय में आयोजित की गई हैं।) और एक बेहतर रूप और व्यवस्था से करने की योजना पर बात हुई। इस बैठक में नरेन्द्र बस्तर, गजाला, मंजू मोहन, विजय प्रताप, रितु प्रिया, उवेस सुल्तान खान, विभोर जुयाल, विकास अरोड़ा, असित दास, विजय लक्ष्मी ढ़ौंडियाल ने भाग लिया।

बातचीत में इस कमेटी के निमार्ण और इसमें शामिल किये जाने वाले लोगों के बारे में उपस्थित लोगों ने अपने विचार एक बातचीत के रूप में रखे जो इस प्रकार से हैं :

असित : सीएस की तनवीर को शामिल किया जा सकता है। हर्षद आलम सोशियोलॉजी पढ़ाते हैं जेएनयू में उन्हें भी रखा जा सकता है।

विजय प्रताप : नरेन्द्र बस्तर जी रहेंगे। चेयर के लिए गजाला इन हाउस और अलग हाउस करना है तो आशीष नंदी, शैल मायाराम (उन्हें इन और आउट दोनों के लिए रखा जा सकता है)

असित : ओंकार मित्तल इस विषय पर ज्यादा बोलते हैं। दिलीप सिनयाल, जॉन दयाल कैसे रहेंगे?

विजय प्रताप : जॉन दयाल कर्ण सिंह की तरह आइडियोलॉजिस्ट हैं। हमें सेडेड ब्रांड स्थापित नहीं करना, जबकि ऐसे लोगों को शामिल करना है जो अपने–अपने कोनों में सोच रहे हैं। जैसे अब ओवेस यदि कहीं बोलें तो उनका सामान्य समाज में उतना प्रभाव नहीं पड़ेगा जितना इन प्रचलित नामों का होगा। तो ऐसे लोगों को बुलाना जो ये सोचता है कि उसके बिना कोई मीनिंग ऑफ लाइफ के बारे में कोई कुछ जानता ही नहीं ठीक नहीं होगा। इस विषय में लिंगराज आजाद, लिंगराज प्रधान जैसे लोग हैं ये टूटी–फूटी ही बोलेंगे लेकिन प्रभावशाली होगा।

गजाला : हमारा जो नोट होगा उसमें भी ये बात होनी चाहिए कि कौन–कौन इसमें शामिल हैं और कौन, किस क्षेत्र में काम करते हैं।

रितु प्रिया : बनवारी का नाम भी डाला जा सकता है।

उवेस : हिमांशु कुमार

रितु प्रिया : विनायक सेन कम से कम रूचिकर बातचीत तो करेंगे हीं

विजय प्रताप : कमेटी में सव्यसाची को रखें।

असित : आदित्य राजनीति के विषय पर और पूर्व में क्या था बाद में क्या था इस विषय पर, और उपभोग पर बात रख सकते हैं।

विजय प्रताप : आदित्य और निवेदिता मेनन दोनों पति–पत्नी को रखा जा सकता है। चेयर पर कौन हो इस ग्रुप का वो भी तय करें। अभी हमारा विषय मीनिंग ऑफ लाइफ, मीनिंगफुल लाइफ है। और जैसे कि अनुपम जी के अनुसार छोटा विषय है 'अच्छा जियें' तो अनुपम जी इसी पर बोलेंगे।

एवरीनेस की जो संपूर्ण बातें हैं उसपर ज्यादा बात नहीं करते। इसके कारण समाज में स्पेस ज्यादा होता जा रहा हैं। मनोरंजन और विज्ञापन का इतना ज्यादा है कि ये फील्ड unthinking consumerism है। as a society collective growth. Growth to desirable है और जितनी कर सकते हैं करनी चाहिए। तो इसमें मुख्य धारा में जो इमिनिटी है। आपसी रिश्तों की परिभाषाएं हैं। इसके आधार पर हो रही हैं। इससे हटकर जो है तो हमें बातें और विचार संजोने का काम करना है। तो इसकी नेचुरल लीडरशिप जैसे बाहर से जो आएगा जैसे आशीष नंदी को कैसे समझा सकते हैं। तो फिर इसको हम ही क्यों न करें। नंदी के साथ को–चेयर रहना मुझे अच्छा नहीं रहेगा तो शैल और अभिजीत के साथ को–चेयर रह सकते हैं। तो इन चीजों पर विभोर और आप राय दें।

नरेन्द्र बस्तर : मीनिंग ऑफ लाइफ अच्छा जिएं इसकी स्ट्रंथ भी रहेगी हमारे जो अधिकांश नाम पढ़ें ओर वो होने चाहिए जो इन नामों की तरह सेल्फ एस्योरड न हों। जैसे आज growth and certainty factor हो गए हैं।

विजय : आइनस्टीन ने कहा 'सत्य और ज्ञान उन्हीं के पास है वो भगवान के गुस्से से नष्ट हुए जहाज जैसे हो जाते हैं'।

नरेन्द्र : मेरा ये सुझाव था कि ये कुछ नाम सुलझे हुए लोगों के नाम हैं और कुछ ऐसे भी हैं जो थोड़े से गुमराह हैं जो पहुंच नहीं पाए लेकिन जो कहीं न कहीं They will compelled by somewhere or individual life, कहीं पहुंचने की कोशिश नहीं की या फिर कहीं पहुंचे नहीं।

विजय प्रताप : इनमें साहिब तैयब का नाम लिखें, तुलसी पटेल, रवीन्द्र शर्मा (आन्ध्रा)

नरेन्द्र : तो इस certainty के बहुत से लोग शिकार हैं लेकिन जो दूसरा पक्ष हो सकता है फोक माइंड, इंडीजीनियश है जो किसी discipline से नहीं जुड़ा। तो ऐसे कुछ लोग तलाश करें जो इस self assured तबके को बताएं। Meaning of life is issue of life

असित : आप उपभोक्तावाद की बात कर रहे हैं। politically enlighten तो विनय रे जी सोशलिस्ट फ्रेमवर्क में अच्छा रखते हैं।

विभोर : जिस वर्ग के लोगों की बात नरेन्द्र जी ने कही उसमें मनोज सीनल, गोपाल राम फिट बैठते हैं तो यदि इस तरह के लोगों को ढूंडा जाए तो बेहतर होगा।

विजय प्रताप : दयामणी बारला से यदि किसी के अच्छे संपर्क हो तो उन्हें भी शामिल किया जा सकता है।

असित : अरूण कुमार, सतीश जैन और एस. नारायण का भी नाम रखा जा सकता है।

उवेस : इस ग्रुप में असीम को रखें उनका नाम अच्छा है पर वो आशीष कोठारी का नाम चेयर के बारे में सोचा जा सकता है।

रितु प्रिया : आशीष नंदी की मार्केट वैल्यू ज्यादा है। तो आप शैल जी को रख सकते हैं। तो आप अभिजीत पाठक, शैल, आशीष नंदी में से किसी को शॉर्ट लिस्ट कर सकते हैं।

असित : डी.एल. सेठ को स्टीरिंग कमेटी में रखा जा सकता है।

विजय प्रताप : अभिजीत पाठक, शैल मायाराम और धीरू भाई रहें। तो आशीष नंदी, नरेन्द्र बस्तर, प्रो. सव्यसाची, गजाला, उवेस, रितु प्रिया, विजय प्रताप रहें।

बड़े नामों को ये मान के चलें कि वो own us हैं कभी सह विकास वाले घर में साल में दो मीटिंग करेंगे और नोट सबको भेज देंगे।

नरेन्द्र : कोर ग्रुप के दो पक्ष हों – एक तो contextual group तथा दूसरा executive group जिसका काम हो विचार को बढ़ाना।

विजय प्रताप : हर मीटिंग के बाद स्टीरिंग कमेटी के मेम्बर बात करें।

नरेन्द्र : ऐसा जो भी कोर ग्रुप हो उसका रह–रहकर मिलना तो जरूरी है।

रितु प्रिया : ऐसा होना संभव नहीं लगता क्योंकि कभी कोई नहीं होगा तो कभी कोई दूसरा नहीं होगा। और फिर जब वो मिलेंगे तो हर बार एक–दूसरे को विस्तार से बताते रहना पड़ेगा।

विजय प्रताप : ये जो कोर ग्रुप बने या कोर ग्रुप में कोर ग्रुप बने जो महीने में 10 दिन में मिले। पर ऐसा होना संभव नहीं दिखता ।

नरेन्द्र : यदि ये पहले छह महीनों में भी मिल पाएं तो बेहतर होगा।

रितु प्रिया : कोई एक दिन तय करें जिसके बारे में सबको मालूम हो। और वो एक स्वतंत्र कार्यक्रम हो, मुख्य कार्यक्रम में न मिले।

विजय प्रताप : आप एक function कह रहे हो जो contextually हो तो वो हिस्सा इसके अलावा न हो। हम लोगों के पास जो बात है बची–खुची वो तो हम किसी न किसी तरह से कर ही लेंगे Independent of that पर एक ही दिन रखा जाएगा।

नरेन्द्र : सिर्फ बात करनी है या बात निकालनी है। जिसका कोई अजेंडा न हो।

रितु प्रिया : लंबे समय में बात करते हुए reflection निकलता है। तीन मिलेंगे तो तीन मिल लेंगे बस एक निश्चित दिन हो।

विभोर : स्टेरिंग कमेटी में – नरेन्द्र, स्वयसाची, विजय प्रताप, शैल मायाराम, अभिजीत पाठक, गजाला, अशीम श्रीवास्तव, उवेस सुल्तान खान, आशीष नंदी, डी.एल. शेठ।

चेयर में – अभिजीत पाठक, शैल मायाराम और आशीष नंदी।

विजय प्रताप : तीन को–चेयर हों जिसमें एक महिला हों कैसा रहेगा क्या एक छोटे से काम के लिए ये बुरा तो नहीं लगता पर मेरे विचार से ये मेरे द्वारा नैपथ्य चलाने से तो कम ही बुरा लग रहा है। लेकिन यदि जिन नामों की हम लोग सूची बना रहें हैं यदि वो सहमति देंगे तो फिर ये काम छोटा नहीं है। हम इसके लिए पैसा मंगवा सकते हैं, यू–ट्यूब पर डाला जा सकता है, इसकी बुकलैट बनाई जा सकती है, एक ही भाषा में अनुवाद करके एक पुस्तिका का रूप दिया जा सकता है। तो मेरे हिसाब से अभिजीत पाठक, शैल मायाराम और विजय प्रताप हों।

नरेन्द्र : विजय प्रताप का नैपथ्य रहना ठीक है। नैपथ्य में आप अपनी राय दें रहे हैं और जोर से दे रहे हैं।

विभोर : नैपथ्य की भूमिका जटिल होती है।

गजाला : सब नाम ऐसे हैं जो सेडेड से अनौपचारिक/भावनात्मक रूप से जुड़े हैं

विजय प्रताप : अभी आप लोग अभीजीत और शैल का ही नाम रखें।

गजाला : विजय प्रताप इस कमेटी को कनवीन करें।

विजय प्रताप : तो ये तय हुआ कि कनवीनर – गजाला और विजय प्रताप। को–ऑर्डिनेटर– उवेस सुल्तान खान। को–चेयर' शैल मायाराम, अभिजीत पाठक, आशीष नंदी।

बैठक के अंत में विजय प्रातप ने बैठक का निष्कर्ष निकालते हुए कहा कि "फिलहाल इसे एक प्रपोज्ड कमेटी बनाया जाए और विस्तृत नोट बनने के बाद एक बैठक बुलाई जाए। आप सभी लोग कॉनसेप्ट नोट बनाएं, इनपुट दें, मिलकर बात करें, लिस्ट में लिखे गए सभी लोगों को बुलाया जाए और उन्हें बताया जाए कि "हम ऐसा

करना चाहते हैं आप सहमति दें तो इसपर कॉन्सेपचुअल बात के लिए एक बैठक बुलाएं और आगे का फैसला उसी के आधार पर हो।"

स्व. श्रीमती उषा परिख की स्मृति में : बुवेन विविर श्रृंखला–2016

(Dedicated to the Memory of Usha Parikh Buven Vivir Series 2016)

"जीवन का अर्थ तथा अर्थपूर्ण जीवन"

तिथि : 9 मई 2015

स्थान – आईआईसी

व्याख्यान– रवीन्द्र कुमार पाठक

विजय प्रताप : वो लोग एक सांस्कृतिक अलग प्रतिमान क्या हैं और ये जो चीजें उन्होंने निकाली हैं ये वहां के आदिवासी समूहों से बात करके वहां का राज्य तो आधुनिक राज्य है लेकिन बोलेविया में काफी बड़े पैमाने पर जिन्हें इंडीजीनियस पीपुल कहते हैं वो अभी काफी बड़े पैमाने पर वहां पर हैं। सिर्फ मिक्सड यूरोपियन मिक्सड प्रजाति वाले नहीं हैं तो ये उनकी नीति है जब मैंने उनका दो–एक बार उनका ये सुना तो मेरे मन में जो विचार मेरे मन में आया उसे मैं आपके साथ साझा करना चाहता हूं एक तो बचपन से ही जो भी हिन्दुस्तानी होता है उसमें गांधीजी के विचार वो सुनने और पढ़ने पड़ते हैं यदि वो ना चाहें तो भी सुनने और पढ़ने पड़ते हैं और बहुत सी चीजें जो चाहकर सुनी जाती हैं। तो उसमें एक बात जो अक्सर कही जाती है 'एकादश व्रत' की उसमें कई बातें ऐसी हैं जो दूसरी बात जो भारतीय परंपराओं में कही जाती है कि चार पुरूषार्थ हैं 'धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष' तो इन दोनों के बीच में मुझे ये दोनों एक नहीं है जबकि बहुत से गांधीवादियों का दावा है कि ये हैं। गांधी जी खुद भी कहते थे कि मेरा नया तो कुछ भी नहीं हैं और मैं तो भारतीय सनातन परंपराओं पर ही अपने विचारों को खड़ा कर रहा हूं तो इसका अर्थ मैं जो शास्त्रों से अनभिज्ञ एक अपढ़ कार्यकर्ता हूं और सांस्कृतिक रूप से भी करीब–करीब रिफयूजी। हम लोगों के मां–बाप तो 1947 में रिफयूजी होकर आए ही थे लेकिन सेक्युलिरिज्म को जिस तरह से भारत में परिभाषित किया गया उसमें अपनी धार्मिक और सांस्कृतिक परंपराओं के बारे में एक तरह का ज्यादा से ज्यादा अगर उदार सेक्युलर बौद्धिक है तो वो उसके प्रति उदासीनता का भाव रखता है नहीं तो आमतौर से

उदासीनता से बढ़कर एक हिकारत का भाव रहता है तो जिसके चलते इस तरह के सवालों के बारे में सोचने का, बातचीत में भाग लेने का, विमर्शों में हिस्सा लेने का जानने का बहुत कम मौका रहता है। और ये निजी सीमा की बात है सब मेरे जैसे कार्यकर्ता मेरे जितने अपढ़ नहीं होते लेकिन मैं क्योंकि बहुत जल्दी ही जिंदाबाद–मुर्दाबाद के नारे में शामिल हो गया दसवीं के दर्जे से ही एसओएस में शामिल हुआ तो इसलिए मेरी इस तरह की जो मेरी समझ है उसमें बहुत नाकाफी है तो इसमें मैंने अपने आचरण में देखा है जो हम दूसरों की आलोचना अभी मैं आप पार्टी का जो स्वराज अभियान वाला ग्रुप है उनके बारे में बात कर रहा था अभी अपने आन्नद कुमार जी आए थे जो उनके संयोजक थे वो समाजवादी समागम की बैठक में आए थे तो मैंने उनको कहा कि आप पार्टी नहीं बुद्धि चातुर्य और प्रबंध कौशल पर आधारित प्रबंधन पर आधारित प्रबंधन का जो आपका आत्मविश्वास है उसमें आप एक कंपनी की तरह पार्टी बना रहे हैं, अभी चार डारेक्टर हैं और बाद में चार और हो जाएंगे और जनता से ज्यादा विश्वास आपका अपने प्रबंध कौशल है तो जनता में विश्वास नहीं है और कोलिज्यिम बनाने में विश्वास नहीं है और कोलिज्यिम कोई म्यूजिकल चेयरस की तरह हो कि कोई पांच जो हैं केवल वही कोलिज्यिम न हों हर जिले में राष्ट्रीय नेता के गुणों से संपन्न व्यक्ति हों, उनकी पहचान की जाए। उनको सबको ऐसा मौका मिल सके यदि इस तरह की कोई जन संसद बने 543 लोगों की तो उसमें हर व्यक्ति उस नजरिये का हो कि जो राष्ट्रीय हो तो ऐसा मैंने उन्हें कहा। उसके बाद मेरे बाकी के लोगों को अटपटा लगा कि इस तरह से नहीं कहना चाहिए वो लोग तो मेहमान होकर आए हैं तो फिर मैंने उसमे सोचा कि लोग क्यों ऐतराज कर रहे हैं और मैंने ये पाया कि मैं जो बातें उनको कह रहा हूं वास्तव में मैं भी वैसा ही हूं गरीब लोगों के बीच गरीबों का नेतृत्व खड़ा करने के लिए मैंने भी सीधे काम नहीं किया। ज्यादा अपना काम कार्यकर्ता जमात में ही किया है, बोद्धिकों के बीच ही किया है और मीटिंग करने के कौशल से समाजवाद की गाड़ी बढ़ेगी ये मेरे अवचेतन में बहुत रहता है तो मैं इतना लंबा जो किस्सा सुनाया है वो ये कहने के लिए कि इस

गुस्ताखी के लिए आप लोग क्षमा करेंगे कि जो मेरी अपनी जो सीमाएं हैं, अपनी जो सांस्कृतिक निरक्षरता है और मुझे अपने से, अपने के जो शायद कई बार मुझे ये युग ही ऐसा लगता है कि मैं अपने बारे में तो मानता ही हूं कि थोड़ी आत्मकेन्द्रिदता जो सहज मन में होनी चाहिए उससे ज्यादा है लेकिन मुझे कई बार लगता है कि ये अपने उसमें भी है खासकर परिवतर्नवादी कार्यकर्ताओं में मैं ये पाता हूं कि कुल समग्र चित्र के बारे में एक हमारी साझी समझ बने और उसमें समय के प्रवाह के बारे में हमारी साझी समझ बने और उसमें से हम अपने–अपने संस्कार, समता और सीमाओं के आकलन से अपना स्वधर्म परिभाषित करें ऐसा मुझे होता नहीं दीखता मुझे लगता है कि कार्यकर्ता बिरादरी में सब अपनी भूमिका जैसे ब्रहमा जी ने सबको जैसे एक एजेंसी दी है समाज परिवर्तन की तो जिसको जो एजेंसी दे दी वो उसके दाएं–बाएं की चीज नहीं सोचता, अंतरसंबंधों के बारे में भी नहीं सोचता। उस एजेंसी में भी क्या–क्या घपले हैं वो काम पूरे तौर पर संपन्न भी हो जाए तो भी समाज में क्या–क्या घपला बचेगा इन चीजों पर व्यक्ति के नाते हम नहीं सोचते हैं और परिवर्तनवादी ऐसी कोई गांधीवादियों से समाजवादियों से, जो ओवरग्राउंड माओवादी हैं उनसे मार्क्स की प्रेरणा से, स्टालिन की प्रेरणा से, चारू मजूमदार की प्रेरणा से काम करने वाले तमाम तरह के परिवर्तनवादियों से, समाजवादियों से और समाजवादी कुल गोत्र का तो मैं खुद ही हूं। उनसे सब से जो राफ्ता और अपनेपन का जो एहसास है उसमें मुझे नहीं लगता कि इस तरह की दुविधाएं, इस तरह के सांस्कृतिक सवाल, अपनी नैतिक और सांस्कृतिक सवालों पर एक खुले विमर्श के मंच मुझे नहीं लगते। और इससे जुड़ी एक बात जो मुझे लगती है कि आजादी के आंदोलन में ये सुविधा थी कि बीच–बीच में सत्याग्रह करिए, जेल जाइए तो उस समय सोचने का मौका मिलता था तो आरिफ भाई और हमारे जैसे लोगों को ये लाभ मिला। हम लोग जब स्टेट गेस्ट हुए 20 से 24 महीने तक आमतौर से मैं भी पौने बीस महीने इंदिरा जी का स्टेट गेस्ट था। तो तब जो सोचने को मिला उसके अलावा वो मिला नहीं कभी। तो यूनिवर्सिटीज के डिपार्टमेंट में कितना विमर्श होता है लोग मतलब 500 साल और

तात्कालिकता के मिलन बिंदु खोजने की कोशिश करते हैं कि नहीं करते ये तो जो युनिवर्सिटी के प्रोफेसर लोग हैं रविन्द्र पाठक जी रितु प्रिया जी जैसे लोग यही बताएंगे। पर हमारे कार्यकर्ता जमात में ऐसी बातें आमतौर से नहीं होती हैं और मुझे लगता है कि हम लोगों को इस तरह की ऐसी चौपाल बनानी चाहिए और वो किसी एक ओवेस खान या एक गज़ाला पर निर्भर न हो। वो हम लोगों की साझी चीज कैसे बने ये मेरे मन में कई वर्षों से है दूसरा इस विषय विशेष के बारे में क्यों चुना हमने। जब मैंने बोवेन विवीर के बारे में मैंने कई बार सुना जैसे कि हमारे यहां एकादश व्रत और चार पुरूषार्थों की बात कही वैसे ही मैं जो आदिवासी समाजों में गए और वहां पर रच–बस गए और उस समाज में उन्होंने अपने को ट्रेनिंग दी जैसे कि प्रोफेसर स्वयसाची जो जामिया में प्रोफेसर हैं समाजशास्त्र के या फिर मधु राम नाथ जो दक्षिण भारत के हैं लेकिन सेन्ट्रल इंडियन ट्राइबस उनका अब्बू झमाड़ पर उनकी बहुत गहरी समझ है। नरेन्द्र हैं जिनको हम मजाक में नरेन्द्र बस्तर ही कहते हैं वो भी अभी दांतेवाड़ा जिले में जब लोग बहुत अंदर तक घुसते नहीं थे और एक और बौद्धिक हैं सुरेश शर्मा जी जो उनके साथ गए थे तो आदिवासी समाजों के बारे में जीवन दृष्टि क्या है, उनकी विश्व दृष्टि क्या है इसके बारे में बहुत ही गहराई और व्यपाकता है उनकी विश्व दृष्टि में। जिसके बारे में हम लोग बिल्कुल बेखबर हैं जैसे कि वो हमारी गिनती में ही नहीं हैं। तो ये और जब मैंने बोवेन विविर की बात सुनी तो मुझे लगा कि व्यवस्थित ढंग से हम लोगों को आपस में इन चीजों के बारे में बात करनी चाहिए। एक अगला कारण जो मेरे मन में आया कि 1991 में जो मनमोहन सिंह जी ने बजट दिया उसमें जिस ढंग से कल्याणकारी राज्य की अवधारणा के बारे में पहले राजा प्रजापालक होता था, होना चाहिए, ये आदर्श की बात मैं कर रहा हूं व्यवहार की बात नहीं कर रहा तो उसीका एक प्रतिरूप सोशल डेमोक्रेसी की थियोरी में वेल्फेयर स्टेट की अवधारणा बनी थी। जिसको मनमोहन सिंह जी ने सिरे से नकार दिया कालबाह्य करार दे दिया। और उसके बाद से सब तरह की सरकारें आईं। जैसे सिंगूर और नंदी ग्राम में किसानों की जमीन लेकर सीपीएम ने जो

किया वो उदाहरण हमारे सामने है। कि कल्याण किसका होना है शहरी अंग्रेजी पढ़े या अपर कास्ट या आमतौर से अपर कास्ट या अपर कास्ट हो गए आरक्षण के माध्यम से दलित। ये जो जमात है भारत और पाकिस्तान का विभाजन है जो राज्य के तंत्र में आ गया वो भारत से हटकर इंडिया का हो गया और उसके बाद से भारत के बारे में बेखबर हो गया और जो राज चलाने वाले लोग हैं उनका बाजार के मालिकों से और ब्यूरोक्रेटस से इन तीनों का गठबंधन और जो कि बहुत ही छोटी संख्या है जो राष्ट्रीय स्तर पर जो गठबंधन है बहुत ही छोटी संख्या है 500–700 या 1000 लोग होंगे सभी सांसद भी उसमें शामिल नहीं हैं, विधायक का तो सवाल ही नहीं है, सब मुख्यमंत्री भी उसमें शामिल नहीं हैं कुछ जो इनीसिएटिव वाले, दबाव वाले तो ये जो देश के 500–700 लोग हैं सब दबाव वाले, सब पार्टियां मिलाकर तो उन लोगों में मुझे ऐसा लगता है कि वो सीधे कुछ मानते हैं और कुछ नहीं मानते। जैसे चन्द्रशेखर जी ये साफ कहा करते थे कि सब लोग कन्फयूजड हैं लेागों को समझ नहीं आ रहा है कि इस दुष्चक्र से कैसे निकलें। मैं इस बात को मानता हूं और लोग मानते नहीं हैं तो मुझे उनकी ये बात सही लगती है। तो मुझे लगता है कि ये सब लोगों में एक सहमति है जिसे वो आमतौर से अपने व्यवहार से ही कहते हैं, अपनी भाषा से नहीं कहते कि अमेरिकी उपभोगवादी जो स्वर्ग है वही वांछनीय है और वही संभव है तो उसकी कीमत तो कुछ लोगों को देनी पड़ेगी। अमेरिकन कनज्यूमर पेरेडाइज्ड हम लोग कह रहे हैं कि हिन्दुस्तान में लाकर रहेंगे और उसके लिए प्रकृति का जो हो, सामाजिक रिश्तों का जो हो, पारिवारिक इकाई का जो हो, सब बूढ़े यहां पर रह जाएं और बच्चे अमेरिका पहुंच जाएं और उसके पीछे जिम्मेदारी का भी भाव भी न हो और अपराध की बात तो बहुत दूर है। तो परिवार है, समाज है, राज है, बाजार है ये सब के सब इस तरह से संचालित होने चाहिए कि अमेरिकी उपभोगवादी स्वर उपलब्ध हो। और वो उपलब्ध जितने भी पर्यावरणीय और आर्थिक वैज्ञानिक हैं जो ठीक से समाज के तबकों की असलियत को सामने रखकर बात करते हैं उनके हिसाब से न तो ये संभव है और न ही ये कोई वांछनीय और लोगों को

बेहतर जीवन देना वाला लक्ष्य है। इसके बारे में आमतौर से जो सत्ता चलाने वाले अर्थशास्त्री नहीं हैं, युनिवर्सिटियों वाले अर्थशास्त्री नहीं हैं, बैंक–आईएमएफ, वर्ल्ड बैंक के कनसलटेंड अर्थशास्त्री नहीं हैं उनके बारे में उनके मन में ये बात एकदम स्पष्ट है तो ऐसे इस तरह के राष्ट्रीय सहमति जो कि न केवल राष्ट्रीय है बल्कि अन्तर्राष्ट्रीय भी अभी कल ब्रिटेन के चुनाव के नतीजे आए तो दक्षिण पंथी रूझान के लोग ही बहुमत में आ गए हैं अभी उससे पहले यूरोप में ग्रीस को छोड़कर बाकी जितनी भी जगह चुनाव हुए हैं सब जगह इसी विचारधारा को मानने वाले लोग सत्ता में आ रहे हैं पूरे यूरोप का दक्षिणपंथी बाजारवादी रूझान आगे बढ़ रहा है तो उसके लिए कोई सांस्कृतिक हमारे पास संबल नहीं है जो हम खुद भी मानते हों और जो समाज मेरे ख्याल में समाज इन चीजों को मानता है लेकिन हमारे राज और बाजार और नौकरशाही, एडवर्टेजाइजिंग इन चीजों पर जिनका कब्जा है जिनसे हमारी चेतना परिभाषित हो रही है जिनसे हमारा तंत्र चल रहा है। उनमें से न कोई न इनको जानता है इन सांस्कृति स्रोतों के बारे में और न इनके बारे में कोई समझ है और न जानने की इच्छा है और न ही उस रास्ते को बदलने की इच्छा है तो मेरी अपनी विनम्र राय में इस बारे में कुछ जानता नहीं हूं यदि मैं जानता होता तो मैं अपना कोई उसी तरह का मठ बनाकर और उस तरह का कुछ अभियान चला रहा होता लेकिन मुझे लगता है कि हमारी सांस्कृतिक विरासत में ऐसा बहुत सा है जैसे पहले जगह–जगह जैसे पहले मंदिर मठ, एक तरह की पीठ होते थे एक तरह के विचार का केन्द्र होते थे वैसे केन्द्र बन सकते हैं यदि हम सामुहिक पराक्रम करें और अपने मन की बात और अपनी खोज को सामूहिक खोज बना सकें तो मुझे लगता है कि अभी पूरी दुनिया जिस दिशा में जा रही है उस खोज का एक स्वस्थ और सही दिशा में ले जाने की जो कोशिशें है उन कोशिशों के प्रति हम लोग बहुत की उदारता से सोचें और अपने भीतर भी अपने पुराने कालबाह्यः विचारों को मांजते हुए और अपने अतीत के बारे में एक संवदेनशील निर्ममता अगर कुछ होती हो कि अपने ही प्रति अपने आत्मविश्वास और आत्मग्लानि। आत्मविश्वास में बिना आंच आए और

आत्मग्लानि में बिना फंसे हम अपनी जो अतीत की गलतियां हैं अवधारणाओं का गड़मढ़ झाला है उनके बारे में सोचें, बोलें और लिखें और समाज में ये एक जानी–पहचानी धाराएं बनें और जो आम आदमी है भारत में ये धाराएं मुझे लगता है मैं उतना भारत से जुड़ाव लगातार जीना होता जा रहा है तो भारत में वो सांस्कृतिक स्रोत हैं, वो आध्यात्मिक स्रोत हैं जिस तरह से लोग एक–दूसरे के दुख–दर्द में काम आते हैं। जिस तरह से लोग व्यवहार करते हैं तो मुझे लगता है कि हम लोग ज्यादा गरीब हैं बजाय इंडिया वाले या इंडिया के आसपास वाले लोग भारत के मुकाबले तो हम लोग अपनी समृद्धि के लिए सामूहिक पराक्रम करें ऐसा इस तरह की कार्यशालाओं का उद्देश्य है और इसमें मुझे बहुत अच्छा लग रहा है कि 'आप' पार्टी के हाशिए के हमारे साथी और विधायक जो हैं वो उन्होंने खुद से कहा कि वो इसमें आना चाहते हैं। अनुपम जी शायद आज हमारी पहली बैठक है जिसमें वो आए हैं। और आरिफ भाई से जबसे हमने जिद करनी शुरू की है तब से वो हमें जिद करने का मौका नहीं देते और वो हमसे भी पहले से बैठक में आते हैं। और वो गांव से हमारी बैठकों में आए हैं आजकल वो बुलंदशहर के पास एक गांव में गाय–भैंस पालने का और चिंतन का काम कर रहे हैं और गुप्त रूप से एक किताब भी लिख रहे हैं और रवीन्द्र पाठक जी के बारे में सुनील सहस्त्रबुद्धे और अनुपम जी और तमाम मित्रों से सुनते थे। एक बार पहली बैठक में दुआ–सलाम भी हुई थी और इस बार वो अनुपम जी के सौजन्स से आज यहां पर हैं। तो इसके लिए मैं अनुपम जी का और रवीन्द्र जी का दोनों का ही आभारी हूं। मैं क्षमा क्या मांगू, मैं अक्सर अपना परिचय देने में लंबा परिचय ही दे जाता हूं और खासकर जब अपनापन का एहसास ज्यादा हो तो ज्यादा बोल जाता हूं तो बिना क्षमा मांगे कि मुझे ये एहसास है कि मैं लंबा बोल गया। अब मैं आरिफ भाई से अध्यक्षता के लिए कहूंगा।

रवीन्द्र कुमार पाठक : सबकी अपनी व्याख्याएं थी और उन व्याख्याओं के साथ मैं जीने को नहीं मरने को भी तैयार हूं। एक चुनौती थी कि तुम्हारी निष्ठा सही थी कि नहीं थी। ऐसी परिस्थिति में अगर किसी बच्चे को ये कहा जाए कि मेरी ही वाली निष्ठा सही है

और तुम्हें यही मानना है और अगर नहीं मानोगे तो पिटाई भी होगी तो ऐसे में मैंने काफी मार भी खाई। अब मुसीबत ये है कि यदि दो आदमी दो बातें कहें और सब आदमी अपने ही हों तो मैं क्या करूं। मैं एक बात याद कर रहा हूं इसलिए मीटिंग में हमारे जो तारीफ फतह साहब ने कहा कि एक समय पर खास वक्त पर अक्ल के इस्तेमाल पर पाबंदी लगा दी गई। तो अपनी विभिन्न धाराओं में पाबंदी है मेरी मजबूरी ये थी कि मुझे सोचने की मजबूरी थी।

मेरे स्वधर्म चिंतन की शुरूआत वहां से होती है। धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष ये ही पैमाने थे, ये ही शब्दावली थी, इन्हीं पैमानों में मुझे समझना था तो मेरी इस मजबूरी को भी ध्यान में रखेंगे और दूसरी बात अभी भी हिन्दी चल रही है उसमें पारंपरिक बिंब हैं, उसकी अवधारणाएं हैं उनको व्यक्त करने में काफी समस्याएं हैं केवल अंग्रेजी वाले लोगों को नहीं हिन्दी वालों को भी जैसे आज दो शब्दों के सहारे मुझे कहना है उसमें एक तो है पुरूषार्थ शब्द और दूसरा उसका जब आगे बढ़ाते हैं धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष तो उसमें भी एक अर्थ शब्द है लेकिन इन दोनों शब्दों का जो अर्थ है वो दोनों संदर्भ में बहुत हद तक भिन्न है जो पहला वाला जो पुरूषार्थ है उसका अर्थ का सामान्य मीनिंग मतलब है भाव है, एक शब्द का जो शब्द अर्थ वाला भाव होता है वो है। और जो दूसरा धर्म और अर्थ है वो एक पारिभाषिक ऐसा शब्द है जिसके बारे में मैंने एक छोटा सा नोट लिखने की कोशिश की थी तो उसके सहारे से ही मैं बातों को रखूंगा तो वहां जाकर वो एक तकनीकी शब्द जैसा हो जाता है। जिसका फिर अर्थ कहना है तो ये अर्थ शब्द पहले यहां दुविधाएं, ओवरलेपिंग या कुछ होने लगेगा तो क्षमा करेंगे मैं कोशिश करूंगा कि दोनों के संदर्भ का ख्याल रखूं। अब जो भारत है और इतने सालों से जो शब्दों के प्रयोग हुए हैं तो इतनी विविधताएं हैं, बावजूद ऐसा नहीं है कि उसमें कोई आपस का रिश्ता नहीं है और जिस भी प्रकार के राष्ट्रवाद की बात होती है वो राष्ट्र बनाने का सोचा या नहीं सोचा, कब सोचा ये मैं ठीक से नहीं कह सकता हूं क्योंकि मैं इतिहास का विद्यार्थी नहीं हूं लेकिन समाज बनाने की चिंता बहुत दिनों से है। और परंपरा में

उसकी शर्त ये रखी गई है कि समाज बनाने वाले को कैसे समझें, मानें, कौन समाज को बनाने और संभालने वाला है और कौन समाज को बिगाड़ने वाला है। आखिर पहचानेंगे कैसे। इसकी कुछ शर्तें हैं कि इसकी एक शर्त ये है कि उसकी बात पर हम भरोसा करें जो अपनी पहचान को ज्ञान की धारा में समाप्त करता हो। इसलिए बहुत सारी अच्छी किताबें ऐसी मानी गई हैं जिनका कोई लेखक नहीं होता और एक हेडिंग चलती गई है कि साहब एक आदमी ने कहा, एक आदमी ने सवाल पूछा और एक आदमी ने जवाब दिया। ये वार्ता की शैली है। सब जगह टाइटल, हेडिंग वही रहती है। आधुनिक परंपरा में भी और वैदिक परंपरा में भी। कहीं–कहीं 10–20 वक्ता हैं या दो–तीन कौंसिल है। बौद्ध परंपरा में दो–तीन कौंसिल हो गई लेकिन दो–तीन कौंसिल ही हुई या दो–तीन संहिताएं ही हुई ऐसी बात तो नहीं है। बातचीत का सिलसिला जोड़ने–घटाने का सिलसिला चल रहा है, नई बात डालते हैं तो उसी निष्ठा में डालते हैं। लोगों को इतिहास का जो सिलसिला है उस तरह से समझने में भारी असुविधा होती है लेकिन समाज जोड़ने वाले को इतिहास की चिंता नहीं है। वो ये है कि साहब जो अपनी पहचान तक को इसमें डुबोने को तैयार है वो इस परंपरागत ज्ञान में जोड़ने का हकदार होगा। तो पूरी तंत्र परंपरा की जितनी किताबें होती हैं उसमें लिखा होता है कि पार्वती जी ने पूछा, भैरवी जी ने पूछा, पार्वती ने पूछा और भैरव ने कहा। बस ये दो ही भूमिका है बाकी जो कहना हो तो बहुत सारे पूर्वाग्रह हैं या जो विचारों के प्रति निष्ठाएं हैं वो तो उसमें पक्ष बद्धता होती है लेकिन व्यक्ति, परिवार, गुण, गोत्र की पहचान और हमको यश मिलेगा, पैसा मिलेगा इन सब चीजों का कम से कम इतना तो डुबोकर ही उसमें शामिल होना पड़ता है। तो ये शैली है। अब मैं आता हूं धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष पर तो इसमें जो नोट थे उसमें मैंने कोशिश की है कि धर्म शब्द का जो अर्थ है और इसमें जो परिभाषाएं दी जाती हैं इसमें संस्कृत वाक्य नहीं है। जैसे आग है तो आग का जलाना स्वभाव है मतलब कि आग का धर्म है जलाना। पृथ्वी का धर्म है कि वो वजन सहती है, धारण करती है। तो धर्म शब्द का ऐसे स्वभाव अर्थ में भी प्रयोग हुआ है ये हमारा धर्म है ये

कर्तव्य अर्थ में भी प्रयोग हुआ है। और जो विभिन्न व्यवस्था है उस अर्थ में भी धर्म शब्द का प्रयोग हुआ है अब ये तो बहुत ही विचित्र सा लगता है कि भई ये तो मामला उलझ गया। एक तो ये स्वभाव है, दूसरा धर्म शब्द का कर्तव्य है और फिर तीसरा ये जो व्यवस्था है इसमें कौन सा पकड़ें। अभी आधुनिक समय में जो बहस होती है वो बहस व्यवस्था और कर्तव्य तक आती है। धर्म में स्वभाव को धर्म कहते हैं ये सब तो अब कोई सुनने को तैयार नहीं हैं लेकिन जो पुराने परंपरागत शास्त्र हैं वो कहते हैं कि हमारे लिए ये जो धर्म हमारा स्वभाव है ये हमारे लिए कीमती है क्योंकि इसी आधार पर हम कह पाए कि आज आग होना जीव मात्र को मुक्ति का अधिकार है। न केवल मनुष्य को ही बल्कि सारे जीव मात्र को मुक्ति का अधिकार है। और इसलिए मेरा स्वभाव है, मेरा स्वधर्म है कि हम आजाद होकर रहेंगे और ये बहस वहां तक जाती है। और अगर हम धर्म का ये स्वभाव वाला अर्थ न लें तो व्यवस्था तो वो भी है और व्यवस्था तो ये भी है। इसमें बुनियादी फर्क क्या पड़ता है, राजा तो पहले भी गुलामी में थे। राजा पहले भी थे वो चाहे हिन्दू रहें या फिर मुसलमान रहें, बौद्ध हों या जैन रहें या फिर एक परंपरा वाले रहें या फिर उस परंपरा वाले रहें। सैव रहें या फिर वैष्णव रहें। अगर गुलामी वाजिब है तो गुलाम रहिए। लेकिन जो स्वभाव और जो स्वधर्म है उसमें हमें मुक्ति का अधिकार है। और मुक्ति की जो मोक्ष है उसकी व्यवस्था यहां तक है कि भई हमको हर चीज से मुक्ति का मतलब समाज, समाज की व्यवस्था से मुक्ति का मामला तक गया। एक चीज है मानेंगे कि प्रकृति जो है वो जब तक ये शरीर है उस प्रकृति से मुक्ति का मामला नहीं है और जितने प्रकार का शरीर है प्रकृति की अगर वो सूक्ष्म व्यवस्था है तो मुक्ति का मतलब नहीं है। मतलब ये है कि समानाधिकरण सिद्धान्त ये कहा जाता है वही मुक्ति है। वो एक है कि या तो आप समुद्र में विलीन हो गए आपका अस्तित्व नहीं है अब वो विलीनता मानिए या फिर मुक्ति मानिए ये बात बराबर है। ये मुक्ति मान लीजिए या फिर समाप्ति मान लीजिए। ये तो दोनों ही मुक्ति का रूप हैं। और जो दूसरा बाकी जो सिलसिले हैं जो पहले छोटी–छोटी बहुत सारी मुक्तियां हैं मसलन आप समझते हैं

समानाधिकरण या फिर संवेद का सिद्धान्त है मतलब एक ही रफ्तार से अगर जो उपमा दी जाती है प्लेटफार्म भी और ट्रेन भी एक ही स्पीड से चले तो दोनों में कोई बंधन नहीं बचता है आप आसानी से इधर से उधर जा सकते हैं। और चिपका हुआ हो तो पता ही न चले कि ट्रेन पर हैं या फिर पलेटफार्म पर हैं। तो देश और काल से संगति, समन्वय, सहमति और समानाधिकरण के सिद्धान्त वाली जो मुक्ति है उसके लिए छोटे–छोटे दैननिदिन जीवन में प्रयोग भी बनाए गए। तो ये मुक्ति का फ्रेम है मैंने कुछ दूसरे ढंग से लिखा था लेकिन अभी आपने जैसी चर्चा शुरू की थी तो मेरा जो पुराना पर्चा था और जो मेरा आज का नोट था वो मैंने नीचे रख दिया है, मुझे लगा कि शायद आप लोगों को यूं ही बातें सुनने में अच्छा लगेगा और मुझे भी कहने में अच्छा लगेगा। तो ये है कि हमारे यहां हर चीज में देश और काल का स्मरण करते हैं। अभी सबसे ज्यादा धर्म पर जो 10–20 विवादास्पद आरोप लगते हैं जबकि बाकी दुकानें की भी उसी हिसाब से चलती हैं। वो ये है कि साहब आप लोग भूत–प्रेत मानते हैं और इन सब दकियानूसी बातों में उलझे रहते हैं लेकिन हमारे अभी और जो बाकी धर्म या मजहब जो कहना चाहें वो चल रहे हैं वहां भी भूत–प्रेत ने किसी को छोड़ा नहीं है और उसका बिजनेस आज भी जारी है कोई मंदा नहीं है। अगर हम परंपरागत बिंबों में देखें मैं तो कहता हूं कि आजकल हिन्दू मुसलमान और ईसाई की तरह सोचते हैं। और हमारे मुसलमान भाई हिन्दू की तरह जीते हैं। मुश्किल ये है और ठीक से दूसरे को समझने को तैयार नहीं हैं दहेज वो लेते हैं। कितने लोग मेहर देते हैं? मैंने मुकदमे लड़े हैं, हिन्दू लड़कियों के लिए और मुसलमान लड़कियों के पक्ष में लड़े हैं। इसलिए मुझे कोई कन्फयूजन नहीं है। छुआछूत साहब मैं शार्गिद रहा हूं बीएचयू में बड़ा प्यार मिला है उर्दू की मशहूर विदूषी बीवी कमर जहां का। उन्होंने कहा कि तुम कहां छुआछूत के चक्कर में हो। मेरी मां भी किसी का छुआ हुआ खाती और पीती नहीं है। न कहे। ये हाल है। ये तो मेरा घर है कि तुम हॉस्टल से आते हो तुम लोगों का हाल ये है कि तुम लोग हॉस्टल से आते हो जिसमें बिजली–पानी बंद है और सीधे किचन तक पहुंच जाते हो। ये अलाउड थोड़े है

वो लखनऊ की हैं। इतना प्रेम–वात्सलय मिला और जो जीकर देखा है। मेरे गांव में भी काफी संख्या में मुसलमान हैं। मेरे गांव में नमूने का गांव है, एक चैलेंज है सारी बातों को समझने के लिए। बाकी जगह के मुसलमान आबादी से दूर जाकर बस जाते हैं। मेरा गांव ऐसा है मुझे फक्र है कि मुसलमानों का जो टोला था जो बाहर था वो आकर गांव में फिर से बस गया और जो गांव के बाहर मस्जिद थी वो गांव के बीच में बन रही है ये कमाल मेरे गांव में है। और भी बहुत सारे कमाल हैं तो ये जो सिलसिला है स्वधर्म वाला ये बहस वहां तक ये बात जाती है तो ये धर्म वाला ही ज्यादा मामला है। अगर उसको ऊपर सही जो प्रचलित शास्त्रीय पदावली है, जो टर्मिनोलॉजी है, बहुत सी चीजें हैं जो कॉमन हैं जो सब जगह मान्य हैं। लेकिन अब सब उसपर चर्चा नहीं होती है क्योंकि वो ब्रांडेड नहीं है। वो बेसिक साइंस के फार्मूले की तरह हैं और मुफ्त में उपलब्ध हैं उसके लिए कोई समस्या नहीं है तो उस फ्रेम में देखें तो हर आदमी को प्रेत पकड़े हुए है। ऐसा शायद ही कोई आदमी मिलेगा अगर मैं उस फार्मूले के हिसाब से सोचूं। फार्मूला जानने के बाद आप लोगों में से कोई दावा करेंगे कि आपको प्रेत नहीं पकड़े हुए है। सबको प्रेत पकड़े हुए है। ये कैसे हो सकता है लेकिन यदि मैं अर्थ स्पष्ट न करूं तो बहुत ही भयानक बात होगी कि आप सभी को प्रेत पकड़े हुए है और किसी ने किसी के पास जाना होगा। कहते हैं कि प्रेत पकड़ने का मतलब क्या है। मतलब कि जो आदमी जहां है वो होश में न हो। टैक्नीकली प्रेत पकड़ने का अर्थ होता है कि जो आदमी होश में न हो उसको प्रेत पकड़े हुए है तो ये मीनिंग है। तो हम नाप–तौल करके देख लें कि वो होश में कितने घंटे रहते हैं और ऐसे कितने आदमी हैं जो दिन भर होश में रहते हैं यदि उसके सोने वाले टाइम को छोड़ दें तो हम जब तक जगे रहते हैं तब तक होश में रहते हैं यदि होश न खोएं तो। तो प्रेत तो पकड़े ही हुए है तो आप उसे क्लेरीफाई करो तो भाई क्लेरीफाई है कि जो जहां पर है उसका निर्णय टाइम और स्पेस का नहीं है, देश और काल की सजगता नहीं है तो ये पक्की पहचान है कि तब तो प्रेत पकड़े ही हुए है। रोना ये है कि हमारे देश और समाज को प्रेत पकड़े ही हुए है। तो उपाय क्या

है तो जो ज्यूडिश्यरी में चल रहा है वही हमारी पूजा–पाठ में चल रहा है। अगर आपको अपने टाइम और स्पेस की अवेयरनेस नहीं है तो साहब तब तो आपको प्रेत पकड़े ही हुए है। ऐसी बुनियादी बातों को कहने के लिए एक बहाना चाहिए तो एक मेरी किताब है आयुर्वेद की। आयुर्वेद के ज्वलंत प्रश्न क्योंकि आयुर्वेद एक ऐसा विषय है जो व्यवहारिक रूप से उपयोगी है तो उस बहाने से मैंने बहुत सारी बातें लिखी हैं। ये चिकित्सा की किताब नहीं है ये बुनियादी बहस की किताब है उसके सिद्धान्तों पर। तो कहा कि उपाय क्या करना है तो उपाय ये करना है कि जैसे हर काम को करने से पहले ये शपथ खाते हैं कि हां भाई मैं घोषणा करता हूं या मैं प्रतीज्ञा करता हूं और ये मैं होशो–हवास में कर रहा हूं, बदहवासी में मैंने ये बात नहीं कही है। तो होशो–हवास में मैं ये बात कह रहा हूं और हर प्रतीज्ञा के पहले हम ये लाइन जोड़ते हैं। तो यहां कहा कि ऐसा काम नहीं चलेगा टाइम का जो सबसे लारजेस्ट फ्रेम है वहां से शुरू करो तो देखो कि तुम होश में हो कि नहीं हो हम जांच कर लेते हैं। कि टाइम का जो लार्जेस्ट फ्रेम है समय का जो पैमाना है, जिस परंपरा में आप हैं उसका आपको पता है कि नहीं है, आप यारदाशत में हैं कि नहीं हैं। और जो सबसे छोटा वाला पैमाना है वो आपकी यारदाशत में है कि नहीं है। और स्पेस का जो सबसे छोटा पैमाना है वहां से शुरू करके बताओ, सबसे छोटे वाले पैमाने तक आओ, आओ और जांच करते हैं कि आपको पता है कि नहीं है। और आपको याद है कि नहीं है और नहीं है तो कोई काम शुरू करने से पहले इसे याद कर लो। वरना तो आपको प्रेत ने पकड़ा हुआ है तब तो आप होश में नहीं हो, इसका मतलब कि आपको तो प्रेत ने पकड़ा हुआ है, आप तो बेहोश हो। और बेहोश आदमी का दिमाग इधर–उधर घूमता रहता है, वो सही बात पर टिकता नहीं है। अगर उसका सही बात पर टिकता नहीं है यदि वो सही बात पर दिमाग टिकने लग जाए और टैक्नीकली समय और देश के बारे में उससे पूछा जाए और अचानक ही कोई पूछ दिया जाए और इसमें तो इस हॉल में तो बताना मुश्किल है। लेकिन अगर बाहर मैदान में खुले में हो और किसी से पूछा जाए कि अभी क्या समय हो रहा है और उसने यूं ही किसी अंदाजे से

बता दिया तो इसका मतलब कि उसे प्रेत नहीं चिपटा है। और कई लोग किसी बेहोशी में लगे हैं काम पर और ये भी नहीं पता कि दोपहर है कि शाम तो भूख तो लगती है अपने हिसाब से। अब कोई पूछे कि आपने प्याज खायेंगे तो पता ही नहीं आप कहेंगे कि पता नहीं मुझे तो सुबह से खाया या नहीं खाया मैं तो काम में भूल गया था तो इस बेहोशी बदहवासी में आधुनिकता के दौर में हम जी रहे हैं जिसे टैक्नीकली कहा जाए तो प्रेत पकड़ा हुआ है। प्रेत होता है कि नहीं होता उसकी परिभाषाएं अनेक हैं क्योंकि प्रेतों के प्रकार अनेक हैं। सबके प्रेतों के डिजायन अलग हैं, किसी के काला है तो किसी का गोरा है। तो मेरी समझ से ये प्रेत की परिभाषा समझ ली जाए और इस प्रेत परिभाषा से कम से कम इस टरमिनोलॉजी वाले हिन्दू समाज के पहचान के साथ जो हैं वो तो मुक्त हो लें और टैक्नोलॉजी बहुत टेढ़ी नहीं है, इसपर कोई प्रोपर्टी राइट नहीं है, कमपलशन है कि एक पूजा–पाठ कोई शादी–विवाह आप इस एक्सरसाइज के किए बगैर शुरू नहीं कर सकते। ये अभी भी है बस जो होता है सिर्फ इतना ही फर्क है कि वो जल्दी में बड़ा वाला, छोटा वाला, छोटा वाला यूं बोलते चले जाएं और ब्राहमंडीय काल से लेकर वो इसमें गौर नहीं फरमाते हैं। लिस्ट है पूरी लिखी हुई वो उसे पढ़ जाते हैं तो अगला सवाल पूछता है कि भई ये लिस्ट क्यों पढ़ रहे हो? ये बकवास का कर्मकांड क्यों कर रहे हो, अगर इस बात को समझ लें तो इसे हिन्दू, मुसलमान, ईसाई से कोई लेना–देना नहीं है उनका जो फ्रेम हो। तो ये इजाजत है। मान लीजिए टाइम वाले में आप कामन भिड़ा भी लेंगे। ये स्पेस वाला कैसे भिड़ाएंगे, साहब हम पाकिस्तान में हैं, हिन्दुस्तान में हैं या फिर दिल्ली में हैं, हम गया में हैं तो आप ओथ लेंगे तो आपको बताना होगा कि हम होश में हैं तो यदि आप शपथ लेंगे तो आपको बताना होगा कि आप कहां पर हैं, समय कितना बजा है, और आप किस जगह पर हैं, तो आपको बताना होगा कि इतने मिनिट और सैकेंड में मैंने ये प्रतीज्ञा की है। तो यदि आप होश में हैं तो ये बताना होगा तो ये उम्मीद की जाती है कि आप बहुत सारी गलतियां नहीं करेंगे, न तो आप किसी से हिपनोटाइज़्ड होंगे। ये कोई सवाल ही नहीं होता कि आपको कोई दूसरा व्यक्ति बेवकूफ

बना सके और आपको हिपनोटाइज कर सके आसानी से। तो आप होश में हैं और यदि आप नहीं हैं तो आप पर कोई भरोसा नहीं किया जा सकता, तो आपको तो प्रेत पकड़े हुए है तो फिर जो प्रेत का कमांडर होगा वो आपसे खेल खेलेगा। वो आपसे मिसाइल बनवाएगा कि मानव बम्ब बनवाएगा? कमाल तो उसका चलेगा। क्योंकि आप तो होश में हैं ही नहीं। आपको तो प्रेत पकड़े हुए है। तो ये जो होश है ये हमारे यहां की बुनियादी कीमती बातें हैं, ये धर्म है, स्वभाव है और हमें होश में रहना हमारा हक है। हमको कोई बेहोश नहीं कर सकता। जितने मॉडल हैं हमारा स्वभाव है जीव मात्र की मुक्ति का अधिकार है और साहब मुक्ति मुफ्त में मिलती नहीं। भई ये क्या है तो हम तो सभी से मुक्त होंगे तो आप सुख से मुक्त हों कि दुख से। तो मुक्त होना है तो सुख और दुख दोनों से मुक्त होना होगा। क्या पता अभी आपको ये बात पसंद है और थोड़ी ही देर में आपकी पसंद बदल जाए, तब क्या होगा? अगला क्या करे? तो अगर पूरा का पूरा मुक्त होना है तो दोनों से मुक्त होना होगा नहीं तो कम से कम ये बात तय कर लें कि आपकी जो इच्छाएं हैं जो डिजायर है वो बदलेंगी नहीं और इसपर हमारा कोई कंट्रोल नहीं है कि बदलेंगी नहीं। बहुत लोग इस प्रैक्टिस में हैं कि हम जिन्दगी भर एक ही चाहत रखेंगे। एक ही तरह का खाना खाएंगे, एक ही रंग का कपड़ा पहनेंगे। हुआ नहीं अक्सर ये हुआ कि जो इस फार्मूला को जबरन लागू करते हैं वो रंगीन कपड़े पहनते हैं, बड़े रंगीन मिजाज होते हैं और दूसरों को कहते हैं कि सिंगल रंग में रहना है। ये रंगीनियत जो है, रंगीन मिजाजी है ये केवल मेरे लिए है। आपको तो प्रेत पकड़ा हुआ है इसलिए आप जो कपड़े पहनेंगे वो तो मैं बताऊंगा न क्योंकि आपको तो रहने का सोहर ही नहीं है, आपको तो अक्ल ही नहीं है। तो हमारे यहां भी बहुत सारे लोग शुरू से इस मिजाज के रहे कि आपका जो स्वधर्म है सोचने का, मुक्ति का, ज्ञान का वो हक छीन लिया है तो ये ट्रेंड रहा और उसके बहुत से हथकंडे हैं और बहुत सारी कोशिश रही हैं। और दूसरी धारा के लोग हैं कि हमें अक्ल का इस्तेमाल करना हमारा बुनियादी हक है और हमें अज्ञान के बंधन से मुक्ति पाना है और इसके लिए जो कीमत चुकानी है वो

चुकाएंगे। वेदांत व्यक्तिवाद भी गया है धर्म में क्योंकि ये धर्म वाला फ्रेम है इसको अगर हम क्लीयर नहीं करेंगे तो ये धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष वाला फ्रेम क्योंकि व्यवस्था उसमें कॉमन है। धर्म का एक अर्थ व्यवस्था जो कि कॉमन है ये अगर नए कॉन्सेप्ट क्लीयर होगा तो बाकी सबका क्लीयर नहीं होगा। तो बाकी सारे हिन्दुस्तान का ही कॉन्सेप्ट क्लीयर नहीं होगा कि पुराने लोगों ने, आम आदमियों ने कैसे सोचा। तो इसमें मुख्य रूप से दो धाराएं हैं। तो ये जो सिलसिला है ये व्यवस्था वाला है तो इसमें दो कॉनसेप्ट हैं, एक कॉनसेप्ट आया वो स्वर्ग वाला है लगभग कॉमन है। थोड़ा–थोड़ा वर्णन अलग है। मैं उसका जानकार नहीं हूं ये क्या वर्णन है मुझे उसके बारे में नहीं मालूम है। मैं पानी का काम करता हूं तो जो हमारे बड़े भाई हैं, बहन हैं तो उनसे पूछा कि साहब जन्नत में ऐसी कौन सी खास बात है जो मेरे लायक है आपके काम के लायक जो होगी सो होगी। तो उन्होंने कहा कि तुम्हारे काम के लायक दो चीजें हैं एक तो बाग तो पसंद है तो बिना बाग के जन्नत क्या। और पानी की अच्छी खासी व्यवस्था होनी चाहिए और बिना पानी के वो चलेंगे कैसे। तो मेरी पसंद की दो चीजें वहां हैं और बाकी चीजें भी होंगी ही। तो जन्नत तो है साहब और हमारे यहां भी स्वर्ग है तो हमने कहा कि बाग हो न हो हम एक पेड़ से काम चला लेंगे। कम से कम एक गाय और एक पेड़ चाहिए। एक गाय इसलिए कि हम जो चाहें वो काम कर लें। और पेड़ जो चाहें वो लाकर दे दें। अब फिलहाल इन प्रतीकों और बिंबों की बात में मैं नहीं फंसूंगा। तो कुछ लोगों ने कहा कि फिर ये जो अपना मन है इसका तो कुछ पता नहीं कि कब किस पर आ जाए। तो एक ये बात कि यदि आप प्रैक्टिस में आ रहे हैं तो पहले अपनी इच्छाओं को पहचान लें। नहीं तो कहा कि आप पेड़ के नीचे गए और आपकी तबियत ये हुई कि साहब बड़ी अच्छी जगह है, हवा भी अच्छी चल रही है, खुशबू भी आ रही है, खाने–पीने के लिए बाग में फल तो हैं ही। लजीज खाने की चीजें भी जो आपने चाहा वो सामने आ गया और इसके साथ ही आपने चाहा तो साथ में एक बड़ा अच्छा सा पलंग भी मिल जाए चाहा तो आ गया और अचानक ही आपके मन में ख्याल आ जाए कि अब सोया जाए,

नींद भी अच्छी ही आनी चाहिए और फिर ख्याल आया कि अगर शेर आ गया तो, तो शेर आ गया उसके बाद ये मन में ख्याल आया कि अगर शेर खा जाए तो, तो शेर ने खा लिया। भाई अगर आपके चाहने से ये सवाल के लिए नमूने रखे गए हैं कि यदि आपके चाहने से खाना आ सकता है, औरत आ सकती है, मर्दों वाला समाज है इसलिए बहनें जरा माफ करें तो उसी हिसाब से सोचा गया तो फिर शेर भी आएगा और आपने सोचा तो शेर आकर खा भी जाएगा। तो यार ऐसी जन्नत में जाने से पहले, उस पेड़ के नीचे जाने से पहले होश में आ जा। अक्ल ठिकाने रख ले कि कोई ऐसी चाहत मरने की या बाग की चाहत न पाल लेना और सोचना नहीं कि बाग आकर खा लेगा। तो ये जन्नत का है। मैं विवरण से मतलब नहीं है। दूसरे ने कहा कि मुझे जन्नत से कोई मतलब नहीं है जन्नत जाए जहन्नुम में। दूसरे ने कहा कि भाई जन्नत में तो गुलामी है। हमारा वाला जन्नत शब्द में वापिस ले रहा हूं। हमारा जो स्वर्ग है उसमें तो गुलामी है। एक बड़ा आंदोलन है।

आरिफ मोहम्मद खान : वापिस क्यों लिया ये तो अनुवाद ही है।

रवीन्द्र कुमार पाठक : माफ करें गलतियां हो जाएंगी और अगर आप टोक देंगे तो मैं आभार मानते हुए वापिस ले लूंगा। तो हमारा वाला जो स्वर्ग है उसमें गुलामी है। इन्द्र को अप्सरा पसंद है तो ठीक है नहीं तो जाओ इधर आदमी लोगों के बारे में संपर्क करो। तो जो कहेगा वो मानना पड़ेगा, पूरी राजशाही है। जो ये साधु या बाकी जो राजा या पढ़े–लिखे लोग थे जो इन्होंने अपनी जो बड़ी–बड़ी औकात वाले थे वो छोड़कर जन्नत गए वो कोई गुलामी के लिए तो नहीं गए तो फिर फंस गए वहां और कहा कि नहीं हमें स्वर्ग नहीं जाना है। तो एक बड़ी धारा है जो ये कहती है कि उसे स्वर्ग नहीं जाना है। संयोग से मैं उस इलाके से आता हूं जहां जो लोग स्वर्ग जाने वाले हैं उनके लिए हमारे यहां जगह नहीं है। वैसे ही बिहार में जिंदा लोगों को ख्याल नहीं रखते हैं। स्पेशलाइजेशन हमारे यहां मुर्दा लोगों का ख्याल रखा जाता है। मैं गया से हूं और मेरे

ख्याल से ये बात सभी की समझ में आ गई होगी। हम तो मरे हुए लोगों का ख्याल रखते हैं। वहां एक .... है आपने उसे क्रास किया तो आपने पुण्य और पाप दोनों ही नष्ट होंगे। सिर्फ पाप ही तो नष्ट होगा नहीं तो फिर ना तो आप जहन्नुम जा सकेंगे ना ही जन्नत जा सकेंगे। तो हिन्दुस्तान का जो धर्म है और जो परंपरागत मोक्ष की परंपरा है वो केवल इस स्वर्ग और नरक वाले फारमेट में नहीं समझ सकते। क्यों जाएंगे? भई इन्द्र ने कहा कि भाई एक ऋषि थे तो कहा कि आप हमारी पालकी उठाओ। उसने कहा था कि मैं तो गलती से मिलने के लिए आया था, ये सजा है। नहूस की कथा है एक ऋषि है इन्द्र के यहां। ऋषि का नाम मैं भूल रहा हूं जब याद आएगा तो बताऊंगा। तो उन्होंने कहा कि अब तो पालकी उठानी पड़ेगी। ऋषि ने कहा कि ये तो भारी मुसीबत है और उसके बाद जो बैठा है उसने कहा कि तेजी से चलो। उसने कहा कि तू तो सांप की तरह चल रहा है, तुझे तो पालकी उठानी आती ही नहीं। और उसके बाद इन्द्र ने उसे श्राप दे दिया कि अगली बार तू शर्प योनि में पैदा होगा। क्योंकि इन्द्र कोई परमानेंट पोस्ट नहीं है। पोस्ट परमानेंट है लेकिन वो राजनीति है कि ये पोस्ट मेरी है और ये कुर्सी मेरी है और हमेशा मेरे ही पास रहे किसी और के पास न जाए। हम लोग इस चीज को हजारों सालों से एक्सेप्ट किए हुए हैं कि यदि परमानेंट कुर्सी होगी तो या तो कुर्सी ही परमानेंट न रखो। लेकिन यदि कुर्सी परमानेंट होगी तो उसमें कोई न कोई परमानेंट बैठने का जुगाड़ करेगा ही करेगा वो मानेगा नहीं। तो कई लोग कहते हैं कि बढ़िया है कि स्वर्ग जाओ ही नहीं तो स्वर्ग जाएंगे ही नहीं तो उसे हिन्दुस्तान के सारे लोग गालियां देती हैं। ये बेकार जगह है, बकवास है। मजबूरी में जो पुराने पुरखे मर गए वो बहुत दिन स्वर्ग में रह लिए उन्हें नरक से स्वर्ग में पहुंचाने की कोशिश करने हमारे यहां लोग आ जाते हैं वहां पर लेकिन अपने लिए नहीं आते। और जाएंगे वहां जहां नहीं जाना है। तो अब तो प्रायश्चित करना पड़ेगा क्योंकि पाप के साथ–साथ सारा पुण्य भी गया। तो ये जो मुक्ति का फ्रेम है, हमारी जगह है वो एक्सपेरीमेंट वाली है। वहां किसी भी फामूर्ले पर कोड नहीं बनता। हम लोग कोड नहीं बनाते हम फामूर्ला

बनाते हैं और कोड तोड़ देते हैं। हजारों साल का इतिहास ये है कि कोड ऑफ कंडक्शन जिसे गीता कहते हैं जैसे पीनल कोड, इंडियन कोड, सिविल कोट हुआ ऐसे बड़े शास्त्र हम लोग नहीं देखते हैं। हम मूल सिद्धान्त करते हैं और पुराने को ध्वस्त कर देते हैं। हां ये सब उजड़ लम्पट हैं, इनमें कोई स्थिरता, हजार–दो हजार साल की नहीं है। इसलिए बुद्ध भी चले जाते हैं, महावीर भी चले जाते हैं। और नए जमाने में कोई पारंपरिक बिंब में काम करेगा तो बिनोबा जी भी चले जाते हैं। तो शर्त दो हैं या तो यश दे जाइए या फिर शरीर दे जाइए। अब ये तो बिंब है। फिर आप यहां आए क्यों थे। यश–अपयश का क्या मायने है। दो में से एक देना पड़ेगा नहीं तो हम आपसे छीन लेंगे आपसे। विनोबा जी गए थे इसमें बेचारे क्योंकि इसमें गांधी विनोबा के काफी लोग हैं श्रद्धा रखने वाले वो बोले कि हम वहां गए थे, रहे थे लेकिन वहां मरे नहीं। मरे वो जाकर बंगाल में थे। तो साहब ग्रामदान, भूमिदान सफल हुआ कि सत्यानाश हुआ बात एक ही है। चीफ मिनिस्टर कहता है कि आपको दान मांगने की जरूरत नहीं है मैं आपके बदले अगर सही याद कर रहा हूं तो यही है कि मैं आपके बदले में कर रहा हूं अभी तक भूदान पूरा हुआ नहीं हमारे यहां। कितनी कमेटियां बनती गईं आज भी कमेटियां हैं। तो ये जो बातें हैं वो बिंब हैं उनके बहुत दूर तक विस्तार है। यदि हम उन पैमानों में अगर हमारा जो समाज है, हमारा जो पैमाना है, हमारी जो पदावली है जब तक हम उस पैमाने में नहीं समझेंगे तो उसकी उन बातों को नहीं समझ सकते हमने अपनी सुविधा के लिए शब्दों का अर्थ ले लिया कि धर्म मतलब कर्तव्य होता है, ये शास्त्र है या एक अति आदर्शवाद है ऐसा नहीं है। फिर एक बात मैं धर्म के बारे में कहना चाहता हूं। दो बातें कहनी जरूरी है। एक तो ये कि हम विविधतावादी हैं, सनातन धर्म की जो परंपरा है वो विविधतावादी है। बहुत सारे संप्रदाय है कि वो उनकी हर दिन की योजना है। हर दिन का खाना अलग, कपड़ा अलग, सौन्दर्य अलग। बेहद सौंदर्य प्रेमी और वो ऐसा है कि एक दिन के सौंदर्य से काम ही नहीं चलता, एक रंग वाली गेरू वाली भी धारा है विविधताओं से भरी दुनिया है हमारी लेकिन उनमें संगति के सूत्र हैं

और समाज को जोड़ने वाले सूत्र हैं। मेरे बड़े भाई अनुपम मिश्र को मैंने कहा कि एक किताब लिखना चाहता हूं तो उन्होंने कहा कि हर चीज किताब में नहीं लिखी जाती है। मेरी तो पूरी बात इतनी वाजिब है कि मेरी पूरी किताब लिखने की योजना खटाई में पड़ गई। इसलिए मैंने किताब नहीं लिखी लेकिन नहीं लिखी तो बेहतर है अच्छा है उन्होंने मना कर दी इसलिए मैंने नहीं लिखी लेकिन यदि मैं लिख देता तो उन सूत्रों को नालायक समझो वो बेहतर है कि नहीं लिखा। कुछ उसमें एक–आध उदाहरण के लिए कह देता हूं। जैसे धर्म है एक सनातम धर्म जैसे चतुवर्ग वाले हैं वो किसी व्यक्ति का धार्मिक जीवन पूरा तब तक नहीं होता जब तक तीर्थ यात्रा नहीं करता जो हिन्दू समाज का प्रचंड अहंकारी वर्ग है वो ब्राह्मण है, क्षत्रिय हैं, वैश्य लोगों को समझदार लोग हैं वो इसमें क्यों पड़ें। कभी–कभी उनको भी अहंकार चढ़ गया है। इसके भी प्रयाप्त विवरण हैं लेकिन वैसे कमाल के लोग हैं धर्म को इन्हीं लोगों ने चलाया है और कुछ जातियों को भारी छूट है। आप दिन में तीन बार धर्म परिवर्तन कर सकते हैं जैन, बौद्ध, सनातनी हो सकते हैं ये कुछ ही जातियों को छूट है सबको ऐसी छूट नहीं है। उन्होंने बहुत अच्छे काम भी किए हैं लेकिन जिन लोगों समाज को जोड़ना था उनके बारे में भी तो सोचिए अरे इतने रजवाड़े तो लड़ ही रहे हैं तारीखें तय हैं कि इस दिन को लड़ाई ही शुरू करनी है। नहीं तो लड़ाई करने का नाटक शुरू करना है, आप राजा हैं अगर आप लड़ाई नहीं करेंगे तो ऐसा कैसे चलेगा वो तो करनी ही पड़ेगी नहीं तो नाटक तो करना ही पड़ेगा। पंचाग में तारीखें तय हैं कि किस दिन फौज लेकर चलना ही है। दोस्ती भी है, रिश्तेदारी भी है तो क्या करें। एक रस्म अदायगी तो लड़ाई की जरूर होगी। वो कर भी लेते थे लेकिन जिनको समाज को जोड़ना था उन्होंने भी कुछ दिमाग लगाया कहा कि ये तीर्थ यात्रा के बगैर पूरी नहीं होगी। छोटे से आदमी के लिए भी आप इतनी जगह घूम लीजिए और अगर आप हैं हैसियत वाले तो आप दक्षिण भारत से चलिए और हिमालय तक आपको जाना है और हिमालय तक आपको जाना है तो वैसे ही तो नहीं चले जाएंगे। यदि आप राजा हैं रजवाड़ें हैं तो तमाम रास्ते बीच रास्ते में पड़ेंगे। तीर्थ

यात्रा करने चले हैं, युद्ध कर नहीं सकते। तीर्थ यात्रा में युद्ध वर्जित है इसलिए दोस्ती तो करनी ही पड़ेगी तो उपाय क्या हैं। यहां से वहां सबसे परमीशन मांगिए, सबको उपहार दीजिए, सबसे उपहार लीजिए और बीच में जितने पुरोहित, पंडे, पंडित हैं सबके पैर छूते हुए यहां से वहां तक जाइए और वहां से वापिस लौटकर अपने घर बिरादरी में खबर कीजिए कि मैंने इतना–इतना पूरा किया, जांच होगी, भोज दीजिए, फिर माना जाएगा कि आपने तीर्थ यात्रा की। दर्शन का तो कोई मतलब ही नहीं है कि गए किसी मंदिर में और थोड़ी सी रेजगारी ले ली। और थोड़ा सा छाबर मूर्ति पर ऐसा दे मारा इसका तो कोई माने मतलब ही नहीं है, दर्शन शब्द का तो कोई मतलब ही नहीं है। अब देखिए कि समाज इस व्यवस्था में जुड़ता है कि नहीं जुड़ता। वहीं देखिए ब्राह्मण है तो उसके अहंकार का ये जो छुआछूत का विषय है ये बड़ा मजेदार विषय है इसको ठीक से नहीं समझा गया मैं अपने बहुत सारे बुजुर्गों से सहमति नहीं रखता हूं कि उन्होंने छुआछूत के विषय को समझने में कोताही की है। और जैसे मैंने अभी कहा कि हालात तो ऐसे हैं कि हिन्दु मुसलमान की तरह और मुसलमान हिन्दू की तरह जीते हैं तो मैंने देखा जो मैंने महसूस किया छुआछूत की समस्या तो पुरानी आपको बहुत से लोगों को मालूम नहीं होगी एक ब्राह्मण दूसरे के यहां खाता–पीता नहीं था मतलब कि कच्ची–पक्की रसोई, छुआछूत का लफड़ा था और सब ये कहते थे कि हम तो सर्वश्रेष्ठ हैं हमसे तो श्रेष्ठ कोई हो ही नहीं सकता। तो ये सबको जोड़कर रखना है कि इस तरह के पागलपन में समाज का जो प्रभुत्व वर्ग है इस तरह से अंहकारी हो जाए तो कभी तो इसे पंचर करो, इसकी हवा निकालो। अब तीर्थ में जाएंगे तो यहां से वहां तक पैर छूते हुए जाएंगे और वहां से वापिस सारी हेकड़ी घूम। तो ये समाज जोड़ने की व्यवस्था का एक उदाहरण है तो ऐसी अनेक बातें हैं जिसके चलते भारतीय समाज इतनी चुनौतियों का हजारों साल से सामना करते हुए भी कुछ न कुछ बचाकर रखा हुआ है। उसमें एक स्वधर्म है संगति। अब मैं इसे कंपलीट करूंगा तीन और विषय हैं। स्वभाव वाला अर्थ दूसरा अर्थ हो गया, कर्तव्य वाला अर्थ दूसरा हो गया और व्यवस्था वाला। उसमें संगति

ये है कि हमारा जो स्वभाव है वो हमारा अधिकार है। व्यवस्था हमारे स्वभाव के विपरीत नहीं बन सकती। अगर बनती है तो अत्याचार है। ये स्थापित सामाजिक मूल्य है जिसको आज का कोई राज्य सत्ता या धर्म सत्ता का कोई व्यक्ति कतई मानने को तैयार नहीं है जैसा कि मुझे लगता है नहीं तो सारा गेम ही खत्म हो गया। ये बहस और ये दावा न केवल धर्म शास्त्रों में हैं वो नाटकों में भी आते हैं। कालिदास का शकुंतला नाटक बहुत चर्चित नाटक है उसमें उसके राजा की अंगूठी मछली निगल लेती है मछुवारा मछली को काटता है और उसके पेट से अंगूठी पायी जाती है वो पकड़ा जाता है और उसे राजा के दरबार में पेश किया जाता है तो उसमें जो बाकी राजा के लोग हैं वो कहते हैं कि ये तो बहुत बदमाश आदमी है, पतित आदमी है, हिंसा करता है। उसको लोग बहुत सी गालियां देते हैं। कालिदास का श्लोक है "सहजन किलजत विनन दितम नहितत कर्म विवर्जयम"। आप निंदा करने से कुछ नहीं होगा जो हमारा सहज जो कर्म है वो आप मना नहीं कर सकते। सवाल उठाता है कि आज की नई बहस नहीं है। बहुत सारे लोग विचलित हो जाते हैं अगर कोई नया आदमी सवाल पूछ ले। सवाल पुराना है जवाब भी स्थिर है वो चैलेंज करता है न्याय व्यवस्था के सामने न्यायधीश वो स्थिर है। सहजन किलजत विनन दितम माने किल का मतलब निश्चित रूप से अगर ये निंदक है तो निंदा करने का क्या होता है हर एक–दूसरे की निंदा करते हैं। आप तो कानून वाले हैं कानून वाले नहितत कर्म विर्वजनीय। कर्म आप मना नहीं करते हो। उसे आप निर्दोष वाली लिस्ट में नहीं डाल सकते। सवाल पूछता है कि पशु मारण कर्म दारुण अनुकंपा मदुरेय स्रोत्रीय। ये जो स्रोतीय ब्राह्मण हैं वो भी तो यज्ञ में पशु मार ही लेते हैं। तो साहब मैं मछली मारता हूं तो आप मेरे मछली मारने को कैसे गलत कह सकते हैं। स्वाभाविक है कि कोई सजा नहीं होती है। क्योंकि ये जो सिद्धान्त है स्वधर्म इसके विरूद्ध व्यवस्था नहीं हो सकती। और होगी तो चलेगी भी नहीं। आग का स्वभाव है जलाने का तो क्या फायदा है व्यवस्था बनाने का? आग बुझेगी तो रहेगी तो वही काम तो उसका वही होगा जलाने का। और इसलिए मनुष्य का स्वभाव है स्वधर्म है मुक्ति पाने का लाख कोशिश

करेंगे आजादी की लड़ाई, आजादी की जंग जारी ही रहेगी। ये हमारा एक भाग मैंने जा समझा अपने लिए वो ये है। इससे बहुत सारे लोग असहमत होंगे मुझे उससे कोई आपत्ति नहीं है जब तक कोई मेरे स्वधर्म का अपहरण नहीं करे जब तक अपहरण न हो तब तक तुम खुद ही अपना स्वधर्म बना लो क्या फर्क पड़ता है या उसको अपनी परंपरा से जो प्राप्त हो। गया में ये हुआ कि लोगों ने कहा कि साहब हम स्वधर्म पहचानें कैसे, संगति तो हो गई, अब स्वधर्म कैसे पहचानें यहीं से इसके बाद भी गहरा खेल है वो कहें कि तुम्हें नहीं पता तुम्हारा स्वधर्म मैं बताऊंगा। अजी! स्व माने मेरा और आप कैसे बताएंगे हुजूर। कहा कि अक्लमंद है तो कहा कि अक्लमंदी से धर्म का कोई लेना–देना नहीं। ये तो स्वभाव है, हमको पता है तो अंततः इस बहस पर बाकी सारे लोगों को झुकना पड़ा तब एक राजनीति हुई कि भाई ये स्व मतलब क्या है और उसके होने पर ही सवाल हुआ। दूसरी धारा के लोग जिनको हुकूमत चलानी है, सत्ता स्थापित करनी है, ऐसे थोड़े आसानी से बैठ जाएंगे। तो ये गेम हुआ कि स्व क्या है तो उसके गेम भी मेरी समझ में आता है कि जो उसका स्व है वही मेरा स्व है। वो आपके कहने से नहीं है यहां जो मेरा वातावरण और परिवेश है इस बिंदु पर मैं आपका बाकी सारी चीजें हैं उससे हिसाब जुड़ता है। कि जो प्रकृति है वो बड़ी है और स्व अकेले नहीं बनता ये भारत में एक बड़ा चिंतन है। अभी ज्यादा हो गया है कि स्व मतलब कि हम अकेले हैं, बाकी नहीं हैं। एक नाउन है उसके बहुत सारे एडजेक्टिव हैं। एक सबजेक्ट है और बाकी बहुत सारे प्रेडिकेटस हैं, एक्सटेंशन ऑफ प्रेडिकेटस हैं। एक्सटेंशन ऑफ एडजेक्टिव एंड एडवर्बस हैं। अगर उस लैंगवेज की टर्मिनोलॉजी में कहें तो आप एक विशिष्टि है और विशेष्य और विशेषण का संबंध है और मैं हूं तो मुझे पता है कि मैं हूं इसीलिए मैं हूं। सबको ये बोध होता है कि मैं हूं इसके बाद जैसा मेरा विशेषण है जिसका जैसा विशेषण है तो वो है। बच्चा है तो वो है। तो स्वधर्म आप कैसे तय करेंगे। सबके लिए कॉमन हो ही नहीं सकता। बच्चे का अलग, बूढ़े का अलग। मैं वो काम करूंगा जो पांच साल का बच्चा करता है। मेरे बेटे ने कहा मेरे आस–पास के लोगों ने

कहा कि ये क्या सनक है आप लोगों को खपत हो गई है। जहां आप लोग जुड़ जाते हैं मर्द और औरत। इस लड़के की इससे शादी करवाओ, उसकी उससे शादी करवाओ। तुम लोगों को कोई काम नहीं मिलता उस लड़के ने मुझसे पूछा तो मैंने कहा कि ये बता कि इतना नाराज क्यों हो अब ये बताओ कि यदि हम अपने लिए फिर से शुरू कर दें कि हम औरतें और लड़कियां ढूंड़ना शुरू करें और मर्द अपनी शादी के बारे में योजना बनाएं तो क्या बर्दाशत होगा क्या? अब ये ही काम है ही कि तुम लोगों की शादी कराने के बारे में सोचें। जहां लड़का–लड़की मिल गए तो वहां उनकी जोड़ी बनाना शुरू करें। उम्र के हिसाब से यही तो हमारा स्वधर्म है यदि हम ऐसा नहीं करते हैं तो जरूर गड़बड़ी है। बाल–बच्चे की शादी और उनको खुश रखने के बारे में छोड़कर यदि हम लोग अपनी ही शादी के बारे में सेटिसफाइड नहीं हो रहे हैं अभी उनके मन में दुविधा ही बची है इसका क्या इलाज है? वो तो अपने स्वधर्म से ही चित हो रहे हैं। क्या कोई उपाय है इलाज भी है। वो काम वाले समय में मैं आऊंगा। ये हमारा फ्रेम है इस ढंग से लोगों ने सोचा और सारी बहस को इस फ्रेम के भीतर रखकर सोचा तभी विविधताओं की आजादी मिली। अगर स्वधर्म नहीं मानेंगे तो हम विविधता वादी, बहुलतावादी दृष्टिकोण नहीं रख सकते। स्वधर्म को यदि हम नहीं मानें तो मुक्ति का कोई माने ही नहीं होता है। फिर मुक्ति का कोई माने रह नहीं जाता। और भी जो पोलिटिक्ल आजादी के ऐंगल होते हैं वो कभी मौका मिलेगा तो शेयर करेंगे, तो सीखेंगे। अब मैं अर्थ में आता हूं। यहां पर अर्थ पारिभाषिक है। अर्थ का मतलब है आजीविका, संपत्ति और कर्म या हमारे शब्दों की कुछ बुजुर्ग लोगों ने गड़बड़झाला कर दिया, चुरा लिया है जिसमें हमारे 15–20 बेशकीमती शब्दों के अर्थ गायब हो चुके हैं। नई पीढ़ी ऐसा मान रही है कि जैसे कि वो खरे की कोई सींग हो वो होती हो कि नहीं होती होगी या नहीं होती होगी लेकिन गायब तो हो ही गई होगी। ये इस तरह की बकवास बातें चल रही हैं। जो शास्त्र है इसकी एक परंपरा है पूरी। अब वो कह रहे हैं कि अर्थशास्त्र को जो इकोनॉमी का तजुर्मा वाला अर्थशास्त्र है वो हमारा अर्थशास्त्र नहीं है उसमें आदम स्मिृति तो है

नहीं, उनका नाम भी नहीं लिखा गया है तो उनके द्वारा जो परिभाषाएं दी गई हैं वो हमारा अर्थशास्त्र कैसे हो गया, राजा पहले थे, शिल्प था, इतने व्यापार हो रहे थे तो टैक्सेसन तो होगा ही। टैक्सेसन की जितनी जटिलताएं, आज के समय में उसका जितने भी प्रकार से वर्गीकरण कर लें उसे कम्प्यूटर से घालमेल किया जाता होगा उसको छोड़कर रोकड़ बही जहां तक है यहां तक कि बेईमानियों का विवरण अर्थशास्त्र की पुस्तकों में मिलता है। और कैसे बेईमानी से टैक्स लिया जाना चाहिए, ईमानदारी से कैसे टैक्स लिया जाना चाहिए, काबिल लोगों को बेवकूफ बनाकर राजा संपत्ति कैसे अर्जित की जानी चाहिए। ये सारे छल–प्रपंच भी आपको अर्थशास्त्र की पुस्तकों में मिलते हैं इसका कन्टेन्ट क्या है इसकी सूचना मैं आपको, आप अंदाजा लगा लीजिए कि क्या हैं ये अर्थशास्त्र की किताबें। वो पता है कि टैक्स कलैक्टर सबसे भारी चोर होता है उसकी चोरी पकड़ने का कैसे क्योंकि जो व्यापारी वर्ग है वो उसको रिश्वत दे देता है और ये कह देता है कि साहब माप–तोल में गड़बड़ी हो जाती है। तो माप–तोल का अध्यक्ष होगा माप–तोल नया नहीं है। तो माप–तोल के बाट रखे जाएंगे, उसपर ऐसी मोहर लगेगी तो ये सारी बातें अर्थशास्त्र की पुस्तकों में मिलती हैं। विजय जी ने मुझे एक किताब दी थी पढ़ने को तो वो उसमें वही अर्थशास्त्र के तजुर्मे वाली बात है। तो फिर वहीं से शुरू करते हैं तो ये जो फंस गया है कि यदि यूरोप वाले ही केवल और केवल अक्लमंद हैं तो उनके अलावा सारी दुनिया में केवल सारे लोग बेवकूफ ही होते हैं और हिस्ट्री को एक ब्लैक हिस्ट्री और व्हाइट हिस्ट्री ही बना लिया। सबको वो ब्लैक हिस्ट्री ही दिखते हैं चाहे वो जियोग्रफी का मामला हो कि ये तो काला पक्ष है इससे पहले हिस्ट्री नहीं थी और हिस्ट्री तो यहीं से शुरू होती है। माफ कीजिए मेरा मकसद किसी पर कटाक्ष करने का नहीं है लेकिन अगर रेफरेन्स करने का अगर रेफरेन्स प्वाइंट अगर वही होता है कि यदि ईसा मसीह साहब पैदा नहीं हुए होते तो संसार में कोई पैदा ही नहीं हुआ होता। वो ही इस तरह का रेफरेंस लेकर साइंस और टैक्नोलॉजी की बात अगर की जाती है तो पूरी की पूरी बेमानी हो जाती है। और क्योंकि सोशल साइंस ने

सांइस होने का दावा किया है इसलिए मेरा आरोप उनपर भी लाजमी बनता है। अगर बाकी वो कोई धार्मिक प्रवचन करता हो तो कोई बात नहीं लेकिन वो जब साइंस की बात करते हैं तो उस फ्रेम में बैठता नहीं है तो ये अर्थशास्त्र की तमाम किताबें हैं तो ये हो गया आजीविका इसमें सबसे मशहूर किताब हुई है कौटिल्य का अर्थशास्त्र, चाणक्य का अर्थशास्त्र वो बाजार में उपलब्ध है हिन्दी ट्रांसलेशन के साथ, अंग्रेजी के साथ अन्य भाषाओं में भी हो सकता है, देखने की चीज है। वो लिखते हैं कि इससे पहले भी अर्थशास्त्र नाम से किताबें चलती थी और ये लिखते हैं कि इसके बाद भी कई किताबें अर्थशास्त्र के नाम से आईं। पानी की व्यवस्था कैसे करें, जमीन, अक्लमंद को बेवकूफ कैसे बनाया जाए। अक्लमंद कौन हैं? उनकी दृष्टि में दो ही अक्लमंद हैं एक तो ब्राह्मण अक्लमंद हैं जो बेसिकली बेवकूफ है और दूसरा व्यापारी वर्ग। माफ करना अब ये चाणक्य कह रहे हैं हम लोगों को गालियां दी, मगध वाले को ज्यादा चाणक्य के कारण भी पड़ रही है। इसने किसी को नहीं छोड़ा और अपनी जात वालों को तो छोड़ा ही नहीं राजा के सामने। पता नहीं कितने बंजर खराब वाली जमीन है ये ब्राह्मणों को दे दो, टैक्स मत लेना दिलो–जान से इसको आबाद कर देंगे। ये उनको अक्ल आती है कि बंजर जमीन–ऊसर जमीन को उपजाऊ कैसे बनाएं, इनको दान में दे दो तो वो लगे रहेंगे। और ये माफी है कि साहब इनसे टैक्स नहीं लेना है। यदि ये बदमाशी करें, लड़ाई–झगड़ा करें, दंगें करें तो इनसे सजा के रूप में वो सारा वापिस ले लेना है। अब ये कौन दावा करे के ये लड़ाई–झगड़े नहीं होंगे, क्रिमिनल एक्ट नहीं होंगे। ये पूरा विवरण आपको कौटिल्य के अर्थशास्त्र में उपलब्ध होगा। इसमें मैं या मेरी कोई ईजाद नहीं है सच कहिए तो मैंने जो भी कहा है उसमें मेरी अपनी कोई ईजाद नहीं है। मेरी पसंद–नापसंद जरूर है तो ये अर्थ का मतलब आजीविका, संपत्ति और अब ये तर्क ये कि संगति कैसे बने। तो ये संगति क्या है यदि कोई कर, टैक्स आजीविका को नष्ट करने लगे तो वो स्वतः ही नष्ट हो जाएगा। थोड़ी देर के लिए तो ये हो सकता है लेकिन बहुत सिंपल सी बात है कि कोई कर टैक्स कर और शुल्क दोनों का प्रयोग

किया गया है। ये सब गोलमाल है असल बात वही है उसमें से पैसा निकालने की। कहीं एक कर उसकी टैक्नीकल परिभाषाएं जो भी बदल लें, अर्थ एक ही होता है। जैसे कि अमुख–अमुख अवसर पर लिए जाने वाले कर को शुल्क कहते हैं। अमुख अवसर पर कर कहते हैं तो ये पारिभाषिक शब्द हैं। यदि आजीविका ही न रहे तो क्या होगा। तो आजीविका के शब्द का जो आजीविका अर्थ है तो कर उतना नहीं हो सकता कि आजीविका ही खत्म हो जाए। जब राजा अत्याचारी हो जाता है और अंत में राज्य समाप्त हो जाता है। व्यापारी वर्ग को अगर मुनाफा ही नहीं होगा तो कौन माल बेचने आएगा। चाणक्य वर्ग ने ये भी हिदायत कर दी है कि देख भाई कर के बिना तो राज्य नहीं चलेगा लेकिन जो ये कर है ये आजीविका को बढ़ाने वाला कर ही होना चाहिए और ऐसे मौके–बेमौके कोई अकाल आ जाए, कोई संकट आ जाए और वो याद रखना के जो संपत्तिक को बढ़ाने वाला आदमी है उससे कम कर लो। जैसे जो नई खेती बनाएगा, नए तालाब बनाएगा उसे न केवल करों में माफी ही न दो बल्कि उसे सपोर्ट भी करो। क्योंकि आजीविका रहेगी तभी कर अधिक आएगा ये संतुलन बनाकर रखो। ये अर्थ का मामला आएगा इसके बावजूद ये सारी सफाई के बावजूद ये विसंगतियों वाले भी राजे–रजवाड़े पर्याप्त हुए और धर्म का पुरूषार्थ ये जो दूसरा क्षेत्र है उसमें उन्होंने भारी अतिक्रमण किया। इसके चलते बहुत सारी समस्याएं पैदा हुई अब मैं काम पर आता हूं। क्योंकि अर्थ की भी जटिलताएं उतनी ही हैं और मैं समझता हूं कि डारेक्ट टैक्स और इनडारेक्ट टैक्स इतने शब्दों से काम चल जाएगा। सभी समझदार लोग, सभी ज्ञानी लोग यहां पर हैं तो इनडारेक्ट टैक्सेशन में बेवकूफ बनाकर लिया जाता है और डारेक्ट टैक्स में थोड़ा देने वाले को सीधे–सीधे जोड़ता है तो ये खेल तमाशे हैं ये पहले भी हो रहे थे आज उसे ज्यादा जटिल तरीके से बना दिया है। अब आते हैं काम पर ये बड़ा ही विचित्र और जरूरी विषय है बाकी लोगों को नजरिया क्या है बाकी इसमें भी ये बहुआयामी है और बाकी मैं जो समझता हूं कि काम की जो बहस है वो मोक्ष से ज्यादा गंभीरता से लोगों ने इसको लिया है। बाकी हमारी तो पैदाइश ही इससे होती है। अगर

काम न हो और काम का मतलब सैक्सुअल डिजायर, सैक्सुअल प्लैज़र, सैक्सुअल एक्टिविटी मैं इसी पारिभाषिक संदर्भ में ही रख रहा हूं उसके पीछे का जो संदर्भ है और उसके बाद का भी। ये मामला अगर अस्तित्व से इसकी कथा शुरू होती है और कॉसमिक और इसके लिए जरा मुश्किल हो रही है शब्दों की जो हिन्दी की जो मारा–मारा, चोरा–चोरी हुई है पारंपरिक शब्दों को लेकर और कुछ बहुत आसानी से स्पष्ट हो जाती है तो मैं यहां पर भाषा की बात करने तो आया नहीं हूं अपनी बात रखने आया हूं। तो वो अस्तित्व से लेकर कॉसमिक मतलब कि ये ब्राह्माणीय जो संभोग है जो चरम सुख है मैं उसी के संदर्भ में कह रहा हूं। वहां तक इस काम की व्यापकता है और वो सुख है वो पॉजिटिव है वो नेगेटिव नहीं है। वो बंधन से मुक्ति जैसी अभावागात्मक अवधारणा नहीं है। आमतौर से जितनी बातें ज्ञात हैं उनको कहने की कोई जरूरत नहीं है लेकिन जो बातें आमतौर से चर्चित और ज्ञात नहीं हैं उसके बारे में तो कुछ कहना पड़ेगा ये हमारे यहां की जो परंपरागत है उसमें कहा गया कि साहब कि कोई न तो पूरी तरह से मर्द है न कोई औरत है अब इस फ्रेम के साथ बात होती है। हर आदमी आधा आदमी है आधा मर्द है। तो एक आदमी मर्द है और एक औरत है इस फ्रेम में वो काम नहीं करता। तो बाकी जो बहसें हैं जो इस फ्रेम में हैं कि एक आदमी आधा मर्द है और आधा औरत इस फ्रेम में वो बहस काम की नहीं हो सकती। केवल इसी फ्रेम में नहीं हो सकती। इस फ्रेम में होगी कि पूरी तरह से कोई न मर्द है न औरत है। अब ये सब कोई कह सकता है कि ये तो सारी काल्पनिक बातें हैं ये तो आपका मिथ है। ये तो आपकी माइथोलॉजी है ये हुआ करे या न करे ये अलग बात है। लेकिन ये हमारी चिंता का विषय जरूर रहा है। चिंता होने का विषय यहां तक है कि शादी होने से पहले लड़का–लड़की दिखाने की प्रक्रिया में वो भीतर के मर्द और औरत की पहचान जरूर होनी चाहिए तब उसकी पहचान होनी चाहिए। और कुछ क्षेत्रों में बनारस के पूर्वजों में इसकी सावधानी रखी गई कि जब तक ये जैसे कोई लड़की है तो जब तक उसकी भीतर वाले मर्द से जान–पहचान नहीं हुई और अगर लड़का है और भीतर

वाले औरत से जान–पहचान नहीं हुई तो वो शादी नहीं होने देंगे। ये इतना सीरियस कन्सर्न है और नहीं होने देंगे तब क्या करेंगे। तो अगर आप समाज के व्यवहार में कोई पैमाना तय करेंगे तो जिम्मेवारी लेनी पड़ेगी। तो इसकी जिम्मेदारी औरतों को दी गईं यहां तक कि जो ब्राह्मण जातियां हैं और जो क्षत्रिय जो अपने आपको सवर्ण जाति का कहते हैं या जो अपने–आपको बहुत ज्यादा काबिल मानते हैं उनके यहां भी ट्रेनिंग का काम औरतों का है, केवल वही ट्रेनिंग दे सकते हैं और वो लोग अकेले नहीं बाकी जाति वालों के साथ मिलकर ट्रेनिंग दे सकते हैं उस ट्रेनिंग के दौरान कोई मर्द अलाउड नहीं होगा। अब चीजें बिगड़ी हैं और यदि मैं अपने बचपन से याद करूं तो हमारे यहां ये चीजें तब तक बची हुई थी। ये कोशिश होती है अगर कोई जाति हो उसमें संस्कृत के मंत्र–वंत्र की कोई जरूरत नहीं है ये जो पैमाना होता है उसमें ये है कि साहब ये तो क्या बकवास है, लोकाचार है, क्या उलझनें हैं। ये सनक है। वगैरह–वगैरह जो गालियां हो सकती थीं वो उसको दी गई, उस समय जितनी जरूरी चीजें थीं वो की जाती थी खूब गालियां होती थीं। एक लड़की को खूब सताया जाता था। उसको पूरी तरह से उत्तेजित किया जाता था। इसके बाद आपको संजेवित रहना है। वो सारी भद्दी–भद्दी चीजों के बीच काम की चीज बता देता था। और आपको जाना है सुनना है, समझना है धीरज के साथ। तैयारी करके घर से जाना हैं लड़की जाए या लड़का जाए ससुराल फिर वहां उसकी जांच भी होनी है एगजामिनेशन वहां है। कुछ क्षेत्रों ने तो ये नियम बनाया कि आप वो वैदिक मंत्रों वाली शादी रखिए अपने पास हम लड़का–लड़की को। लड़की को तो नहीं क्योंकि है तो ये पुरूष प्रधान देश तो लड़की को तो लड़के के यहां जाना है तो साहब वो बारात जाए। कि हो गया ऊपर का काम दिखावटी काम इसका कोई वैरिफिकेशन नहीं है। हम लड़के को रोक लेते हैं। यदि ट्रेनिंग घर में पूरी नहीं हुई। शर्म खा गई मां–बहनें तो हम यहां पर पूरा कर लेते हैं और टेस्ट कर लेंगे तब मानेंगे कि शादी पक्की है। वरना शादी टूट सकती है और यदि उस पीरियड तक शादी टूट जाती है तो उसको टूटी हुई शादी नहीं माना जा सकता। ये है समाज की स्वीकृति

आप रखिए धर्म शास्त्र कहां गया धर्म शास्त्र? वो नहीं क्योंकि ये जो चार पुरूषार्थ हैं जिसमें हमारा फ्रेम है, ये हमारे समाज का फ्रेम है उससे बड़ा जाति का फ्रेम नहीं हो सकता। समाज के फ्रेम के बाहर अगर जाति जाएगी तो वो असामाजिक जाति है सीधा–सीधा है। मान लीजिए कि आप असामाजिक हैं और उसका दंड का भी प्रावधान है अगर नहीं मानते तो। तो वहां से शुरू होती है कहानी। ये जो सो काल्ड सेक्स की परिभाषा है या किसी भी भाषा का मैं शब्द प्रयोग करूंगा तो वही है यदि आप मुझे इजाजत दें कि कभी–कभी मैं उस तरह के शब्दों का प्रयोग कर सकूं वरना इस विषय पर बात नहीं हो सकेगी। ये बड़े लोग भी हैं और छोटे लोग भी हैं लेकिन फिर भी कोई छोटा बच्चा तो है नहीं यहां सभी लोग अनुभवी हैं। तो ये है कि आपको उतेजना का पता ही नहीं है। जो बिंब हैं हमारे यहां एक बिंब है यदि हम उस बिंब को समझेंगे तो बात क्लीयर होगी। अब हम उस बिंब को समझेंगे। कि साहब शिव जी ने तीसरा नेत्र खोला और कामदेव भस्म हो गए। अब क्या होगा अब सृष्टि कैसे चलेगी अब तो कामदेव तो जल गए। पहले क्या करते थे कामदेव कुछ उपाय करते थे कुछ ध्वनि का उपयोग करते थे, गंद का उपयोग करते थे, रंगों को उपयोग करते थे, मुख्य रूप से गंध का बाकी जीवों में जैसे होता है हमारी भी उत्तेजना गंध आधारित ही मुख्य रूप से थी, ध्वनि भी थी, लहसय भी था और आकर्षण करना जो सभी जीवों में होता है। ये मनुष्य में क्या घटना घटी। ये तो बिंब है तो कहा गया कि साहब कामदेव नष्ट हो गया ये बिंब में कहा गया और बाद में इसे शादी–ब्याह के समय में समझाया जाता था कि माने इसका मतलब क्या है और ऐसे बहुत सारे बिंब है हमारे यहां पूछा जाएगा कि कामाख्या में छह बिंब आए थे पूछा जाएगा कि क्या हुआ शादी हो रही है और वही सब पहेलियों में बताई जाती हैं। कोई ब्याह आसान नहीं कामाख्या में कोई ब्याह करके आया घूमकर आया ससुराल से घूमकर आया, या कामाख्या से आया तो बात इतनी सी है ससुराल जाएं कि कामाख्या जाएं बात एक ही है। और मर्द वहीं ससुराल में बस गया वापिस नहीं आया तो भारी मुसीबत है। कोई आसाम में जाकर बस गया वहीं पर रह गया स्त्री सत्ता में विलीन

हो गया, पुरूष सत्ता में विलीन नहीं हुआ तो संकट दोनों का मान बराबर होगा ससुराल में बसने का और कामाख्या में बसने का अगर लड़का उस तरह चला गया तो। तो बिंब एक ही है तो कहा गया कि आपने तो अनर्थ ही कर दिया। संसार का तो आपने नाश ही कर दिया। मानव जाति तो गई, बाकी तो सभी जीव–जन्तु पैदा होंगे लेकिन पैदा कैसे होंगे। तो कहा गया कि अब ऐसा करते हैं आपको नेक काम के लिए जगाया गया था आप तो एकान्त व्यक्तिवाद में डूबे हुए थे, इस संसार का क्या होगा। ऐसा व्यक्तिवाद तो ठीक नहीं है। आपके नितांत व्यक्तिवाद में विध्न डाला गया तो आपको इतना गुस्सा आ रहा है। नेक काम के लिए आपको परेशान किया, कुछ पुरस्कार भी दे दीजिए तो उन्होंने कहा कि अच्छा ठीक है। अब मानव के मन में ही रहा करेंगे। तो आगे से काम भावना के लिए पूर्ण के लिए उसके जागरण के लिए किसी बाहरी सहारे की जरूरत नहीं रहेगी। अब वो सपने में भी काम भावना सताती है अब औकात हो कि न हो वो अब 80–90 साल की उम्र में भी सताती है और नौजवान जिनकी क्षमता हो उनके साथ और हम लोगों के साथ क्या होता है वो सब लोग जानते हैं। वो बताने की जरूरत नहीं है। तो कुछ लोगों ने कहा कि हमारे व्यक्तिवाद का क्या होगा। तो कहा कि ये तो सूत्र शिवजी ने दे दिया। दोनों सूत्र दे दिया। ये बाहरी जरूरत नहीं है ये तो भीतर से चलेगा तो दूसरा भी आ गया कि भई काम जाना नितेय मूलम्। हम तो जड़ जान गए। "काम जाना नितेय मूलम् संकलपात किलजाएशै" तुम तो संकल्प करने पर ही पैदा होते हो। "ना हम संकल्पसियामी।" मैं संकल्प ही नहीं करूंगा। "तैन तुम न भविष्यात्।" तो तुम पैदा ही नहीं होगे। तो तुम परेशान क्या करोगे तो ये कहना आसान है लेकिन उस मैंटल स्टेट वाले के लिए जो कोई संकल्प ही नहीं करता। बाकी कामों के लिए संकल्प आप करते हैं आदत लगी ही हुई है तो आटोमेटिकली स्वतः हो ही जाएगा। अगर किसी चीज के लिए वहीं मस्ती में रहते हैं अपने आप के लिए आपको परवाह नहीं। तो इसकी भी परवाह नहीं। ये आम जैसे लापरवाह होते हैं। बाकी को कब पता चलता है जैसे कि मैट्रो में, पुरानी दिल्ली की बसों में कि बगल में मर्द है। ये जो हम कुछ सावधान होते हैं

कुछ सोचते हैं तो पता चलता है। वरना तो पता भी नहीं चलता तो ये काम का ये फ्रेम है। इससे भी सीरियस फ्रेम है लोगों ने कहा कि एक जो हम बंधन बंदिश लगाए हुए हैं वो ये कि साहब इस काम का उद्देश्य क्या है तो ये धर्म में आया। तो ये धर्म में अपनी–अपनी लोगों ने वहां विविधताएं पूर्ण व्याख्याएं दी और मैंने जो धर्मशास्त्रों को पढ़ा है ऐसे रिसर्च के दौरान विभिन्न क्षेत्रों में धर्मशास्त्र के ग्रंथ हैं उनको पढ़ने में मजा आया, कुछ मजबूरी भी थी। आप जानते हैं सत्य प्रकाश मित्तल जी उन लोगों का ग्रुप एक रिसर्च कर रहा था भीख मांगने वाले विधवाओं के ऊपर तो मैं दुभाषिए के तौर पर काम कर रहा था तो मैं जो सोशिएयोलॉजी एन्थ्रोपोलॉजी वाले लोग हैं यो पुराने धर्मशास्त्री लोगों के बीच में संस्कृत पढ़कर वो जो धर्मशास्त्री हैं दक्षिण भारत के तो उन्होंने हमसे कहा कि भई कि हमसे तमिल में बात करो, संस्कृत में बात करो, या तो तेलगू में बात करो नहीं तो हम हिन्दी में बात नहीं करेंगे हम तो अंग्रेजी में बात करेंगे तो ये उन लोगों के सामने समस्या खड़ी हुई मैं बचा था परीक्षा में लेट आया तो उस हिसाब से मेरी ड्यूटी लग गई तो अब धर्म को अधर्म से भी जोड़े जाइए। धर्म से बिना जुड़े तो व्यवस्था रूपी अर्थ है और व्यवस्था रूपी अर्थ है तो धर्म सब जगह लागू होगा। अब काम में ये स्वभाव है तो स्वभाव है पुरूष और स्त्री का विपरीत आकर्षण होता है यह एक प्राकृतिक सत्य है। इसी क्रिया से हम पैदा हुए हैं, हम भी यही करते हैं अगली पीढ़ी भी यही करेगी तो हमारा ये कर्तव्य बनता है कि इस व्यवस्था को जारी रखने के लिए अनुकूल परिस्थितियों का सृजन करें या इसकी यही व्यवस्था हो। इसमें दो पेंच हैं। पेंच ये है कि प्रजनन की पेंच है और उत्तराधिकार की पेंच है और प्रजनन उत्तराधिकार के साथ फिर वही संपत्ति की पेंच है फिर स्वधर्म आयेगा अब लाहोल स्मिति के इलाके में या और हिमालय के दुगर्म इलाकों में जहां इतनी जमीन ही नहीं है कि आप उसका बंटवारा कर सकें तो आप करेंगे क्या? ये कोई मैदानी क्षेत्र तो है नहीं कि थोड़े जंगल और साफ कर लो और जमीन बढ़ा ली तो वहां काम पुरूषार्थ के लिए ही नहीं और जो विवाह संस्था बनेगी उसका स्वरूप वही नहीं होगा। जो कामाख्या में, असम में जो खासी समाज है

उसके यहां जो विवाह संबंधी अवधारणा होती है वही नहीं होगी क्योंकि स्त्री प्रधान राज्य है। मर्द का कोई मूल्य ही नहीं है एक जानवर से भी घटिया मूल्य है बेशक चाहें कितने में भी खरीद सकते हैं। किसी नारीवादी को बोरो करना और सो काल्ड नारीवादी बोरो कर सकते हैं। इधर लोगों ने कहा कि खबरदार कामाख्या नहीं जाना है, स्त्री सत्ता है बाकयदा एक्सचेंज हो सकता है, घर के भीतर एक्सचेंज कर सकते हैं और पैसा अगर मर्द की कीमत ज्यादा है उसको घर से बाहर निकालने में कीमत ज्यादा देनी पड़ेगी तो उसे राइट है एक मर्द औरत के बदले एक औरत। तो अमूमन ये किया गया कि साहब बेमानियां ही तो हैं। उसमें औरतें कम क्यों रहें यदि मर्दों ने इतना किया है तो कहा गया कि घर की बूढ़ी मरने वाली के साथ तुम्हारा रिश्ता जोड़ देते हैं। या तो कम्पनसेशन ले लो या फिर बुढ़िया ले लो। तो उसमें बिना कम्पनसेशन लिया हुआ मर्द घर से भाग खड़ा होता है। ये भी एक सत्य है। ये अपना मुल्क है मैं अपने मित्रों से कहता हूं कि क्या समान नागरिक संहिता की बकवास कर रहे हो ये कोर्ट की मजबूरी है हमारी मजबूरी तो नहीं है। ये कोर्ट की मजबूरी है, कोर्ट की मजबूरी में भी हमें सहानुभूति रखनी होगी। मैं अगर बहक नहीं रहा हूं तो वो अभी मुकदमा ईजाद नहीं है रेफरेन्स में मैं बाद में दे भी सकता हूं। कोर्ट की मजबूरी ये है कि एक खासे समाज के युवक सुप्रीम कोर्ट में मुकदमा करते हैं कि साहब कि बाकी जगह आपने ये प्रोबिशन एक्ट लागू किया है कि ये शादी यहां नहीं बाहर होगी। हमारी पहचान को जो एक सुरक्षित जनजातियां हैं उनके लिए आपने कानून में कुछ प्रावधान कर रखे हैं तो ये हमारी खासी जनजाति सुरक्षित जनजाति है, ऐसी व्यवस्था अन्य कहीं नहीं है। यहां हमारी लड़कियों और औरतों पर पाबंदी लगाई जाए कि ये हमसे बाहर में शादी न करें। ये सुप्रीम कोर्ट में मुकदमा दायर होता है। तो बेचारा कोर्ट ये नया वाला पैमाना जो है जो ये समानता वाला है इसमें फंसे और बाकी जगह पर इंटरकास्ट मैरिज आदि की बात होती है जिसको कानून में मान्यता है कि वो सबको दे। और भारत में एक टुकड़े के लिए भारत में एक औरत को अपने मन के मुताबिक शादी करने की रोक कैसे लगांए और यदि

लगाएं तो फिर वो जो संरक्षण वाला मामला है वो खंडित होने का मामला है। तो अगर किसी का इसी तरह से अपमान हो जाएगा तो हो जाएगा तो हो जाएगा। जो कानून बनाने वाले लोग हैं कितनी गंभीरता से कानून बनाते हैं और इन कानून बनाने वाले मसलों पर कानून बनाने वाले संसद में या स्टेट कॉउन्सिल में किस तरह की बहस की प्रक्रिया होती है वो तो हमें बताने की जरूरत नहीं है। उससे हमें कुछ लेना–देना नहीं है। वो तो ड्राफ्ट कमेटियां वगैरह जो प्रपोज कर दें। साहब वो स्थानीय जरूरतों के हिसाब से जो थोड़ा–मोड़ा हो जाए उससे कोई मतलब नहीं तो कोर्ट दबाव देता है तो बहुत सारे कानून बनते हैं तो ये हमारा हिसाब है। सन्यास वगैरह की, धर्म की जो वयवस्था है अभी एक नौजवान पूछ रहे थे कि है नहीं। सिलसिला इतना व्यापक नहीं है मॉडल है। और अगर व्यापक होता तो उसकी अंदरूनी व्यवस्था होती। हमारा जो हिमाचल प्रदेश का जो इलाका है दोनों जगह जाने से वहां पर खतरा है। कामाख्या वाले उधर बिहार वाले कामाख्या से खतरा है। और इधर जो जाए कुल्लू हो जाए उल्लू। तो कुल्लू मनाली न जाना यदि चलेंगे तो किसी समाज पर टिप्पणी हो जाएगी ऐसे बहुत सारे सलोग्नस चलते हैं लेकिन मैं उनपर नहीं जाऊंगा। लेकिन सलोगन चलते हैं और लो उसे सीरियसली लेते हैं। जमीन बट नहीं सकती और विवाह और काम पुरूषार्थ को इस तरह से किया कि एक लड़के को तो गोमपा में जाना है साहब। एक को शादी करना पड़ेगा और वो जाएगा बौद्ध मठ में या स्व मठ में। बौद्ध मठ ही हैं, स्व मठ बहुत ही कम न के बराबर हैं। तो उनको तो जाना पड़ेगा एक बार एक गया। मुख्य लक्ष्य संपत्ति और उत्तराधिकार पर ध्यान केन्द्रित है यह विवाह नामक संस्था को जो धर्म की मूल नैतिकता है उससे कोई लेना–देना है ऐसा मैं कुछ नहीं समझ सका इसीलिए मैंने शुरू में माफी मांगी थी कि मैंने जो समझा है वो मैं कह रहा हूं। मुझे नहीं लगा कि विवाह जैसी संस्था में जो भारतीय धर्म के पैमाने हैं और जो बड़े–बड़े मानक जो चर्चित मानक हैं उसका ख्याल रखा गया हो, बिल्कुल नहीं। वहां भी स्वधर्म का ख्याल रखा गया है कि साहब हमारा तो ये ही हाल है साहब, अब क्या बांटे इतने छोटे–छोटे जो

टुकड़े हैं उसमें कैसे हिसाब बांटे तो लिहाजा हम आधे ही बांट लेते हैं। हम प्रजनन के इस अधिकार को बांट लेंगे जो काम जो स्वभाव है उसका क्या होगा वो तो प्राकृतिक सत्य है अपनी मर्जी से कोई साधु हो जाए, बैरागी हो जाए, घर छोड़कर चला जाए तो बात अलग है लेकिन यदि आप एक नियम बनाते हैं कि आपको जाना ही है तब? तब एक्सीडेंट तो होना ही होना है। यदि वो पैमाना कहें तो वो गंदगी है लेकिन उन्होंने गंदगी नहीं मानी। जब हमने ये व्यवस्था बनाई तो गंदगी कैसे है तो लिहाजा वो कॉस्मिक और गायइज्म वगैरह वो एक्पेरीमेंट वो करेगा। कहां से करेगा क्या वो समलैंगिकता का केन्द्र थोड़े बना है वो तंत्र परंपरा तो कहा कि उसको ये अधिकार होगा कि वो गांव में आए और लड़कियों को मांगे और उसको लड़की देना गौरवशाली काम है और बच्चा पैदा हो गया तो वो परिवार का बच्चा है तब उसकी आइडेंटिटी पर उसकी पहचान पर कोई प्रश्न चिन्ह नहीं है ये गौरव की बात है उस लड़की की फिर से शादी हो सकती है। इसमें कहीं कोई समस्या नहीं है तो ये मिला जुला लड़के की संतान की पहचान मूलतः मां से जुड़ी है ये थोड़ा खिचड़ी व्यवस्था है। तो ये समस्या ही नहीं है। ये मर्द गया वो मर्द गया उससे क्या मां तो पक्की है उसमें कोई समस्या ही नहीं है तो उन्होंने इस प्रकार इस हिस्से को काम–पुरूषार्थ को व्यवस्थित किया है। बहुत से लोगों ने क्षेत्र में सीमित किया है कि साहब मथुरा के चौबे जी लोग तो शहर से बाहर जाते ही नहीं हैं, हमारी मालवीय जी हुए, महो–उपाध्याय गिरधर शर्मा चतुर्वेदी जी हुए। अब साहब वो समस्या खड़ी हुई कि अब क्या होगा। अब वो मायका ससुराल है, दिन भर घूमना–टहलना ही है मुख्य काम है जैसे कि वहां नियम टूटे उसके पहले वहां कर्नाटक की कुछ परंपराएं हैं तो वहां है कि व्यक्ति की शादी ही नहीं है, विवाद ये है बच्चे पैदा हो गए तो क्या होगा साहब तो हुआ ये कि ग्रेंड पूरी प्रापर्टी का जोड़ लो, उसका ग्रांड टोटल जोड़ लो और बांट लो। किसका बच्चा है किसे पता जब लड़की का विवाह ही नहीं है तो कैसा बच्चा। तो जब किसी ने बनाया ऐसा तरीका विविधतापूर्ण तो इसके लिए बड़ा दिल चाहिए। हिन्दुस्तान आप जिसे कहते हैं भारत जिसका वो समझने के

लिए एक बड़ा दिल और बड़ा दिमाग चाहिए बस ये कितने करंट लगेंगे समझने के लिए। मैंने इसमें मुलायम–मुलायम उदाहरण रखे हैं वस्तुतः जो अंग्रेजी में है माइंड ब्लोइंग वाला तो वो है। अगर बहुत सारे उदाहरण मैं रखने लगूं तो यहां तो आप लोग शिष्ट–सज्जन हैं वरना बहुत कुछ हो चुका होता लेकिन इसे समझने के लिए अब एक फ्रेम–दो फ्रेम जो चाहें वो करें कुछ होने वाला नहीं है। अब जो सीरियस कनसर्न है इसका काम वाला तो ओसमिक ओर्गेनिज्म वाला है उन्होंने कहा कि ये तो पूरी प्रकृति ही रति क्रिया में लगी रहती है साहब। हमारे लिए इसमें छुपने–छुपाने और लजाने–शर्माने वाली कोई बात भी नहीं है। इसके विभिन्न स्तर हैं और भिन्न उपाय हैं जैसे कि समस्या है इसलिए पेंटिंग में भी आ सकता है मंदिर के चित्रों में भी आ सकता है। किसी को शर्म लगे तो उड़ीसा के राजा का शर्म आई तो जग्गनाथ मंदिर और लक्ष्मण मंदिर में जो चित्र थे उसमें उन्होंने प्लास्टर ऑफ पेरिस चिपका दिया। फिर किसी को समझ आई कि बुनियादी बात तो खत्म हो गई। तो फिर उसने फिर से खरोंचकर उखड़वा दिया। तो वो सारे एक्सपेरीमेंट भी चलते रहते हैं। तो हमारे यहां योग और तंत्र की दो धाराएं हैं, टैक्नीकल एक्पर्ट के मामले में ये मैंने आम आदमी समा चलन की बात रखी लेकिन टैक्नीकल एक्सपर्टीज के मामले में दो धाराएं हैं योग और तंत्र की। तंत्र की धारा का मूल मकसद ये है कि हम समाज को बहुत ज्यादा महत्व नहीं देंगे। समाज को प्रकृति के अनुरूप चलना होगा। हम प्रकृति के नियमों की कद्र करेंगे फिर समाज तो बहुत छोटा है फिर मानव समाज क्या है भारत वर्ष में इतने विविधतापूर्ण परिस्थितियां हैं उसमें तो और भी छोटे–छोटे टुकड़े हैं। ये वाजिब हैं ये गैर वाजिब हैं। ये लिया तो भला ना हमारा रिसर्च का एक्सपेरीमेंट का काम चला हम इसकी परवाह नहीं करते ज्यादा परेशान करोगे तो हम क्लोज ग्रुप बना लेंगे, ज्यादा परेशान करोगे तो हम जंगलों में इधर–उधर घुस जाएंगे और नहीं कुछ हुआ तो जो ज्यादा प्रयोगवादी हुआ तो शमशान में रहना शुरू कर देंगे। हमारी कोई दौलत नहीं है, टैक्स लगाओगे किस पर? मेरी कोई पहचान या फिर धन–दौलत होगी तभी तो टैक्स लगाओगे और तभी तो मेरा धर्म शास्त्र लागू

करेगा। हम तो अपनी दौलत से मुक्ति पाते हैं और अपनी पहचान से मुक्ति पाते हैं। पहचान जो सबसे बड़ी है वो जाति की पहचान है तो उसने कहा कि ये पहचान मिटाने की कोशिश करो तो ये एक्सपेरीमेंट बहुत पहले से चल रहा है। क्षमा करें कुछ लोग सोचते होंगे कि ये हमारे ही ग्रुप के पूवर्जों ने शुरू किया ये नहीं है ये तो बहुत पहले से चल रहा है। तो ये हम नहीं मानेंगे अब क्या करोगे? नियम लागू कैसे होगा इसके बहुत सारे एक्सपेरीमेंट हुए और सैक्स को लेकर कि ये काम इच्छा को लेकर बहुत प्रकार–प्रकार के प्रयोग हुए, साधुओं ने भी प्रयोग किया और गृहस्थों ने भी प्रयोग किया। ये उसके असंख्य उदाहरण हैं लेकिन इसका जो मूल सूत्र है वो ये है कि साहब इसमें बहुत कीमती बातें हैं जो लोग नहीं कहते हैं बीच वाली बातें कहते हैं ताकि एक सस्पेंस बना रहे। मैं आप लोगों को वाजिब मानते हुए ये माना है कि सब लोगों को ये बातें न बताई जाएं। लेकिन वाजिब लोगों को तो बतानी ही पड़ेगी टैक्नोलॉजी नहीं बेसिक सांइस वाली बातें हैं उस पर बहुत सारी चर्चाएं हैं बहुत सारी ब्राडिंग हैं, टैक्नोलॉजी जब हो जाती है तो उसमें बहुत सारी ब्राडिंग हो जाती हैं। और उसका कारपोरेट सेक्टर बन ही जाता है। पहले भी बन जाता है आज भी बन जाती है आज भी है। एक से एक कंपनियां, प्रापर्टी राइट आदि इंटरनेट पर मिलता है तो उन्होंने कहा कि जो प्रकृति है वो हमको पुरस्कार देती है। जीने का पुरस्कार देती है। जैसा कि प्रकृति का पुरस्कार का सिद्धान्त है। हम भी तो पशु हैं जानवर हैं तो प्रकृति हमें कैसे संतुलित करे दंड और पुरस्कार से। हमें जीने का पुरस्कार मिलता है और वो जीने का पुरस्कार क्या है कि हम जब सांस लेते हैं, बहुत बेहतरीन अच्छी सी सांस लेते हैं और जो सुकून मिलता है वो मस्ती आती है और वो मस्ती का तब पता चलता है जब सफोकेशन से निकलते हैं। जब इस घुटन से बाहर जाइए और सांस लीजिए तब पता चलता है कि एक बहुत अच्छी गहरी सांस कितनी कीमती है। और जब दौड़कर हांफते हुए आते हैं तो पता चलता है प्राबलम का और जब रिलेक्स होते हैं तो लंबी सांस आने लगती है और जब धक–धक अनुभव होता है फेफड़े पर उसका जो सुकून है वो प्रकृति का पुरस्कार है हमारे जीने का

यदि वो न दो तो जिया ही न जाए। और हमारा एक सूक्ष्म कण अमृत का आनंद का हर दिल की धड़कन के साथ होता है तब हम स्वस्थ रह पाते हैं तो स्वस्थ रहने के लिए भी वही आधार हैं और सृष्टि को आगे बढ़ना है तो ये जो हम विभिन्न प्रकार से सुख भोगते हैं पांच इन्द्रियां हैं और उनके माध्यम से हम सुख भोगते हैं अब वो सच्चा है या झूठा है कभी–कभी ये कई बार भ्रम में भी कर लेते हैं इससे मतलब नहीं रहता है, जीभ जो सेंस करती है वो सेंस करती है उसका इन्द्री से ग्रहण होता है ये मुख्य है ये बात महत्वपूर्ण नहीं है कि क्या खाते हैं किसी को कुछ खाना पसंद है तो किसी को कुछ खाना पसंद है लेकिन अपने स्वाद के हिसाब से खाना सबको पसंद है। खूबसूरती के पैमाने अलग हो सकते हैं। लेकिन अपने पैमाने के हिसाब से खूबसूरती सबको पसंद है और खूबसूरती का एहसास होने से सबको अच्छा लगता है तो हर आदमी को स्वधर्म के हिसाब से खूबसूरती का पैमाना तय करने का हिसाब है नहीं तो हिन्दुस्तान का काम कैसे चलेगा। रंगों का डिफरेंस यहां भी कम नहीं है हिमालय से लेकर कन्याकुमारी तक। इसके फारमूले खोजे गए कि खूबसूरती कहते किसे हैं इसका पैमाना निकाला गया, उसका आनुपातिक संबंध निकाला गया अगर ये नहीं निकाला जाए तो खूबसूरत मूर्तियां कैसे बनें। तो ये जो खूबसूरती पैमाना है उसके लिए भी सोचा गया क्योंकि खूबसूरती हमें पसंद है। तो ये तो आंख का मामला हुआ आंख ही नहीं इसपर पुरस्कार पूरा मिलने वाला है। कहा कि जो प्रजनन की क्रिया है जो स्त्री–पुरूष का मिलन है वो प्रकृति की पसंद का मामला है। और औरत का जो संतान को पालने का काम है वो मर्द तो कर नहीं सकते वैसे साइंस ने बहुत कुछ नया–नया कर रखा है। क्या चमत्कार होगा वो देखा जाएगा लेकिन फिलहाल तक बच्चा पैदा करने, उसे पालने–पोसने, उसे खड़ा करने का मुख्य जिम्मा औरत के जिम्मे है। उसमें उसको सुख होता है और उसमें सर्वाधिक सुख होता है इसमें मैं अधिकारी नहीं हूं टिप्पणी करने का इसमें अगर मैं कुछ गलत कहूं तो माफ करना। तो उसको जो दूध पिलाने का संतान को जो सुख है वो प्रकृति को मान्य है और अद्भूत है। मैं एक मर्द के लिहाज से कह सकता हूं औरत के

लिहाज से मैं आदर करता हूं। मैं भी उसी तरह से उसी इंसान से पैदा हुआ। मेरी मां नहीं होती तो मैं न होता। उस समय का सुख सारे सुखों से अलग है। मैं समझता हूं कि अधिसंख्यक लोग तो इससे सहमत होंगे और उसका आकर्षण है बाकी जो शास्त्र के नैतिकता के प्रावधान करने वाले चाहे जो प्रावधान करें लेकिन यह प्रकृति प्रदत ये जो स्वभाव है, स्वधर्म है ये जो प्रकृति है मुझे बच्चा पैदा करने का अधिकार है लेकिन ये भी प्रकृति प्रदत नहीं है सरकार। बच्चा पैदा करने का मूलतः प्रकृति प्रदत अधिकार औरत को है, मर्द को नहीं है। मर्द को परिवार वगैरह की सरंचना की बात आती है लेकिन ऐसा कोई जो प्रजनन जो संतान उत्पति और उसके बाद की जिम्मेवारी से भागता हो वो प्रकृति के मनुष्य के मर्द के बारे में कह रहा हूं कि नहीं तो बच्चा मर जाएगा। अगर परिवार या समाज उसकी जिम्मेदारी न ले तो नवजात बच्चा तो मर ही जाएगा ऐसा तो नहीं है कि दो–चार घंटे या दिन में वो अपने पैर पर खड़ा हो जाएगा। ये तो हम तो सबसे निरीह, असहाय जीवों में से हैं। इतना तो कमजोर कोई है ही नहीं साहब। कोई हम अंडे से थोड़े ही निकल रहे हैं। हमें तो मां का स्तन का दूध पिए बिना अपनी नहीं तो किसी दूसरी मां का सही जिससे भी हो लेकिन उसके बगैर हमारा जीवन नहीं है तो उस प्रजनन में प्रकृति का पुरस्कार है तो वो क्षणिक दो–तीन सेकेंड वाला परम सुख न हो इसलिए वो पुरूषार्थ है, वो चरम सुख पाना और प्रजनन करना भी हमारा पुरूषार्थ है और उसके बाद वात्सल्य सुख भोगना भी है और वो सबसे गहरा इसलिए है कि बतौर टैक्नोलॉजी उस सयम ये पांचों इन्द्रियां इस आलम्बन में लीन होती है। तो हमारे यहां उसका पूरा काम शास्त्र आएगा। क्षमा करें वात्सायन का काम शास्त्र नहीं है वो राजाओं की रंग–रलियों की किताब है। वो परंपरागत शास्त्र आम आदमी वाला नहीं है उसका विवरण अलग है। अगर ये पांचों इन्द्रियां विपरीत आलंबन में स्त्री हो तो पुरूष, पुरूष हो तो स्त्री। अगर पांचों एक आलबंन में नहीं टिकती हैं तो साहब आसानी से दिल की धड़कन बंद नहीं होगी, साहब सांस नहीं रूकेगी। वो मजा तो तभी मिलता है जब सांस रूकती है और दिल की धड़कन कुछ समय के लिए रुक जाती है। चूंकि हमें मरने की

प्रैक्टिस नहीं है इस मजेदार मौत मरने की लंबी प्रैक्टिस नहीं है, एक छटांक की प्रैक्टिस है। लोगों ने कहा कि मैंने तो जान लिया अब ऐसा उपाय लगाते हैं कि ये जो सेकंड वाला मामला है ये घंटों में जाए, दिनों में जाए तो साहब अब तो समस्या खड़ी हो जाएगी अब घंटों–दिनों तक आपकी सांस कैसे रुकेगी क्योंकि शर्त तो ये है कि आपकी सांस कैसे रुकेगी। और इसमें शर्त तो ये है कि दिल की धड़कन कुछ देर के लिए बंद हो तभी वो मजा आता है। फिर उसपर बहुत ज्यादा काम हुआ। फिर मैं समझता हूं कि इससे ज्यादा आज की बहस का मुद्दा नहीं होगा कि मैं टैक्नौलॉजी के विस्तार पर जाऊं। मैं उन स्कूलों से भी एसोसिएटिड रहा हूं इसलिए मैंने उसपर किताब अलग से लिखी है वो छपी नहीं है। इसलिए हमारे यहां दो शब्द आए रति और सुरति और जितनी निगुर्ण धारा है उसमें सुरति का रखा गया और जो परंपरागत परिवार होते हैं लोकतंत्र वाले उनके यहां का ये शर्त होता है कि शादी के पहले कुछ शर्तें अमल में होती हैं। ये स्त्री पर लागू नहीं हैं ये लड़के पर लागू हैं कि वो जो सैकिंडों वाला खेल है बिना किसी औरत के अपने भीतर ये उसे उस अनुभव तक पहुंचाती है। कि कम से कम दो–चार घंटे वाला, घंटा–दो घंटा वाला तो हो ही जाए। मैं संयोग से टैस्ट टयूब बेबी तो नहीं हूं लेकिन संयोग से लैबोरेट्री में पैदा हुआ और ऐसी ही विपरीत धाराओं के बीच जिंदा रहा। तो मेरे ऊपर भी वो एक्सपेरीमेंट किया है तो मैंने पत्नी को तो पहले जाना मेरी भी पहचान भी पहले भीतर वाली औरत से ही कराई गई फिर सवाल हुआ कि शादी करने की जरूरत क्या है। एक हमारी चाची थी मित्र की मां उन्होंने कहा कि पत्नी की बीबी की जरूरत तो पचास साल बाद होती है मैं जानता हूं। पर तब क्या करोगे उस समय तो तुम्हारे लिए कोई औरत बैठी नहीं मिलेगी। तो मैंने सोचा कि क्या किया जाए अब तो कोई उपाय नहीं है अभी तो मेरी उम्र 24 साल की है ये तो पचास साल वाली बात कह रही हैं और मैं ऐसा नहीं सोचता कि वो गलत कह रही होंगी। तो अब लास्ट में संक्षेप में मोक्ष पर आते हैं। परमार्थ काम। तो मोक्ष चार प्रकार का हुआ। इसमें संगति यही है कि कोई भी प्रकृति विरूद्ध जो स्वभाव है और स्वधर्म के विरूद्ध यहां भी

वही नियम रहेगा कि स्वधर्म और स्वभाव के विरूद्ध कोई भी व्यवस्था बनती है तो धार्मिक व्यवस्था नहीं हो सकती है। वो कोई अत्याचारी और आतताई व्यवस्था हो सकती है और हमारा स्वधर्म है, हमको मुक्ति पाना है, मोक्ष परायण हैं कि हम उसको नकारते हैं। और जो सुख की बात है अगर हमें इस हद तक गहरा सुख चाहिए तो साहब ये छोटे–मोटे बंधनों से कोई माने नहीं रखता। नैतिकता का पक्ष रखना है और ये अनिवार्य रखा गया है और इसमें स्त्री को भी ऐसा अधिकार दिया गया है कि आप बिना औरत की मर्जी के कुछ भी नहीं कर सकते हैं और अगर यह नियम मान लिया जाए तो मैं समझता हूं कि नैतिकता के बहुत सारे सवाल यूं ही हल हो जाएंगे। अब बच्चा उसको पैदा करना है, जिम्मेदारी उसपर पड़ेगी तो उसमी मर्जी पर नैतिकता का पैमाना होगा कि ये जो पतली गली से खिसकने वाले हैं उनकी मर्जी नैतिकता का पैमाना बनेगी ये कैसे हो सकता है ये तो प्रकृति को मान्य नहीं है, बच्चा मर जाएगा यदि उसे परिवार न अपनाए तो कुछ लोगों ने कहा कि समाज अपनाए। ऐसे भी प्रयोग के मैंने अनेक किस्से देखे हैं, क्या दर्दनाक हालात होते हैं मैं जाति व्यवस्था, अन्तरजातीय व्यवस्था में कतई नहीं बोल रहा हूं यदि कहीं पर उससे बच्चे को सहारा मिलने वाला है तो अलग बात है लेकिन यदि आपने अर्न्तजातीय विवाह किया तो किया ऐसे बहुत सारे प्रयोग हुए हैं लेकिन बच्चा पैदा करने से पहले इतना तो सोच लीजिए कि ये संभलेगा कैसे? ये जिम्मेवारी बनती है, फिर उसके बाद झगड़ा न कीजिए कि बच्चा किस जाति वाला होगा, किस धर्म वाला होगा ये तो पहले सोचना चाहिए और बच्चे की टांग क्यों उखाड़ रहे हो। पहले अपना मामला हल कर लो और हां अगर ये हल हो गया तो उसके बाद जो करना है सो कर लो। उसके बाद आप बच्चे को संभाल सकते हैं तो ये वाजिब है और प्रकृति के अनुरूप है और ये हमारे फ्रेम में भी आता है। और इसकी मान्यता दी गई थी। अब मोक्ष की बात करते हैं क्योंकि ये काम वाला तो बहुत लंबा हो जाएगा और ये जितना रोचक, जितना आकर्षक उतना ही करूण भी है, उतना ही दर्दनाक भी है। इसकी ठीक समझ नहीं होने की हालात ये है कि इस स्वधर्म और इस मूल नैतिकता को

अपनी–अपनी सुविधा से व्याख्याएं हैं जो घटना बलात्कार की और बाकी सारे होते हैं ये झूठा दमन है ये स्वीकारते नहीं हैं। एक बार का एक वाक्या मैं शेयर करता हूं। कि एक बार एक बड़ी सभा हो रही थी, हिन्दुस्तान के बहुत सारे काबिल लोग जुटे थे बड़े भाई की मेहरबानी से मुझे भी जाने को मिला तो वहां लोग कह रहे थे कि यूरोप वालों से, इंटरनेट वालों से ये संस्कृति का अपसंस्कृति आ रही है। और जो सेनसुअलिटी और सैक्सुअलिटी का बहुत विस्तार हो रहा है इस पर कुछ प्रतिबंध लगने चाहिए और फिर एक आदमी ने जोड़ा कि साहब ये तो दिमाग खराब कर देते हैं। एक बार मैंने एक आर्टिकल पढ़ा उनके लेखकों का नाम मैं हटा देता हूं वो हिन्दुस्तान के नामी लोग हैं। मैंने सवाल पूछा कि मैं तो जैसे–जैसे बड़ा हो रहा हूं मेरी काम भावना का तो विकास हो ही रहा है, मैं खुलकर जी भी रहा हूं लेकिन समाज के किसी आदमी ने हमको मना नहीं किया कि ये जो हरकते हैं ये समाज में मान्य नहीं हैं। हमने जितने कथा–कहानियां–नाटक पढ़े वो तो दूसरे के बारे में ही पढ़ते हैं। अपने बारे में क्या पढ़ें वो तो जीते ही हैं। तो ये कब से वर्जित हो गया कि दूसरों के संबंधों के बारे में हम ज्ञान भी न ले जाएं, हम तो जी ही नहीं सकेंगे तो उन्होंने कहा कि ऐसा कैसे कि जी ही नहीं सकेंगे। मैंने कहा कि मुझसे ही सुन लीजिए मैं बड़ा भाई हूं, हम भाई–बहन मिलाकर सात हैं और मैं बड़ा भाई हूं। जैसे मैं झोला टांगने, झोले का वजन संभालने के लायक हुआ, बड़े–बुजुर्गों जब गए कि चलो लड़का खोजना है तो झोला कौन ढोएगा। कालेज में पढ़ता था तो रिश्तेदार भी पकड़कर ले जाते थे झोला ढ़ोने के लिए और तुर्रा ये कि इसकी ट्रेनिंग हो जाएगी। क्या करते लड़की देने के लिए लड़का ढूंढ़ने तो जाते ही थे। किस काम के लिए जाते थे, उसी काम के लिए तो जाते थे। हम तो जब से इंटर हुए तब से झोला ही तो ढो रहे हैं और यही चर्चा सुन रहे हैं कि इसकी जोड़ी वैसे बैठे और इसकी कद–काठी ये है। अगर कोई सामुद्रिक शास्त्र सूत्र वाले मिल गए तो ये भी बताएंगे कि देखो इसको प्रजनन में ये समस्या आयेगी, इसका तालमेल वैसा नहीं है। इसके लिए वैसा लड़का चुनना है। सब जगह वही चिंतन है और पशुपालक समाज के

सामने तो सब नंगा की नंगा है हम तो पशुपालक समाज के आदमी है, खेत–किसानी, खेत और गाय–भैंस पालने वाले तो ऐसे में कहां विकृति आ गई कि ये इंटरनेट से आ गया तो उसके पहले ऐसा लगता है कि इससे पहले यहां आदमी थे ही नहीं, मनुष्य, नर–नारी। इसके बाद मैंने मजाक किया कि साहब अब तो मैं बड़ा हो गया हूं अब तो मुझे अपने बेटे की शादी भी करनी है। ये सोच रहा हूं कि कैसी लड़की मिले अपने बेटे की शादी भी करनी है, अब अगली पीढ़ी भी आ गई, शादी भी हो गई अब इस उम्र में। ये सोच रहा हूं कि ऐसी लड़की मिले तो ये लड़के–लड़की का जीवन खुशहाल रहे। इनका जीवन सही रहे, ये प्रसन्न रहें, स्वस्थ रहें और अगर मैं जिंदा रह गया तो अगली पीढ़ी के बाद भी मैं ये सिलसिला जारी रखूंगा। और करूंगा क्या लेकिन ये जो मैं रात–दिन करता रहता हूं उसके लिए समाज ने तो मुझे कभी नहीं टोका कि मैं ये क्या काम कर रहा हूं। चिंतन का विषय तो यही है तो ये जो काम भावना है ये स्वधर्म में ये भी है कि जहां से मैंने बात शुरू की थी कि आपका जो 'स्व' है उसको आपने फैलाया। अपने थे, एक को शामिल कर लिया परिवार में एक औरत को शामिल कर लिया आपने अपना 'स्व' फैलाया। बाल–बच्चे पैदा कर लिये, कितनी–कितनी शादियां कर लीं, रिशतेदारी फैला दी तो आपने जो 'स्व' फैलया तो वाह जी वाह आप 'स्व' फैलाइए तो क्या धर्म नहीं फैलेगा तो जिस काम सूत्र से, जिस काम भावना से आपने ये सारी सरंचना खड़ी की उसकी जिम्मेवारी कौन लेगा और नए जमाने में लड़का–लड़की शादी कर रहे हैं तो आप लोगों को परेशानी है कि साहब ये अपनी मर्जी से क्यों कर रहे हैं। ये तो और गजब की बात है न तो हम इधर रहेंगे और न ही उधर रहेंगे तो ये तो कोई हिसाब–किताब नहीं बैठता। ये बैठता है कि साहब उनको पसंद करने दो, पसंद तो उनकी भी है लेकिन ये जिम्मेदारी तो कबूलो और जब वो मान लेते हैं तो कम से कम उसे तहे दिल से स्वीकार करो। तब ये काम पुरूषार्थ, प्रकृति सापेक्ष, धर्म सापेक्ष ये बात पूरी होती है और मैं समझता हूं कि हम लोग जितने हैं इस प्रोसेस से शायद ही कोई बचा हो और इस प्रोसेस से शायद ही किसी को शिकायत होती हो। अब मोक्ष की बात

थी तो इसका भावनात्मक और अभावात्मक दोष है। भावनात्मक स्वरूप ये है कि जितना बंधन है और अज्ञान है तो ये अभावात्मक नेगेटिव सेंस में कहेंगे तो इस तरह से कहेंगे कि हमें बंधन से और आभाव से मुक्ति ही मोक्ष है तो जो बौद्ध है, जैन जो हमारी पुरानी परंपराएं हैं उसमें मोक्ष का ये अर्थ हो गया। और जो इधर की परंपरा है उसमें मोक्ष का अर्थ होगा बंधन से अज्ञान से मुक्ति के साथ–साथ इनका केवल मुक्ति से काम नहीं चलेगा। इनका भावात्मक पक्ष भी है इनको पूरा ज्ञान चाहिए। अगर मुक्ति मार्गी हैं तो केवल ये कि हमारी जो उलझन थी वो समाप्त हो गई, दुनिया कैसी थी उससे हमें कोई मतलब नहीं ये पूरे प्रोसेस में आएगा। ये कहना कि हम दुनिया को समझेंगे, उसमें कैसे फंसे थे ये भी जानेंगे। और जो हमारे यहां मूल सिद्धांत त्रिणुन फांस का सिद्धांत है। बौद्ध आदि परंपरा में भी बाद में त्रिणुन फांस आ गया। तो भाई साहब ये त्रिणुन फांस में हम फंसे हैं। अब ये जब केवल दार्शनिक बहस करते हैं तो इस बहस से कोई चमत्कार नहीं आता लेकिन जब ये बात बहस तक पहुंचाते हैं कि मेरा त्रिणुन फांस क्या है, आपका त्रिणुन फांस क्या है तब तो मामला आ ही जाता है और जो ये अपने त्रिणुन फांस को समझ लेता है वो ये जो माया है वो लजा जाती है उसकी तुलना वैसे ही है। कहा कि अब क्या नखरे आजमाएं तुम्हारे ऊपर। तुमने तो मेरा जो सौंदर्य है जो नूर है वो तो तू जान ही गया मेरा तो कोई रहस्य ही नहीं बचा। तो लिहाजा वो लजा जाती है हमारे अपने हाल–फिलहाल के उदाहरण से वो ज्यादा कीमती उदाहरण है। और वैसी अद्भूत व्याख्या, अद्भुत प्रयोग हुआ मैं गांधी जी पर श्रद्धा रखने वाले लोगों पर तो मैं बार–बार दोहराता ही रहता हूं। हमारे यहां अभी सबसे महान व्यक्ति हुए हैं दशरथ मांझी जी वो चर्चित हैं जिन्होंने अपनी पत्नी की विरह में, याद में पहाड़ी काट कर रास्ता बनाया बाद में लोगों ने उस रास्ते को और चौड़ा बना दिया ताकि गाड़ी आ–जा सके। ये तो चर्चित है ये तो सब लोग जानते हैं ये तो एक पक्ष है दशरथ मांझी और उनकी परंपरा के लोग दलित समाज को जो त्रिणुन फांस समझाते वो सुनिए, बाकी पढ़े–लिखे लोग अपना–अपना सोचें। मैं सबके कपड़े क्यों उतारूं वो अपने से अपनी पहचान कर

लें। भुंयां जो हमारे यहां मुसहर कहे जाते हैं जो अंतिम पायदान के लोग हैं उनके यहां दशरथ मांझी बाबा हैं, कबीर पंथी साधु हैं। कबीर पंथी में शादी–शुदा होने न होने को लेकर बहुत गंभीरता नहीं है। पर बात ये है कि खोलकर कहना पड़ेगा ये नहीं कि हैं भी और नहीं भी। इस तरह की दुविधा हटाइए। अगर हैं तो पति–पत्नी भी हैं, साधु भी हैं तो वो अकेले भी हो सकते हैं। वो कहते हैं कि देखो भाई तुम अपने त्रिणुन फांस को समझो। एक–सवा महीने साधु रहता है इस कथानक से इस बिंब से मेरी समझ से अनेक प्रशनों के उत्तर मिलेंगे और ये काम का है। भुंया दलित समाज में कबीर पंथी साधु जाता है क्योंकि बाकी इसी त्रिणुन से ही बाकी शास्त्र हैं तो लेटेस्ट वाला ही लेते हैं जो सफल है जो वो जाते हैं दलित पंथी साधु और एक दलित समाज जो सुअर से, गंदगी से, पराकाष्ठा की समस्याओं से, सारी समस्याओं से ग्रस्त है, सॉरी कहना तो गलत हो जाएगा लेकिन जो बहुत सारी समस्याओं से ग्रस्त है, जो पायदान का सबसे निचला हिस्सा माना जा रहा है जिसके उत्थान के लिए गांधीवादी, समाजवादी, वामपंथी, दक्षिणपंथी पता नहीं कितने ही वादी लगे हुए हैं। पीढ़ी–दर–पीढ़ी लगे हुए हैं और समस्या जस की तस है। न तो उनका कुछ बना पाए और न ही कुछ बिगाड़ पाए, और इस सारी प्रक्रिया में कई करोड़ों–अरबों रूपए खर्च हो गए हैं। एनजीओ का रजिस्ट्रेशन, एफसीआरए वगैरह–वगैरह बहुत सारा हो गया। उस समाज के पास एक कबीरपंथी साधु जाता है वो सात या फिर 21 रोज रहता है और बहुत मन हुआ तो महीने–सवा महीने भर रहता है, इससे ज्यादा तो उसे अनुमति ही नहीं है वैसे आमतौर से वो 21 रोज रहता है। तो उसे 21 रोज में वापिस आना है जो करना है वो 21 रोज में करना है। तो वो जाता है एक कबीर पंथ का निर्णुन भजन गाता है, उसके पास ढपली होती है। उसके पास एक ढपली होती है, उसकी एक भाषा है एक पदावली होती है, एक शब्दावली है कि बहुत जोर देने के बाद समझ में आता है। भुंया समाज को क्या समझ में आएगा बरसे कमरा भीगे पानी। कंबल की बारिश हो रही है पानी भीग रहा है। जहां ऐसी पदावलियों में गाना गाया जा रहा है वो क्या समझ में आ रहा होगा। बेशक नहीं समझ

में आ रहा होगा उसका कुछ अन्य ही उपयोग है। गाना शुरू करता है, गाता है, लोग इक्ट्ठा होते हैं सुनने के लिए जो देते हैं वो खा लेता है उसे शाकाहारी भोजन चाहिए मांसाहारी नहीं खाता बस इतना सा नियम है। जो उसके पास होता है, इसके पास तो देने को गाना गाने के अलावा कुछ नहीं है। धीरे–धीरे लोग आते हैं, अपना सुख–दुख, अपनी समस्या की, अपनी पीड़ा अपने बंधन की तो मोक्ष तो पाना ही है अपने बंधन से पीड़ा से और अपने भीतर के बोझ से मोक्ष पाना है मुक्ति पाना है तो लोग पूछते हैं कि मेरी ये समस्या है मेरी गरीबी की समस्या है, पति–पत्नी के बीच का झगड़ा है, मैं बूढ़ा हो गया हूं, मैं बूढ़ी हो गई हूं, मेरा बेटा नहीं मानता है, मुझे प्रेत पकड़े हुए है, मेरा सुअर भाग गया है, उसने चोरी कर ली है, पड़ोसी, या गांव का जो जमींदार है या स्वर्ण वर्ग है मेरे ऊपर अत्याचार करते हैं, मजदूरी कराते हैं वगैरह–वगैरह। सारी फेरहिस्त लिखने के बाद कबीर पंथी साहब के पास एक ही उपाय है कि बाबा कुछ उपाय बताइए कि इन सब समस्याओं से कैसे मुक्ति मिले तो वो बोले कि देखो भाई मामला तो एक ही है कि इसे तो त्रिणुन फांस कहते हैं ये त्रिणुन फांस और माया का खेल है। अब तक माया की जो शास्त्रीय परिभाषा है वो ये है कि क्या समझेंगे। अंतिम बात ये है कि इसे समझा ही नहीं जा सकता यदि समझ ही लिया जाए तो माया तो रहेगी ही नहीं। और ये भी नहीं कह सकते हैं कि वो पूरी तरह से समझ में नहीं आई वो है भी और नहीं भी है। है नहीं का मेल है माने कि चार प्रकार से कह सकते हैं चतुष्कोटि विनुरमुक्त है उसके ऊपर है। और हमारे दलित पंथी समाज को उसको त्रिणुन फांस को समझना ही नहीं है बल्कि उसे उससे निकालना भी है और 21 रोज के भीतर। यदि है किसी में तो चमत्कार करके दिखाएं बाबा तो बहुत सारे हैं ब्रांडेड–अनब्रांडेड। मजेदार ये कि हमारे शीर्ष लोग मित्र हैं अभी यहां पर संस्थाएं हैं जो महंत हैं उनको ये नहीं आता। वो कुछ खास कबीर पंथी साधु हैं जो उनके साथ बैठते हैं उनको ही ये अक्ल है या आधुनिकता के मरीजों को है। तो वो हर समस्या का एक ही कहते हैं कि त्रिगुण फांस है उसमें से निकलो। कुछ परिवार के लोग तो निकल ही जाते हैं कुछ परिवार के लोग तो कहते हैं कि ये

त्रिणुन फांस क्या है? जिसमें हम बंधे हुए हैं, न केवल हम बल्कि पूरा समाज, वहां जो टर्मिनोलॉजी बैक्वर्ड–फारवर्ड है तो वो कहते हैं कि बड़कवा भी बंधा हुआ है। बड़कवा का प्रयोग वो कर रहे हैं। चलन में बड़कवा भी बंधा हुआ है और भुंया–मुसहर तू भी फंसा हुआ है उसका त्रिणुन फांस में उसे बंधे रहने दे चिंता क्यों करें। तू अपना त्रिणुन फांस समझ और देख कमाल क्या होता है। तो कहा कि पहला तो तुम्हारा त्रिणुन फांस सुअर है। ये सुबह–सुबह निकल जाता है, जहां कोई एक बार के बाद दोबारा नहीं जाना चाहता है, इंसान तो वहां मजबूरी में ही जाता है यदि कोई मजबूरी न हो तो इंसान वहां जाए ही नहीं। तुम्हारा बच्चा–बच्ची सुअर और सूअर के पीछे ये सब बच्चे तो जाते कहां हैं। जहां कोई जाना नहीं चाहता वहीं पर तुम्हारे बच्चे दिन भर सुअर के पीछे रहते हैं। ये तुम्हारी फांस है तो तुम्हारे पास सोचने का वक्त ही कहां है और बदबू से तुम्हारा दिमाग भरा पड़ा है और किसी चीज को सोचने की तुम्हें फुरसत ही नहीं है और फिर दोस्ती ऐसी कि एक ही थाली में तुम भी खा लेते हो और जो बच जाता है उसे सुअर को उसी थाली में खिला भी देते हो तो ये एक फांस है। भुंया की दूसरी फांस है ये जो दारू है। ये तुम्हारी दूसरी फांस है। कमाते तो हो, आमदनी भी होती है, सूअर बेचने से भी कोई कम आमदनी नहीं होती है। वगैरह–वगैरह भी जो सहायता मिलती है। लेकिन तू तो पीता है और बेहोश हो जाता है तो आमदनी का कोई हिसाब–किताब ही नहीं है। तू तो होश में ही नहीं रहता। इतना दारू पीएगा तो तू होश में ही नहीं रहेगा ये तुम्हारी दूसरी फांस है। ये तुम्हारी त्रिणुन फांस है और तीसरा तुम्हारा त्रिणुन फांस तुम्हारा अंधविश्वास है कि तुमने वहम पाल रखी है और वो भी फांस है। अरे तूने मान लिया कि तू मुझसे छोटा है जी लेकिन किस बात का छोटा और बड़ा तू भी त्रिणुन फांस में फंसा है वो भी त्रिणुन फांस में फंसा है। और उनके घर की हालत भी खास कुछ अच्छी नहीं है। सुअर वो भी नहीं पालते हैं, दारू वो भी पीते हैं, उनके घर में भी लड़ाई–झगड़े से वो भी बचे हुए नहीं हैं। यदि सुअर पालने वाली बात को छोड़ दें तो उनके भी हालत अच्छे नहीं हैं। ये दारू तुम्हारी त्रिणुन फांस है। तो तीन त्रिणुन फांस हैं। एक तो है

सुअर, दूसरा दारू और तीसरा जो उन्होंने कहा और तीसरा तुम्हारे अपने–आपको हीन मानने की भावना है। तू उसको मानता है कि वो बड़ा है, तू उसे बड़ा मत मान। यदि तू ना मानेगा तो क्या हो जाएगा। और मिला कर देख ले भूत–प्रेत में दारू में उनके घर में भी यही कहानी हो रही होगी। मिंया–बीबी की लड़ाई केवल तुम्हारे यहां ही नहीं होती। सर फुटाऊ तो उनके यहां भी है। और जो दारू पीते हैं वो ज्यादा बर्बाद हैं जो कम पीते हैं वो कम बर्बाद हैं ये आप मिलाकर देख सकते हो कि वो फांस है कि नहीं है देख लो। और तीसरे को कहा कि वही अंधविश्वास है और उसका नाम दिया दशरथ मांझी और बाकी लोगों ने कि ये झूठे लारे हैं। तो डॉयलॉग मतलब कि ये है कि आप कहीं भी दरगाह, मजार या, पीर बाबा जहां कहीं भी भूत उतारा जाता है तो औरतें बाल खोल लेती हैं और वो बहुत तेजी के साथ गर्दन घुमा लेते हैं वो हम लोग भी घुमा लें। थोड़ी देर के बाद प्रेतात्मा आ ही जाएगा। तो मामला ये बाल खोलकर घुमाने का। भई भूत–प्रेत होता ही नहीं है। तो तुम समझते हो कि भूत–प्रेत चढ़ा है और इसीलिए तुम परेशान हो तो ये तो ये मामला है। ऐसे की घुमा कर देख ले। तो परिणाम ये उस बात को जिस परिवार को समझा लेता है, वो परिवार के मुखिया सदस्य को समझा देता है कि कैसे किस परिवार को खत्म कर रहा हूं। तो ये कैसे खत्म होता है। तो ये जो प्रेत बाधा है और बिना प्रेत के तो हिन्दुस्तान का काम चलेगा ही नहीं और साहब हमारे शहर का तो कारोबार ही बंद हो जाएगा। जो इन तीनों बंधनों से मुक्त हो जाते हैं उनके हालात का आप अंदाजा लगा लीजिए। जो भुंया इस त्रिणुन फांस को पहचान लेता है और तय कर लेता है कि मुझे इस चक्कर में नहीं पड़ना है, मुझे बाबा ने समझा दिया तो उसके घर में दूसरे दिन से सुअर बंद, बकरी आ जाती है और वो वाला कारोबार बंद। दारू का खर्चा बंद, सफाई चालू, बच्चे का स्कूल आना–जाना। और स्वर्ण समाज में जो शरीफ हैं, लंठों की बात मैं नहीं करता, कबीर पंथी का जो स्टेटस है, सोशल स्टेटस तो उसको तुरंत कुर्सी मिलेगी। उसे कुर्सी मिले न मिले उसका जो दर्जा है, हर पंचायत मीटिंग में एक साधारण भुंया और कबीर पंथी भुंया के मान में जमीन–आसमान

का अंतर है। वो जानता है कि ये दारू पिए होंगे मेरा बाल–बच्चा ये तो दारू नहीं पीता और इसके बाद जो सबसे बड़ी बेशकीमती बात है वो ये उसको आत्मविश्वास देता है कि वो जो स्वर्ण समाज है वो जो अत्याचारी समाज जिसे हम समझ रहे थे। उससे लड़ना बेकार है क्योंकि वो तो निणुर्न फांस में फंसा हुआ है। उसे अपने त्रिणुन फांस के बारे में पता नहीं। मैं उससे ज्यादा अक्लमंद हूं, मैं ज्यादा काबिल हूं। मैं भाग्यशाली हूं कि मुझे अपने त्रिणुन फांस का पता है। अगर मैं इसे एक लाइन में खत्म करूं तो मोक्ष का दो ही मतलब है, हमारी परंपरा में भी बौद्ध परंपरा में भी आधी परंपरा वही रहेगी, आधे थिरवादी ये नहीं मानेंगे ये त्रिणुन तो ये त्रिणुन फांस से हमें मुक्त होना है और उसके लिए उसके लिए हमें अपने त्रिणुन फांस को पहचानना होगा ये एकात्मक अर्थ होगा परिणाम चमत्कारी होंगे जैसे मैंने बताया और दूसरा ये कि हमें कॉसमिक आर्गेइज्म चाहिए और वो पांच–दस मिनट वाला नहीं चाहिए हमको हमको वो आर्गेइज्म चाहिए वो आन्नद चाहिए अर्थात हमें परमानन्द चाहिए। और वो उससे गहरा होना चाहिए जांच ये है। कल्पना में नहीं। तो सवाल ये है कि ये नस–नाड़ियां कैसे बर्दाशत करेंगी। रोज मरने की प्रैक्टिस करनी होगी। गोरख बाबा कहते हैं "मरो ए जोगी मरो, मरो मरन है मीठो। मरो ए जोगी मरो, मरो मरन है मीठो। तिस मरन जोगी मरो जिस मरन गोरख मद दीठो।" ऐ जोगी मरो, मरना बहुत ही सुखद है, बहुत मीठा है और वैसे मरना जैसा कि गोरख ने मरकर दिखाया है। मैं समझता हूं कि ये मोक्ष का एक पक्ष हो गया और आनन्द वाला पक्ष।

आरिफ मोहम्मद खान : रवीन्द्र पाठक ने जो कहा या उस सब्जेक्ट पर उनका जो प्रजेनटेशन था। खासतौर से खाना खाते समय पता चला कि ये मगध यूनिवर्सिटी में वो एक ऐसे कॉलेज में पढ़ाते हैं जो देहात में है। बहुत तारीफ करने की मेरी तबियत नहीं है और रिवाज नहीं है। मैं कहूंगा कि आपका अध्ययन, बुनियादी तौर पर आपका अध्यापन का कार्य है आपका लेकिन अध्यापन तो बहुत सारे लोग करते हैं। हमने हाई स्कूल किया 65–66 में। मैं ज्योगिफ्री का स्टूडेंट तो नहीं था लेकिन पुराने टीचर थे वो

बहुत मशहूर थे अलीगढ़ में कि वो 70 में रिटायर हुए। वो बहुत अच्छे इंसान थे, स्टूडेंट से बहुत मोहब्बत करते थे। वो मोहब्बत तब ज्यादा नजर आती है युनिवर्सिटी में कि कोई भी पहुंच जाए उसे खाना खिलाते थे। तो स्टूडेंट उनकी बहुत इज्जत करते थे तो उनकी मुखालफत में नहीं थे बल्कि प्यार से कहते थे उनका नाम लेकर कहते थे और जो कि बिल्कुल फैक्ट है कि फलां साहब जब लैक्चर देते थे हर साल वही सेम नोट बुक होती थी तो वो कहते थे कि Baghra Nangal Dam is under construction कभी उन्होंने पहले लिखे होंगे वो नोट तो वही पढ़ाते थे। तो ये उनकी क्रिटिश्जिम नहीं है बल्कि वो उनसे बहुत प्यार करते थे क्योंकि वो खिलाते–पिलाते भी बहुत थे। तो सब लोग उनके बारे में बड़े प्यार से कहा करते थे कि Baghra Nangal Dam is under construction लेकिन साहब आपने तो कमाल कर दिया और मैं अपना तो कहता हूं कि मेरे तो ये एक ट्रेन्ड एजुकेशन थी और आपने एक नई परिभाषा और एक नई परिभाषा आपने अपनी तरफ से नहीं दी बल्कि उससे पता चलता है कि हमारे यहां पर कई दफे क्रिटिश्जिम होता है सेकुलिरिज्म और उसपर ये इल्जाम लगता है कि ये आयातित विचारधारा है। तो कोई शक नहीं है कि शब्द आयातित है पर विचारधारा आयातित नहीं है। तो पंडित जवाहर लाल नेहरू के शब्दों में जो शेल्फ कोनफेस केनोस्टिस तो उनके बारे में मुझे है कि वो थे वो अल्ला को नहीं मानते थे पंडित जी तो कहते थे कि मैं नहीं मानता उसके बाद पंडित जी ने कहा है मैं तो दंग रह गया पंडित जी का वो भाषण पढ़कर उन्होंने कहा कि ये हमारी जीवनशैली है हजारों–हजारों साल से। लेकिन क्योंकि ये हमारी जीवन शैली है ये हमारे लिए इज्म नहीं है हमारे लिए तो इसके लिए कोई एक शब्द नहीं है हमारे पास। उस शब्द के आभाव में हमने सेकुलरिज्म का शब्द इस्तेमाल कर लिया है। ये धर्म के विरोधी नहीं हैं, ये आस्था के विरोधी नहीं हैं, ये इसके विरोधी नहीं हैं कि आपकी आस्था है ये सिर्फ ये कहता है कि मजहब की आजादी ये तो नहीं हो सकती ना कि मजहब के नाम पर जो हुकूमतें बनती हैं वहां एक मजहब को मानने वालों को सारी आजादी और बाकी मजहब वालों को कोई आजादी नहीं है। अरे मजहब

की हुकूमत है तो आदमी को हर मजहब को मानने की आजादी होनी चाहिए। लेकिन जो मजहबी हुकूमत होने का दावा करते हैं मैं तो एक बार दंग रह गया। एक बार मैं मुम्बई में था शाम होने के बाद मैं अपने कमरे में आया तो एक अमेरिकन चैनल था और एक डिस्कशन चल रहा था और जो साहब बोल रहे थे उनके टोन और प्रोनाउनशेसन से लग रहा था कि वो हैदराबाद के हैं। मैंने समझा कि वो शायद पाकिस्तानी हैदराबाद के हैं लेकिन फिर वो क्लीयर हो गया उनका नाम मोहम्मद मुख्तदा था। अमेरिकन युनिवसिर्टी में पढ़ाते हैं और अब साऊदी अरब का दावा है कि हमारे यहां पर मजहबी हुकूमत है अब ये मुख्तदा खां बोल रहे हैं। वो कहते हैं कि हम साऊदी अरब गया था हमारी साउथ इंडिया की क्रिश्चियन ने हमें इनवाइट किया। एक कल्चरल फंक्शन में और मैंने एग्री कर लिया। बोले जब मैं वहां पहुंचा और फंक्शन शुरू हुआ और फंक्शन खत्म हो गया तब मुझे ये एहसास हुआ था कि आज तो 25 दिसम्बर है और क्रिसमिश का दिन है लेकिन कई जगहों में त्यौहार मनाने की भी इजाजत नहीं है लिहाजा वो लोग उसे कल्चरल फंक्शन का नाम देकर मनाते हैं, मनाते नहीं हैं एक्ट्ठे होते हैं तो ये कौन सी मजहबी हुकूमत है जिसमें इस तरह हो। अभी मौलाना ने फरमाया था कुरान शरीफ के बारे में उल्लो आमना... कह दो हम अल्लाह पर ईमान लाते हैं और उस पर भी ईमान लाते हैं जो हमारे ऊपर उतारा गया माने कि कुरान। वहां उलजा ईला ईमाना.. .. और ईमान लाते ही इन तमाम नदियों के नाम जो मौलाना ने कहा कि जिनसे अरब वाकिफ थे, अरब जिन प्रोफिटस के नाम जानते थे उनके नाम दिए। वला ऊसिया...और जो दिया गया मूसा को और ईसा को और जो अगली लाइन इतनी साफ है मेरा ये नहीं कि ये मैं आपको एक्सेप्ट कर रहा हूं ये तो ओबलिगेटरी है I am being good की मैं आपको एक्सेप्ट कर रहा हूं। नहीं मेरे लिए ओबलिगेटरी है वनागूतियन.....कि कुरान ये कह रहा है कि दुनिया में हमने हर जगह पर पैगम्बर भेजे हैं और साथ–साथ ये कहा कि ये किताब हम आपको भेज रहे हैं ताकि अरब से न कह सकें कि औरों को पैगम्बर दिए गए थे, हमें तो पैगम्बर दिए ही नहीं गए थे। यानि this process have been

completed all over the world exceptional were the people of Arab. and Egypt is not part of the Arab Seria is not part of the Arab, Jordan, Palestine was not part of the Arab, Tunisia is not part of the Arab. ये तो अरेबियन साइज्ड अरब हैं। जब अरबों की हुकूमत कायम हो गई सीरिया की लैंगवेज खत्म हो गई, टयूनीसिया की लैंगवेज खत्म हो गई, अल्जीरिया की लैंगवेज खत्म हो गई आपने हजरत तोमर का नाम लिया उसने ओफिसियल बिजनेस, ईरान का बिजनेस फारसी में कराया। दमिश का ऑफिस सीरिया में हुआ है, लेकिन जब पूरी हुकूमत कायम हुई तो उन्होंने पाबंदी लगा दी कि अरबी के अलावा कोई दूसरी ब्रिखोफ नहीं होगी। खलीफा का नाम ही नहीं कहता। खलीफा का नाम कुरान ने मुस्लिम रूलर के लिए इस्तेमाल नहीं किया है। खलीफा का लफ्ज इल्मी आदम की औलाद के लिए इस्तेमाल किया है। हमने आदम की औलाद को इज्जत दी उसी तरह से आदम की औलाद को हमने अपना डिप्टी बनाया। डिप्टी का मतलब क्या होता है। हमारे यहां तो एमपी कहते हैं पर दुनिया में ऐसी बहुत सी जगहें हैं जहां पर पार्लियामेंट के आदमी को डिप्टी कहा जाता है। वो वहां आकर अपनी पर्सनल ओथोरिटी एक्सरसाइज नहीं कर रहा है। वे डेलीकेटेड ओथोरिटी जो उसको दी है लोगों ने वो आकर वहां एक्सरसाइज कर रहा है। इन्होंने खलीफा का नाम अपने यहां पर क्यों रखा उसको ये एहसास दिलाने के लिए रखा तुम रूरल नहीं हो तुम सोवरिन नहीं हो। तुम सिर्फ खलीफा हो डेलिगेटिड अथोरिटी है तुम्हारे पास। उसे उन्होंने चेंज कर दिया बादशाहत में और बादशाहत बन गई इम्परीलिज्म। और वो ऐसा इम्परीलिज्म बना कि उसने लोकल लेंगवेज को खत्म कर दिया। तीस साल को ही खिलाफते राशना कहते हैं मैंने यही कहा था इंडिया इंटरनेशनल सेंटर में कहा था। तीस साल को ही कहते हैं राइटली गाइडेंस। अब हम अपनी इनहेरिटेंस मानने लगे। यहां जो बादशाह आए उनसे तो कोई रिश्तेदारी नहीं है। लेकिन क्योंकि मेरे को–रिलीजेंस हैं तो मैं उनको डिफेंड करने लगूं। करने लगूं तो इसमें

कोई बड़ी बात नहीं है इसी तरह से हम बहुत सारे और काम भी करते हैं। जहां तक रिलीजन की बात है।

आपने यहां मीनिंग ऑफ लाइफ में धर्म की बात की कि वो प्राइमरी चीज है। धर्म का मतलब जो धारण कर सके, एक खूंटा। मेरे पास जितना लंबी जगह है उसमें में घूम सकता हूं, उसकी मुझे इजाजत है लेकिन मैं खूंटे से बंधा रहूं। जैसे मैं बहुत दफा अपने नौजवान दोस्तों से कहता हूं। कि देखो अल्ला की हिदायत में और कानून में फर्क है, कानून तो अल्ला का वो है जिसमें मेरी और आपकी मदद की जरूरत नहीं है उसको। वो कानून में तो हमारी कोई हैसियत ही नहीं कि हम चेंज कर सकें। सूरज को 6 बजकर 10 मिनट में निकलना है तो अमेरिका उसका टाइम चेंज नहीं कर सकता, साइकलोन आना है तो साइकलोन आना है। प्रकृति के कानून में हमारी कोई हैसियत ही नहीं कि जो हम चेंज कर सकें। कुरान अपने लिए कहता है कि जहां कहा गया है कि जब हजरत आदम ने अपने लिए काम किया जिसके नतीजे जन्नत साहब .....तुम यहां से सब निकल जाओ और तुम्हारे यहां से मेरी हिदायत पहुंचेगी उन्होंने कहा कि वहां पर मेरा कानून पहुंचेगा इसलिए कि कानून की तो अपनी डेफिनेशन हैं। कानून अपनी डेफिनेशन बदलता रहता है। मेरी हिदायत पहुंचेगी और जो उस हिदायत पर अमल करेगा वो फायदे में है और जो नहीं करेगा यानि इस दुनिया में आजादी ने एक इंसान को खुदा नहीं बनाया कि मैं आपके ऊपर खुदा बनकर बैठूं। जैसे मैंने पाठक जी की तारीफ की है वैसे ही मैं आसिम जी की भी तारीफ करूंगा।

स्व. श्रीमती उषा परिख की स्मृति में : बुवेन विविर श्रृंखला–2016

(Dedicated to the Memory of Usha Parikh Buven Vivir Series 2016)

"जीवन का अर्थ तथा अर्थपूर्ण जीवन"

तिथि : 4 जनवरी 2016

स्थान : इंडिया इंटरनेशनल सेंटर

व्याख्यान– श्री अनुपम मिश्रा

4 जनवरी 2016 को सेडेड ने दिल्ली के इंडिया इंटरनेशल सेंटर में बुवेन विविर श्रृंखला के तहत स्वर्गीय श्रीमती उषा पारीख की स्मृति में 'जीवन का अर्थ और अर्थमय जीवन' विषय पर एक विचार गोष्ठी का आयोजन किया।

बैठक का आरंभ करते हुए सेडेड के सह–संयोजक विभोर जुयाल ने कहा कि आज की बैठक बुवेन विवर श्रृंखला की एक कड़ी है, जिसे स्व. श्रीमती उषा परिख की स्मृति में आयोजित किया जा रहा है। इस बैठक की अध्यक्षता डॉ. सुरेश शर्मा करेंगे तथा 'जीवन का अर्थ और अर्थमय जीवन पर श्री अनुपम मिश्रा तथा रवीन्द्र पाठक जी अपने विचार रखेंगे, बाद में आप सभी अपने–अपने विचार रखने के साथ ही अपने प्रश्न भी कर सकते हैं।

डॉ. सुरेश शर्मा : आज उषा परिख की स्मृति में श्रृंखला शुरू होती है जिसका विषय है, 'जीवन का अर्थ और अर्थपूर्ण जीवन' (मीनिंगफुल लाइफ तथा मीनिंग ऑफ लाइफ)। अभी सबसे पहले विजय प्रताप जी स्वर्गीय उषा परिख जी का परिचय देंगे।

विजय प्रताप : उषा जी हमारे वृहद समाजवादी परिवार का हिस्सा थीं। उनके पिता स्वतंत्रता सेनानी श्री बाबूलाल माखरिया जी थे। उषा के दादा पीरामल माखरिया के बारे में प्रचलित है कि वो काफी समृद्ध परिवार से थे। वो जवानी में ही समाजवादी नेता बन गए थे। टैक्सटाइल मिल में हड़ताल हुई तो उसमें भी उन्होंने मजदूरों की ओर से हिस्सा

लिया। उषा जी के घर में ही समाजवादी बैठकें होती थीं। उनके परिवार की दोस्ती लोहिया से थी। 1955 में समाजवाद का विभाजन हो गया जिससे परिवार को बहुत आघात लगा और वो भी राजनैतिक रूप से सिमट गए। और तब से ये परिवार स्मृद्धि से संघर्ष के रास्ते पर चल निकला। भूमिगत आंदोलन में उषा ने अपने गहने तक बेचकर मदद की। इनके पैतृक घर से आजाद हिंद रेडियो चलता था। 77 के बाद जनता पार्टी से जो अपेक्षाएं थीं वो यर्थातवादी थीं कि नहीं थी वो जुदा बात है और उनसे उनका मोह भंग होने लगा था। वो एनएपीएम किस्म के संगठन उस तरह से सामाजिक आंदोलन की मित्र बन गईं। वो इस बात पर बहुत विस्तार से बात करती थीं कि क्या राजनैतिक दिशा हो, आंदोलन कैसे प्रभावी हो आदि।

संस्कृतिनिष्ट लोगों की तरह का जीवन जीने के बारे में उषा जी सजग थीं। दुनिया में आमतौर से दो तरह के लोग होते हैं एक तो जो सपने देखते हैं और बाद में पूरा न कर पाने के बाद खुद से शिकायत करने लगते हैं और दूसरे किस्म के लोग लोहियावादी सोच के होते हैं जो कहते हैं कि 'लोग मेरी बात मेरे मरने के बाद सुनेंगे'। लेकिन उषा जी उन दोनों ही प्रकार के लोगों में से नहीं थीं। वो एक सामान्य गृहणी थीं पर अपने मूल्यों के आधार पर जीती हुई। वो ऐसी महिला थीं जो समाजिक कार्यों में अपना योगदान करना चाहती थीं। उनके पास समाज के विपरीत चलने का दम्भ था पर खुद से कोई शिकायत नही थी। हम चाहते हैं कि उनकी बातों का दस्तावेज बनाकर संकलित करें।

संसार में लोग कई तरह की दौड़ में शामिल रहते हैं उनमें से कोई सत्ता के लिए दौड़ता है, कोई पैसे के लिए जैसे अभी हाल में बिहार के चुनावों के बाद पता चला कि एक ही परिवार के 9 सांसद हैं। लेकिन कुछ लोग इन दोनों दौड़ों से अलग ज्ञान की सत्ता या आधात्म की सत्ता की होड़ में भी शामिल होते हैं। इस प्रकार से जो लोग इन सभी तरह की पागल दौड़ों से अलग एक सहज और सरल जीवन जी रहे हैं तो उनका

आने वाली पीढ़ियों और सामान्य समाज के लिए अधिक महत्व होगा। समाजवादी आंदाोलन के दो छोर थे, एक तो सत्ता से डर और उससे दूरी बनाने में एक नैतिक शक्ति लगाने वाले थे। उसी तरह से जॉर्ज फर्नांडीस जिन्हें लगता था सत्ता आने के बाद देश की तकदीर बदल ही देंगे। तो इन दो छोरों के बीच में हमारी परंपराओं के जनक तथा जब जनक की बात निकली तो ज्ञान की सत्ता, अध्यात्म या बाजार की सत्ता, प्रतिष्ठा की सत्ता आदि की पागल दौड़ से दूर। हम अपनी पगडंडियों पर चलें और उसके स्रोत क्या हैं और उनसे बचकर हम कैसे चलें ये सब हमें उषा जी से सीखने की जरूरत है।

डॉ. शर्मा : विजय जी ने सामूहिक कर्म और सोच की मर्यादा और उसके प्रति निष्ठा निभाने के बारे में विस्तार से कहा। उषा से मेरा संक्षिप्त परिचय था, उनसे मेरी मुलाकात सन् 70 के बाद ही हुई। सामूहिक कर्म और निष्ठा के प्रति उनकी जिज्ञासा निरन्तर बनी रही। हम उसी को पहचानते हुए श्रृंखला की इस कड़ी की शुरूआत करते हैं।

अनुपम मिश्र जी गांधी शांति प्रतिष्ठान तथा गांधी मार्ग से जुड़े हैं; इसके अलावा उन्होंने पानी पर बहुत काम किया है। आज की बैठक के विषय से उनका ख़ास रिश्ता है। अनुपम की भाषा के प्रति सजगता साधना है, उनकी तुलना में मेरी भाषा लड़खड़ाती हुई है। 'जीवन का अर्थ' एक ऐसा प्रश्न है जो मानव जीवन से शुरू होता है। जीवन विराट है उसके कई रूप हैं, उसमें जीवित रहने की गहन इच्छा नजर आती है तथा इसका अर्थमय जीवन के प्रति बोध है। इस सजगता को मानना कठिन है। आज से 1 लाख वर्ष पहले की संस्कृति के बारे में हम कुछ जान सकते हैं तो वो केवल तभी जब उसमें भाषा की उपस्थित तथा उसका बोध हो तथा उसी से जुड़ा है प्रश्न, 'जीवन का अर्थ तथा अर्थपूर्ण जीवन' जिनको अलग करना असंभव है। जीवन की शुरूआत और संभावना जल से शुरू होती है। ये मान्यता विज्ञान की ही नहीं बल्कि ये मानव स्मृति में है तथा उसकी झलक भिन्न भाषाओं में मिलती है। वैदिक भाषा में जल के लिए जो शब्द

है वो जल और कर्म दोनों के लिए है। अनुपम जी इस संबंध को जिस तरह से समझते हैं वैसा आधुनिक युग में बहुत ही कम लोग समझ पाएंगे। जहां तक जल का प्रश्न है उसके बारे में उन्होंने कहा है कि जो सभ्यता अपने जल को संजोने की क्षमता खो दे वो जीवित नहीं रह सकती। उसी श्रृंखला में अनुपम जी आज के युग की भाषा तथा उसकी जो उपज भूमि निर्णायक परिभाषा है उसके बारे में कहते हैं कि वो बदली है तथा रफ्तार से बदली है। दुनिया के किसी भी मानव समाज को देखें तो भाषा की जो निर्णायक भूमिका रही है कि उसकी जो उपज भूमि रही है वो अब स्कूल सिस्टम बन गया है। इसके परिणाम दूर तक जाते हैं भाषा में मानव जीवन को जीवित रखने की जो समझ होती थी और उससे दूरी का एहसास होता था वो अब क्षीण होता जा रहा है। ये ऐसी प्रक्रिया है जिसका किसी के पास जवाब नहीं है। इसमें भाषा की अपनी गहराई से भावना कहां, कैसे क्षीण हो रही है। इससे मानव जीवन कल्पना, बोध सब जुड़ा है जिसे अनुपम जी बहुत अच्छे से 'जीवन का अर्थ तथा अर्थमय जीवन' के संदर्भ में समझा पाएंगे।

अनुपम मिश्रा : मैं सबसे पहले उषा बहन की स्मृति को प्रणाम करता हूं। आजकल इस तरह की बैठकों में प्रारंभ में दीया जलाने का रिवाज़ है ताकि दिए की रोशनी से अंधेरे को दूर किया जा सके क्योंकि वो प्रतीक है प्रकाश का; तथा वो न केवल हमारा बल्कि हमारे आस–पास के अंधेरे को भी दूर करेगा और उसकी मदद से अंधेरा छंट जाएगा। शायद साथ चाय–कॉपी पीने से भी कुछ अंधेरा छटेगा। इसे संस्कृत के शब्दों 'ओम सहना ववतु, सहनौ भुनक्तु' आदि से भी समझ सकते हैं। दीया जलाने का चलन कब शुरू हुआ शायद पता नहीं पर इससे मिलती–जुलती एक प्रथा थी कि किसी भी सभा एवं गोष्ठियों आदि में अतिथियों के सामने एक दिया पहले से जलाकर रखते थे।

एक बार की बात है, विनोबा जी किसी बैठक में गए तो वहां पहले से एक दिया जल रहा था। वो बैठक एक खुले कमरे में थी। ऐसे में आयोजक की जिम्मेदारी थी कि

वो उस दिये को जलाए रखे। सब लोग खूब कोशिश करते रहे कि वो दिया न बुझे, कई लोग बारी–बारी करके अपने हथेलियों से दिए की लौ को बुझने से बचा रहे थे। लेकिन ऐसे में सबका ध्यान केवल दिये की रोशनी को बचाने की कोशिशें को देखने में ही था। लेकिन इतने प्रयासों के बाद भी दिया बुझ ही गया। विनोबा ने कहा जब आसपास की हवा शांत हो तभी दिया जलता है यदि हवा प्रतिकूल हो तो दीपक नहीं टिकता। इसके अलावा यदि हवा शांत हो पर दीपक में तेल कम हो तेल अर्थात चिकनाई और मानव के संदर्भ में चिकनाई का अर्थ है 'स्नेह'। हमें भी जलने के लिए स्नेह की जरूरत होती है। तभी जीवन का दिया जलता है। आज हम लोग जीवन का अर्थ जानने के लिए मिले हैं जीवन तो हम सबका है लेकिन मुझे ही 'जीवन का अर्थ' बताने के लिए कहा गया है। मुझे पता नहीं कि जीवन का अर्थ और अर्थमय जीवन क्या होता है। जीवन का अर्थ जानने में हमारी उम्र काम नहीं आती शायद अनुभव काम आता हो। मैं पिछले हफ्ते ही 68 साल का हुआ हूं; अब मेरा जीवन कितना बचा है उसका भी पता नहीं। विजय जी ने प्रस्तावना में जो अच्छी बातें की हैं वो अपने आप में बड़ी चीज है। मेरा जीवन, मेरा अनुभव आपके सामने रखना कठिन काम है, क्योंकि मुझे तो तैरना ही नहीं आता और आप मुझसे तैरना सीखना चाहते हैं। मैं तो खुद उथले पानी में हूं। पिछले 200–300 वर्षों में तेज हवा चल रही थी, वो हवा पहले भी थी पर लोग आपस में एक–दूसरे से उतने संपर्क में नहीं थे। जीवन तब भी आसान नहीं था लेकिन आज जितना निरूउद्देश्य हो गया है वो पहले नहीं था। हम अपनी हथेलियों से उस दिये को बचाने की कोशिश करते हैं लेकिन हवा हमारी सारी कोशिशों पर पानी भेर जाती है। जीवन में तेल की कमी है जिससे हमारा जीवन दिए की तरह चिड़चिड़ और तिड़तिड़ करता है और उससे दिया ठीक तरह से जल नहीं पाता उसी तरह से हमारा जीवन भी ठीक से नहीं चल पाता है। उससे न तो हम खुद का और न ही दूसरों का अंधेरा ही दूर कर पाते हैं। कुछ लोग अर्थमय जीवन जीना चाहते हैं लेकिन वो केवल कोल्हू के बैल की तरह बन जाते हैं। तथा हम लोग कोल्हू के बैल की तरह आंखों पर पट्टी बांधे गोल–गोल घूमते

रहते हैं और हम एक सा जीवन जीते–जीते थक जाते हैं। हमारे जीवन की गाड़ी में आजकल दिल्ली सरकार की तरह लागू नया सम–विषम का नियम नहीं है। तो हमें रोज ही कोल्हू में अपने जीवन को लादना पड़ता है। एक सा जीवन जीते–जीते थकान आ जाती है फिर हम अपने लिए सार्थक अवसर खोजते हैं। और मेरे जैसा कोल्हू का बैल भाषण देने भी आ जाता है। ये कोल्हू भी कई तरह के होते हैं कोई बड़ा तो कोई छोटा, कई विचारों तथा धर्मों के होते हैं। हर कोल्हू अपने को दूसरे से सर्वोत्त्म मानता है और सार्थक समझता है। हर विचार, हर धर्म अपना झंडा लहराता है और दूसरे को घटिया समझता है। हर कोल्हू केवल अपना विचार फैलाना चाहता है। हिंसा और अहिंसा करने वाले दोनों ही अपना शासन बढ़ाते हैं। हमें अपने विचारों की कमियां नहीं बल्कि दूसरों की कमियां बेहद साफ दिखती हैं। जैसे भले ही हमने सारा जहां न देखा हो पर लिखा जाता है 'सारा जहां हमारा'। 'सारा जहां हमारा' विनोबा जी ने लिखा क्योंकि हिंदुस्तान हमारा है। मुच कटिकम में राजा के साले का रिश्ता भी एक नया रिश्ता सामने आया। यदि कोल्हू मेरा है तो उसके गोल–गोल घूमने से तेल भी निकलता है लेकिन कोल्हू को चारा भी देना होता है। वेदों में युद्ध का नाम 'मम सत्य' है अर्थात मेरा सत्य। पिछले दिनों अफ्रीका में ई–बोला नाम की बीमारी फैली हुई थी और हम 'ई' को 'आई' भी कह सकते हैं अर्थात 'मैं बोला'। कभी अपना सत्य अर्ध–सत्य लगता है और हम दूसरे सत्य को देखते हैं कई लोगों ने अपने विचारों की अदला–बदली की ये जीवन विचार यात्रा है, सभी विचार बोलते हैं। कई लोगों ने युवावस्था में बम बनाए और बुढ़ापे तक आते–आते अध्यात्म के महापुरुष बन गए, यदि ये गुण हैं तो ऐसी छूट दूसरे लोगों को भी दें। विचार की मित्रता अलग होने में हमें षडयंत्र ही दिखता है। अच्छा जीवन अपने आप में साध्य है या मंजिल है तो हम उस तक नहीं पहुंच पाएंगे, भटकाव होगा। इस पीढ़ी के लोग पैसा कमाने के लिए बैंगलोर, पुणे या बाहर जा रहे हैं। लेकिन यदि उनके पास पैसा है तो लेकिन उनके जीवन का अर्थ नहीं है बल्कि उनका पैसा जीवन जीने की कला पर खर्च होता है तथा उस कला को सिखाने वाले बहुत हैं। आजकल बहुत से

लोग मिलकर योग करने लगे हैं, तो ये धर्म की नई दुनिया बाजार और माल भी है। आज ऐसे लोग भी हैं जो इस आधार पर भी समस्याओं का निदान करते हैं कि आपने ढोसा कब से नहीं खाया और क्या खाने से आपकी समस्याएं हल हो जाएंगी। धर्म के बाजार में बदलाव हो रहा है। 'येस आई केन चैंज'। और यही अब नया भी लग रहा है। शायद बाद में इस शब्द के आगे 'डीलक्स' भी लग जाए। हो सकता है इससे किसी का मन का भटकना शांत भी हुआ हो इसे कहते हैं कि धर्म युग आ गया इसका दूसरा नाम युग धर्म है। जिसने जीवन के अर्थ को प्रभावित किया है इसकी छाया सब पर पड़ती है। एक बाबा हरिद्वार में 'फूड पार्क' बनाते हैं वहीं दूसरे बाबा उसी तरह का पार्क अमेठी में बनाते हैं। हरिद्वार में पार्क बन जाता है लेकिन अमेठी में राजनैतिक कारणों से अड़चनें आ जाती हैं तो वो सफल नहीं हो पाते हैं लेकिन दोनों ही पार्कों का एक ही अर्थ है 'विकास की दौड़'। इस चूहा–दौड़ में दौड़ना ही है। पीछे रहें या आगे, यह विचित्र दौड़ हमें चूहा तो बनाती ही है।

अर्थमय जीवन की चर्चा तो काफी गंभीर होनी चाहिए। हमारी यह चर्चा कोल्हू, बैल और चूहे जैसी घटिया हो गई है तो आप सबसे क्षमा मांगते हुए मैं थोड़ा–सा लिफ्ट कर देता हूं। इसे थोड़ा ऊपर उठाता हूं। अभी तीन दिन पहले ही 'लिफ्ट करा दे के' गायक अदनान सामी को भारत की नागरिकता मिली है। उन्होंने अपने बयान में कहा है कि यह उनके जीवन की सबसे बड़ी उपलब्धि है। अदनान सामी का जीवन सफल हो गया है, अर्थमय बन गया है उनका जीवन।

क्या सचमुच ऐसा है ? अर्थमय जीवन की ये हमारी अपनी छोटी–छोटी परिभाषाएं हैं। भारत की इस मिली–मिलाई नागरिकता को तो कई लोग छोड़ यूरोप, अमेरिका, कैनेडा की नागरिकता पाने को आतुर हैं। फिर आज दुनिया में ऐसे लोगों की संख्या भी सबसे ज्यादा हो गई है, जिनकी कोई नागरिकता ही नहीं बच पाई है। युद्ध, गृह युद्ध

और बहुत दूर के दादा देशों की दखलंदाजी से कुछ लाख लोग शरणार्थी बने इधर से उधर भटक रहे हैं। उन पर आज क्या बीत रही होगी, हम सोच भी नहीं सकते। इसी दुनिया में कुछ लोगों के पास सिर पर छत का होना तो दूर की बात है, सिर पर एक आड़ और भरपेट भोजन तो दूर, मुट्ठी भर भोजन ही मिल जाए वही उनके जीवन का अर्थ रह जाता है। गांधीजी ने तो आजादी की लड़ाई के बीच में भी भूखे के भगवान की कल्पना कर दिखाई थी। भूखे के सामने भगवान भी रोटी के रूप में आने के अलावा कोई और रूप धारण कर ही नहीं सकते। हिम्मत भी नहीं कर सकते। अर्थमय जीवन के रोटी के रूप में कई लोगों ने कई अवतार दिए हैं।

हम पानी के बारे में ज्यादा से ज्यादा जानकारी प्राप्त करने के लिए घूमते थे हमारे ही एक साथी राकेश दीवान तालाबों को समझने के लिए मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र, बेतूर के इलाके में घूम रहे थे। वहां घूमते हुए उन्हें एक राजा का किस्सा सुनने को मिला। तालाबों को खोजना और समझना जीवन के अर्थ की खोज के जैसे ही थी। तो वहां के राजा थे उनका स्वभाव भी साधारण इंसानों जैसा ही था, उससे कुछ अलग नहीं था। एक बार राजा को जीवन का अर्थ जानने की इच्छा हुई तो उन्होंने अपने सलाहकार से कहा कि वो उन्हें 'जीवन का अर्थ समझाये'। सलाहकार ने कहा कि यदि आप 'ब्रह्म' को जान लें तो आप जीवन का अर्थ जान लेंगे। तो फिर राजा ने 'ब्रह्म' के बारे में जानना चाहा तो सलाहकार कहने लगा कि वो उसका काम नहीं है, वो किसी और से 'ब्रह्म' पूछे। राजा ने आदेश दिया कि राज्य से बाहर अंतराष्ट्रीय ज्ञानियों को इक्ट्ठा करो तो कोई न कोई तो ब्रह्म ज्ञान बता ही देगा। जिसके लिए भव्य विराट आयोजन हुआ। राजा ने कहा कि सम्मेलन स्थल पर ज्ञानी बैठेंगे और मैं सफेद भव्य घोड़े में आऊंगा, मैं अपने ऐडी को रकाब पर रखूंगा और उतने ही समय में जो मुझे 'ब्रह्म ज्ञान' बता दे तो ठीक नहीं तो मैं उसके पास से घोड़े में फुर्र हो जाऊंगा, फिर दूसरे के पास आऊंगा और उसको भी 'ब्रह्म ज्ञान' बताने के लिए उतना ही समय दूंगा। जो आदमी 'ब्रह्म ज्ञान' न

बता पाए तो उसे कोड़े मारे जाएंगे तथा जो बता दे उसे राजा भाई ईनाम देगा। अब उस रकाब में पैर रखने में बस 3–4 सेकेंड का समय ही लगता होगा। उस समय राज्य में ये नारा था 'रकाब में पांव, ब्रह्म दिखांव'। तो इस तरह से राजा का घोड़ा कई लोगों के सामने से निकला। तभी एक अन्य ज्ञानी की बारी आई उसने राजा को कहा कि 'यहां तो अकाल पड़ा है और तुझे ब्रह्म की पड़ी है?' वो बात सुनते ही राजा ने रकाब में दूसरा पैर नहीं डाला। ये भी हो सकता है कि वो सुनते ही राजा को ब्रह्म ज्ञान हो गया हो। उसके बाद कोडे खाने वालों ने भी प्रजा के साथ मिलकर बहुत सारे तालाब बनाए उसके बाद वहां कभी अकाल पड़ा ही नहीं। उसी में उसके जीवन का अर्थ निकला। तो इस प्रकार खुद ही जीवन का अर्थ जानना और उसको सबके साथ बांटना है। इसमें एक परत समय और काल की भी है। इसे छोटे या लंबे समय के लिए अर्थ की खोज शास्त्र के माध्यम से भी समझ सकते हैं। शास्त्र के तरीके से जीवन की सार्थकता जानना और दूसरा है एक है मिस्त्री के तरीके से जानना। एक तरीका केवल सोचने एवं चिंतन का है उसके बाद बात जीवन पर आती है। ये जीवन क्या बला है हमें कब पता चलता है कि हम जीवन जी रहे हैं। रिवांइड करें तो पहली घटना में पता चलेगा कि हम जीवित हैं सांस तो हम जन्म से पहले से ही लेते हैं। जन्म के बाद एक दौर अबोध बने रहने का होता है इससे 'अ' कब छूटता है वो पता नहीं शायद बचपन में ही और फिर हमारे साथ बोध जुड़ जाता है। लेकिन हमें कुछ समझ नहीं आता फिर हमें न अबोध का कुछ पता होता है न बोध ही होता है। हम मंजिल का भी आनंद नहीं लेते; दुशमनों और मित्रों से शिकायत करते हैं। फिर हमारी जीवन यात्रा शिकायतों के ईंधन से चलती है, फिर जीवन की गाड़ी इतना धुंआ छोड़ती है कि अपने लिए तो धुंआ और अपने आस–पास भी हम धुंआ ही छोड़ते हैं। फिर 'सजन झूठ मत बोलो खुदा के पास जाना है' की धुन रहती है पर फिर भी सजन झूठ बोलते रहते हैं, लड़कपन खेल में खोते रहते हैं, जवानी नींद भर सोते रहते हैं और बुढ़ापा देख रोते रहते हैं। कवि शैलेन्द्र के ये बोल निकले तो बंबईया फिल्म से हैं पर इनमें आपको दर्शन की एक लंबी परंपरा का निचोड़

दिखेगा।

पता नहीं कितने हजार बरस पहले एक ऋषि ने एक खास तरह की चटनी बनाई थी। उन दिनों ब्रांडनेम का जमाना नहीं था, फिर भी इस चटनी को, प्राश को उस ऋषि का ब्रांडनेम, ठप्पा मिल गया। आज उसे भले ही कोई भी बनाए, नाम तो उसे यही देना पड़ता है– च्यवनप्राश। पर हम यहां इस चटनी की चर्चा स्वास्थ्य वाले प्रसंग में नहीं कर रहे हैं। आयुर्वेद बताता है कि इस चटनी में पूरी 45 तरह की चीजें, जड़ी–बूटियां, पत्ते, गुड़, आंवला, फल–फूल आदि डाले जाते हैं। ये पिछले 5,000 साल से चल रही है। इसे सर्दी खांसी तथा प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाने में काम लिया जाता है। तो जब इस तरह की चटनी बनाने में 45 जड़ी–बूटियों को मिलाना पड़ता है तो फिर जीवन को अर्थमय बनाने के लिए कितनी चीजों की जरूरत होगी ये हम सभी सोच सकते हैं। इसके लिए आप शरीर शास्त्र पर न जाएं जीवन के बारे में सोचें पर एक जीवन कैसे सार्थक बनता है, इसमें कितनी बातें जुड़ती हैं, घटती हैं, गुणा होती हैं, भाग होती हैं– सब जरा सोचें तो। सिर्फ अच्छी परिस्थितियां, अच्छी राय, संगतियां, अच्छा परिवेश, अच्छे अवसर ही नहीं, एक भरे–पूरे जीवन में विरोधी परिस्थितियां, विसंगतियां, जय–पराजय, मन की शांति और आसपास का कोलाहल, हल्ला–गुल्ला यानी नई भाषा में कहें तो जिंदाबाद–मुर्दाबाद सबका मिला–जुला रूप, आकार लेकर बनता है– हमारा जीवन।

यदि हम कुछ हजार साल का इतिहास उठा कर देखें तो महाभारत में एक पक्ष जीत जाता है। लेकिन उस जय का परिणाम क्या है ? युधिष्ठिर को उस जय से क्या मिलता है ? वे कहते हैं, यह जय तो उस पराजय से भी बुरी है। जय–पराजय। तो मृत्यु से भी जीवन सार्थक बनता है। 1948 में इसी महीने की 30 तारीख को एक जीवन अपनी मृत्यु से कितना अर्थमय बन गया था। तो ये सोचने की बात है कि हमें भी अपने जीवन को पोष्टिक सार्थक बनाने में क्या–क्या करना होगा। प्रकृति ने जीवन को सरल बना दिया। प्रकृति की चीज 'बरगद का पेड़', इसका बीज राई के दाने से भी छोटा

होता है लेकिन जब उससे पेड़ बनता है तो उसमें अनगिनत तने होते हैं तथा उस पेड़ के फलों से जीवन पर 10–20 पशु–पक्षियों की पीढ़ियों की लाखों चिड़ियाएं खाना खाती हैं। वहीं हमें रोजी और रोटी का अधिकार दिलाने के लिए हमारे नेताओं को क्या–क्या करना पड़ता है फिर भी वो जुटा नहीं पाते हैं।

अब हम वापिस लौटते हैं 'अर्थमय जीवन जीने के लिए' तो ऐसा जीवन बनाने के लिए कितनी चीजें चाहिए। जब च्यवनप्राश में 45 चीजें लगती हैं तो उसी गुणा–भाग के हिसाब से यहां तो लाखों करोड़ों चीजें चाहिए। कहां मिलेंगी, कैसे मिलेंगी, कितने दाम में मिलेंगी सबको। ब्लैक में मिलेंगी या ऐसे ही मिल जाएंगी और यदि हमें सब कुछ मिल भी गया तो क्या हमारा जीवन सार्थक हो पाएगा। तो इस तरह की सूची बनाने से पहले हमें एक बजारू उत्पाद की ओर वापिस लौटना होगा।

दुनिया भर में शौकीन लोगों के बीच नाम कमाने वाली इस महंगी सुगंध में च्यवनप्राश की तरह ही एक निश्चित मात्रा में निश्चित चीजें शामिल हैं। फ्रांस की एक कंपनी शनेल है वो एक करोड़ की घड़ी भी बनाते हैं। इनका महत्वपूर्ण उत्पाद है शनेल–5 सुगंध इसकी कीमत पांच–छह हजार रुपए है। इसे बनाने के लिए कई महत्वपर्णू चीजों को मिलाया जाता है जैसे कई टन गुलाब की पंखुड़ियां आदि। यह सब सामग्री फ्रांस के खेतों से लेकर दुनिया भर के वर्षा वनों, घने जंगलों से ली जाती है। लेकिन यदि किसी एक वर्ष इस सूची में से एक भी चीज उस मात्रा में न मिल पाए, उस गुणवत्ता की न हो तो उस बार शनैल–5 का उत्पादन रोक दिया जाता है। इतनी महंगी सुगंध की सार्थकता उस कंपनी को दिखती नहीं। पर जीवन की सुगंध? प्रकृति जीवन की सार्थक सुगंध के साथ शनैल–5 जैसा काम करे तो शायद जीवन चले ही नहीं। किसी का भी जीवन ठप्प हो जाए।

जीवन को सार्थक बनाने में तो क्या–क्या चाहिए के बदले क्या–क्या नहीं चाहिए वाली सूची भी काम दे जाती है। आंखें नहीं, कान नहीं, मुंह नहीं– यानी अंधी, बहरी और गूंगी होने के बाद भी अमेरिका की हेलेन केलर ने न सिर्फ अपने जीवन को भरपूर अर्थ दिया, बल्कि उन्होंने आने वाले ऐसे लाखों लोगों को रास्ता भी दिखाया। उनकी जीवनी दुनिया भर में पढ़ी जाती है, उनकी सूक्तियां न जाने कितनों को कठिन दौर में, घोर निराशा में संबल और सहारा देती हैं। इसी तरह का एक और उदाहरण–लुई ब्रेल, उन्होंने अपने बचपन में इस दुनिया को, उसके सब तरह के रंगों को, पूरे इंद्रधनुष को अच्छी तरह से देखा था। पर फिर आंखों की रोशनी चली गई। घुप्प अंधेरा छा गया। उजाला देख लेने के बाद तो अंधेरा और भी ज्यादा काला हो जाता है। लेकिन लुई ब्रेल ने अपने अंधेरे में खुद उजाला बनाया। एक ऐसी लिपि, खोजी, जिसमें लिखी गई भाषा नेत्रहीन भी पढ़ सकें। इतने बड़े काम के बाद भी उन्हें अपने जीते जी कोई बहुत वाह–वाही नहीं, कहीं कोई प्यार नहीं मिला। लेकिन उनके सार्थक जीवन का महत्त्व उनकी मृत्यु के बाद फ्रांस को भी दिखा और फिर पूरी दुनिया को भी। आज न जाने कितनी भाषाएं लुई ब्रेल की बनाई लिपि में लिखी जाती हैं, नेत्रहीनों द्वारा पढ़ी जाती हैं यहां तक कि हिंदी भी एक है। तो ये चीजें हमें बताती हैं कि हमारे जीवन में यदि पैसा कम हो, अवसर न हों, मान–सम्मान, तरक्की न हो तो भी जीवन रूकना नहीं चाहिए। आपातकालीन लगाने वाली इंदिरा के जीवन पर भी आपात आई, तो निरापद कोई भी नहीं है।

मेरे पिताजी कवि थे। उनकी एक बहुत छोटी–सी कविता है जिसमें वे बताते हैं कि निरापद कोई नहीं है। न तुम, न वे, न मैं। किसी की भी जिंदगी दूध की धोई नहीं है। फिर अंत में वे लिखते हैं 'दूध किसी का धोबी नहीं है!' हम को खुद अपना धोबी बनना पड़ेगा, खुद अपनी जिंदगी खुद धोनी पड़ेगी– अगर हमें उस पर लगे दाग दिखने लगें। दूसरों के दाग तो हमें बराबर दिखेंगे ही और हमें अपने पुण्य ही दिखेंगे और लोगों

के पाप अधिक दिखते हैं। हमें औरों के जीवन की निरर्थकता दिखती है तो उस न्यारे घर में वो सब नहीं वहां हम कब जाएंगें, जाएंगे भी कि नहीं जाएंगे। खैर, इस नई कविता से एक पुरानी कविता भजन तक चलें।

कबीर का एक सुंदर भजन है– 'वा घर सबसे न्यारा।' कुमार गंधर्वजी ने इसे और भी सुंदर बना दिया है अपने स्वर से। इस घर से उस घर का परिचय है भजन में। बहुत–सी ऐसी बातें जो यहां इस जीवन में भरी पड़ी हैं, उस न्यारे घर में वे हैं नहीं। कबीर अपनी विशिष्ट शैली में बताते जाते हैं कि उस न्यारे घर में वेद भी नहीं है। इस जीवन में इस घर में तो वेद, गीता, गुरुग्रंथ, कुरान, बाइबिल सब कुछ है। और इसी सब को लेकर तरह–तरह के झगड़े भी होते हैं जो होने नहीं चाहिए, फिर भी होते ही रहते हैं। बंद ही नहीं हो पाते। उस न्यारे घर में न मूल है, न फूल, न बेल है न बीज। धर नहीं, अधर नहीं। न बाहर और न ही भीतर जैसा कुछ है। न ज्ञान है न ध्यान है। वहां पाप भी नहीं है और सबसे बड़ी बात तो कबीर यह कह जाते हैं कि वहां पुण्य का पसारा भी नहीं है। हमारे जीवन में पुण्य का सचमुच बड़ा पसारा हो जाता है। यह दिखता तो बड़ा सार्थक है पर प्रायः इसका पसारा इतना हो जाता है कि फिर हमें अपने पुण्य के आगे बाकी सब लोग पापी ही दिखते हैं। अपने जीवन की सार्थकता और शेष सारे जीवन की निरर्थकता। इस वृत्ति से मंत्रियों के मुखिया और देश के प्रधान भी नहीं बच पाते।

डॉ. शर्मा : बिन ज्योति उजियारा अनंत पंक्ति और अनंत का एहसास भाषा के बिना असंभव है। बहुत ही गहन बिंदु पर अनुपम जी ने अपनी बात समाप्त की है। अंत में

प्रश्न आधारित टिप्पणियां :

विजय प्रताप : पवन गुप्ता एक श्रृंखला चलाते हैं तथा इस विषय पर तीन साल से बात

हो रही है।

प्रबोध चावला : साइबर मीडिया और आज की जो नई शिक्षा है इसपर आपने कुछ नहीं कहा कि इससे जुड़ाव कैसे करें क्या वो सब नेटवर्क से भी हो सकता है?

अनुपम मिश्र : आपने अच्छी बात जोड़ी। विजय प्रताप इस काम को नए–नए रूप में आगे बढ़ाएंगे तो तकनीक का कुछ प्रयोग भी ध्यान में रखेंगे। कभी–कभी तकनीक अच्छे के साथ गलत भी हो सकती है तो हम अपनी गति पर चलें। तकनीक विचित्र चीज है, अभी आप ढाई मिनट का गाना 'वा घर सबसे प्यारा' सुनें।

गाना बजता है वा घर सबसे प्यारा.....

डॉ. शर्मा : बिन ज्योति उजियारा ये तो विज्ञान और प्रोद्यौगिकी के इमेजिनेशन को कैसे प्रदर्शित करें दोनों के संवाद को किस आधार पर करें।

वक्ता : ब्लैक होल में उजियारा नहीं बल्कि उसने तो रोशनी को अपने मे समेट लिया है। कुछ लोगों के पास सब कुछ है पर उनके पास गरीब के लिए, कुछ नहीं तो हम इंसान भी ब्लेक होल की तरह बन गए हैं।

जयनात मिश्रा : मैंने गांधी को जिंदा देखा, जब वो भंगी कॉलोनी में प्रार्थना करते थे तो वहां भी मैं गया। हमें गांधी के सिद्धान्तों पर चलना होगा। 40 प्रतिशत देशवासियों की न सुनें तो शांति नहीं आएगी। उस देश में चाहे कितनी भी संपत्ति वाले आदमी हों उनमें शांति नहीं होगी।

असित : अर्थ बताते हैं कि अर्थमय जीवन का मतलब हर आदमी में प्रतिभा है तो हम व्यक्तिगत मोक्ष के अलावा सामूहिक अर्थमय और सामूहिक बाधाओं को दूर करें।

सुरेश शर्मा : ज्ञान खुद को समृद्ध बनाने का मार्ग है। हम केवल अपने जीवन को सोच–समझ कर जिएं और अपनी इच्छा से जिएं।

राजेन्द्र गुप्ता : 'बिन ज्योति उजियारा' में कबीर ज्ञान और अज्ञान की बात कर रहे हैं शायद।

वक्ता : विकास का अर्थ कई लोगों के लिए पैसा तो किसी के लिए भोग–विलास है। आज कई लोग छोटी–छोटी बातों पर उग्र हो जाते हैं तो ऐसे में ज्ञान की ज्योति तथा स्नेह को कैसे जताएंगे।

वक्ता : क्या जीवन का अर्थ दूसरों के लिए कुछ करना?

रमेश : हर चीज समग्रता में हो जीवन को भी समग्रता में देखने की जरूरत है। हमारी क्षमता और संभावना पर आधारित है। आज से पहले कल्पना नहीं थी अब हैं।

डॉ. सुप्रभात : भारतीय दर्शन में कुछ बता पाएंगे। भज गोविंदम में जो कहा गया है उसके बारे में कुछ कह पाएंगे।

कौशल किशोर : आज के समय में अर्थ का अर्थशास्त्र हो गया। अर्थ का अर्थ 'पैसे का शास्त्र' तो इसपर कुछ चर्चा करें।

अनुपम मिश्र : मेरा ये कहना है कि आपको जीवन का अर्थ जहां से भी मिलता हो आप जरूर लें। अर्थ के नए अर्थ से 'पैसा कमाने' से विज्ञान, दर्शन में जाने से मिलता है। तो

सबका यही मतलब है कि हम सबके मन में कुछ हलचल होती रहे। ये तो लगातार मिलता–जुलती बातचीत करना है।

ओम थानवी : हम सब उजाले को एक बड़ा मूल्य मानते हैं और सभी लोग अंधेरे से उजाले की तरफ जाते हैं। जबकि अंधेरा महत्वपूर्ण है। अंधेरे वालों ने हमें बहुत कुछ दिया, जैसे चित्रकला में अंधेरे रंगों में जो चीजें बनीं वो रंगीन से ज्यादा अच्छी हैं। उजाले और अंधेरे में जो तनाव है उसे कैसे समझें?

रविन्द्र पाठक : इन्द्रिय बोध भी अजीब सी चीज है। एक ग्रुप बच्चों को आंखें बंद करके किताबें पढ़ना सिखा रहा है। इसके अलावा वो बहुत सी चीजें रहस्यमय ढंग से कहना, करना सिखा रहे हैं।

अनुपम मिश्रा : हमारी मजबूरी है कि हम जिस समाज में पैदा हुए ये समाज 5–10 हजार से है वहां प्रकाश का अर्थ उजियारा वो शेयर मार्केट की तरह जाता है। लड़का पैदा हो तो उसका नाम प्रकाश कुमार रख दिया जाता है। चमड़ी का रंग प्रकाश के कारण ही बदलता है लेकिन गोरे के मुकाबले सांवले रंग में एक लावण्ड है। सांवले रंग में ही भगवान की छवि बनाई जाती है, भगवान की छवि काले रंगे में नहीं बनाई जाती। हमें शिवजी और राम ऐसे ही दिखते हैं। तिलचट्टों के बारे में कहा जाता है कि वो अणुबम के विस्फोट के बाद भी नहीं मरेंगे। उनकी किताब में भगवान, तिलचट्टों का ही रूप लेकर आते होंगे। कबीर को भी बिन ज्योति उजियारा ही दिखा तो हमें अपने हिस्से में आई चीजों में भेद नहीं करना चाहिए। पेरिस में 'ब्लैक इज आलसो ए कलर' नाम की एक प्रदशर्नी भी लगी थी।

ओम थानवी : फ्रांसिस बेक्वन ने भी कहा 'ब्लैक इज मदर कलर'।

ओवेस सुन्तान खान : बिन ज्योति उजियारा के बीच में कभी मध्यस्थ नहीं रहे।

श्री शर्मा : रंगों का आभास प्रकाश से जुड़ा है। काले रंग को भी प्रकाश के बिना देखना संभव नहीं। भाषा और मानवीय कल्पना में जीवन पानी से जुड़ा है। भाषा से जो कल्पना जगत बचता है उसकी विशेष देन है। जो देखा जा रहा है। अंतर मन में जो भी है वो बाहरी दुनिया से या बाहर से सबसे बड़ा होता है। विकास का युग धर्म, 'धर्म' शब्द को धर्म में न देखकर उसके मूल तत्व को देखें तो विकास का युग धर्म नहीं वो तो आकांक्षा है।

अनुपम मिश्र : काले पर जो बात चली तो जमीन के बहुत भीतर भी बहुत से जीव रहते हैं और वहां तो प्रकाश तो क्या प्राण वायु आक्सीजन भी नहीं है।

दूसरा सत्र – रवीन्द्र कुमार पाठक – जीवन का अर्थ तथा अर्थमय जीवन

विजय प्रताप : इस सीरीज को रवीन्द्र कुमार पाठक जी आगे बढ़ाएंगे। हम लोगों ने उनके नेतृत्व में अध्ययन की योजना बनाई है। उसके तहत रवीन्द्र पाठक जी देखेंगे कि हरित स्वराज में किस तरह के सवालों को शामिल करें तथा साथ ही स्वास्थ्य के विषय को मुख्योपोगी कैसे बनाया जाए।

रवीन्द्र कुमार पाठक : मैं आपसे अनुमति/आग्रह कर रहा हूं कि मैंने यहां पर चर्चा के लिए एक पर्चा बांटा है लेकिन अभी आधे घंटे पहले मुझे मेरे पिता की मृत्यु का समाचार मिला जिसके कारण मैं 'मृत्यु और मृत्यु के बाद के जीवन शास्त्र' की बात करने की मनोदशा में नहीं हूं क्योंकि उसमें तो झूठी–सच्ची बातें मिली हैं और मैं आपके सामने जिंदा हूं।

मैं अनुपम जी के सामने बैठा हूं। अभी उन्होंने कहा कि जीवन पर बात हो रही है तो मृत्यु पर बात क्यों नहीं हो रही। वहीं यदि हम गांधी की मृत्यु की बात कर रहे हैं तो विनोबा की क्यों नहीं। जीवन और मृत्यु में भारत के लोगों ने क्या संबंध जोड़ा। एक बार भगवान बुद्ध से आजाद शत्रु पूछते हैं कि 'जब मरने के बाद कोई लौटकर नहीं आता तो कैसे पता चले कि मरने के बाद क्या होता है'। जीवन और मृत्यु का जो रिश्ता है वो मृत्यु को फोड़ने का रिश्ता है। जीवन भी मृत्यु को फोड़ने का विषय है। मौत को नकार कर जीवन नहीं चल सकता तो कैसे जिएं? बुद्धिमान आदमी जब पैसे और विद्या की बात हो तो ऐसे जीता है कि जैसे कभी मरना ही नहीं है तथा मृत्यु–अमृत्यु की जब बात हो तो ऐसे देखो कि मृत्यु सामने है। मृत्यु की बात करें तो मृत्यु और जीवन के रास्ते प्रकृति के बंधनों के बीच मिलते हैं, वो संतुलन बनाए हैं। यदि संतुलन की व्याख्या करना कठिन हो तो सर्कस में चलने वाली साइकिल का उदाहरण लिया जा सकता है कि वो

साइकिल चलाने वाला तो एक ही पहिए से साइकिल चलता है और वो भी पूरा संतुलन बनाते हुए क्योंकि यदि वो संतुलन बिगाड़ दिया तो खेल भी खराब हो गया और उसकी जान पर भी आफत। तो उसका वो एक पहिया ही उसकी ब्रेक हैं और वही उसका हैंडल है तथा उन्हीं की मदद से उसे संतुलन बनाना है। बचपन में हमारे दोस्तों की मंडली थी और हम शर्त लगाया करते थे कि किस तरह से हैंडिल को छोड़कर साइकिल चलाई जाए और वो होता है संतुलन है। लेकिन आजकल हम आकर्षण–विपर्षण की बात करते हैं लेकिन संतुलन की नहीं। तो साइकिल के बारे में बताना उतनी ही कठिन बात है। जीवन और मृत्यु के बीच में एक चीज है जहां से मृत्यु के रहस्य को फोड़ा जा सकता है, मौत को कब्जे में किया जा सकता है। मैं हमेशा मौत से डरने वाला इंसान रहा लेकिन बचपन से मेरी ट्रेनिंग मौत की ही रही है। पिछली दो पीढ़ियों में हमेशा ये सवाल उठता रहा कि हर आदमी एक ही तरह से नहीं मरता तथा मरने के बाद हर आदमी लौटता नहीं है तथा वो लौटकर आकर बताता नहीं है कि मरने के बाद उसके साथ क्या–क्या हुआ। कुछ लोग ऐसे हों जो अपनी मर्जी से मरें और मरने के बाद आकर बताएं कि उनके साथ क्या हुआ है लेकिन ये तो होना मुश्किल है। लेकिन यदि मरने के पहले यदि कोई बता कर जाए कि उसे कैसा महसूस हो रहा है या मौत के बारे में कुछ शोध हो तो पता चल सके कि मरना कैसा होता है।

मैं शोधकर्ता दल में पैदा हुआ लेकिन बहुत जद्दोजहद के बाद भी मौत के बारे में कुछ समझ नहीं आया। किसी ने कहा कि जब उन्हें पता चला कि अब उनका शरीर जीने के लायक नहीं है तो तय किया कि जहां गोलियां चल रही हों वहां जाकर खड़े हो जाओ और देखो कि गोलियां लगती हैं कि नहीं। तो हम एक बार एक मजदूर आंदोलन में भाग ले रहे थे लेकिन हमें कोई गोली नहीं लगी। आज कुछ पलों पहले मेरे पिताजी की मृत्यु हो गई तो मरने से कुछ दिन पहले मेरी छत की प्लास्टर टूट रही थी तो हमने अपने पिताजी से कहा कि इस प्लास्टर को ठीक करवा देते हैं लेकिन उन्होंने कहा कि

नहीं इसे ठीक न करवाओ मैं मौत को देखते हुए मरते रहना चाहता हूं। लेकिन आखिरकार बाद में उस प्लास्टर को हमने ठीक ही करवा दिया।

यह भी प्रश्न है कि किसी का जीवन महत्वपूर्ण है, बंदूक की ट्रिगर न दबे ये भी महत्वपूर्ण है पर लोगों ने एक रास्ता ढूंडा कि हमारे मन में एक अवधारणा है कि शरीर तो एक जन्म का है लेकिन मन तो एक जन्म का नहीं है। जब मन का जन्म है ही नहीं तो लेकिन ये जरूरी नहीं कि पिछले जन्म में हम एक ही जन्म में थे और किस रूप में थे। तो ये अनुभव से माना गया, ये कोई दार्शनिक कल्पना नहीं ईश्वर के बारे में विवाद है लेकिन आत्मा के बारे में विवाद नहीं। अस्तित्व बोध ही आत्मा है लेकिन उसके हटते अस्तित्व बोध की प्रमाण है। बाकी सारे लोग पुर्नजन्म को मानते हैं। ध्यान करते समय पुराने जन्म और उसके पहले की जो अपनी मृत्यु है उसके संचित अनुभव तक पहुंचने की आस है। सत्ता का खेल है, उसका उपयोग किया जाता है जैसे सत्ता चलती है उसके हथकंडे किए जाते हैं। होश में मरना और जीते जी मरना दो पैमाने हैं तो जो होश में जी ही नहीं पाएगा वो मरेगा क्या? जो सुख ही नहीं झेल पाएगा वो दुख क्या झेलेगा?

इतने संसाधनों के बाद भी कुछ लोग सुख भोगने के हालत में भी नहीं रहते तो वो लोग भला दुख कैसे भोगेंगे। जिनके खाने से लेकर संबंध तक बदलते रहेंगे तो भला वो लोग सुख लेने की हालत में नहीं रहेंगे। तो आपको फोड़ना है।

बाबा गोरखनाथ ने कहा 'मरो ए जोगी मरो मरन है मीठो'। गोरखनाथ जी कहते हैं कि ऐसी मौत मरना कि जब आप शारीरिक और चिकित्सकीय रूप से और (फिजिकली और क्लीनिकली) मर जाएं फिर भी आप न मरें अर्थात आंख मूंदने के बाद भी जो देख पाएं। तो इसी से प्रेरित होकर हमने सोचा कि बच्चों को आंख में पट्टी

बांधकर पढ़ना सिखाया जाए। हम अपने आरंभिक ग्रंथों में लिखी बातों को भूल गए। पृथ्वी की पहचान नाक से होती है। मीठा मरन है। स्त्री–पुरुष के मिलन का वो न्यूनतम और विशालतम रूप हमारा लक्ष्य है तथा मृत्यु उसका पड़ाव है। आंखें उसे पा सकती हैं जो शारीरिक और चिकित्सकीय रूप से मर गया लेकिन फिर भी मरा नहीं। सृष्टि स्त्री–पुरुष के मिलन वाली ही सृष्टि थी। आर्गेनिज्म क्षणिक मृत्यु की सृष्टि है; उसके बिना सृष्टि नहीं होती। प्रकृति को जीवन चाहिए, प्रकृति ने पुरस्कार के रूप में हमें वो सुख दिया है। उसकी तैयारी है कोस्मिक आर्गेनिज्म, वो एक मीठा मधुर मरण है। शारीरिक और चिकित्सकीय है। तो जब तक शरीर ठीक–ठाक है तो 2–4 बार जीकर मर लिया जाए। तो तभी पता चल जाएगा कि जीवन में कैसे मरें और हमारी सभी उलझनें और गांठें खुल जाएंगी। एक जन्म से एक जीवन से संबंधित बात वो मृत्यु और जन्म संबंधी बातों में कैसे हो सकती है। सामान्य विपसना का अभ्यास करें तो प्रथम चरण में पाप मुक्ति का खेल होता है। आप खुद को जानवर मानें तभी वो दूसरे को जीवन मान सकेगा। यदि हम उसमें योग्यता जोड़ें तो विशेषण अर्थ को सीमित करता है। स्वंय में जितने विशेषण लगें तो सीमित हो जाता है। जीवन–मृत्यु प्रकृति का विषय है समाज का नहीं। जब ये जीवन–मृत्यु का संबंध है तो उसकी तैयारी भी हो एक आर्गेनिज्म झेलने के लिए कुछ सेकंड में नहीं बल्कि बहुत अधिक समय लेकर हो, हम सांस लें, बलपूर्वक लें लेकिन वो प्राणायाम नहीं ये तो घड़ी का कांटा है। प्राण तो वो है जो पूरे शरीर में तत्वों को एक जगह से दूसरी जगह पहुंचाए वो प्राण और वायु है। ये घड़ी के कांटे की तरह है इसमें कुछ गड़बड़ी हो तो वो मिलाया जा सकता है। इसके शारीरिक व्यवहारकुशलता है, यदि हम में से कोई भी सांस को सोचकर लें तो क्या वो जिंदा रह सकते हैं।

मृत्यु प्राणों का अंत नहीं है, शरीर की घड़ी बंद होना मृत्यु नहीं। किसी ने कहा कि उसके मरने से पहले उसे जिंदा जलाना। एक बुजुर्ग ने धारणाओं के आधार पर

बताया कि हम वैष्णव हैं इसलिए हम शिव की नगरी में नहीं मरेंगे। वो बोले कि मैं 95 साल का हूं तो क्या मैं मर जाऊं, मरना तो वो है जो अपनी पसंद की मौत मरे कि आज मुझे मरना है। उन्होंने कहा कि उसके लिए लोगों को बुलाओ, तुलसी तथा गंगा जल जाओ। उस समय उन लोगों ने वहां पर मेरी ड्यूटी लगाई कि मैं उन बुजुर्ग का सिराहना लगाऊं और उसके सिरहाने पर बैठकर देखूं कि उनकी मृत्यु कैसे होती है। उस समय मैं बहुत छोटा था इसलिए मेरे मन में कौतूहल था कि मैं भी देखूं कि वो कैसे मरते हैं। तभी एक श्रीमान आए जो शायद उनके बेटे थे और वो बोले कि अभी आपको मरना नहीं क्योंकि अभी हमारे घर की लिपाई–पुताई नहीं हुई तो आप मर नहीं सकते। तो बाप कह रहा है कि मरना है पर बेटा कह रहा है कि आपकी चाबी तो मेरे पास है आप कैसे मर सकते हैं? हम आपके मुंह में तुलसी और गंगा जल डालेंगे तभी आप मरेंगे तो अभी हमारी उतनी तैयारी नहीं है इसलिए आप मर नहीं सकते। खैर! ऐसे में उनकी मृत्यु टल गई। ये कोई कल्पनीय बात नहीं है क्योंकि मैं इसका साक्ष्यी रहा हूं।

उस समय मैं कम उम्र का था तो मुझे बड़ा अजीब सा लगता था ये सोचकर कि आखिर मुझे 'मौत' क्यों पढ़ाई जा रही है। मैं अपने सामने किसी को मरते नहीं देख सकता और मैंने बहुत कम लोग ही अपने सामने मरते देखे हैं। देखो प्रकृति का विधान! आज भी मेरे साथ वही हुआ कि मैं यहां दिल्ली में हूं और मेरे पिताजी का बिहार में देहांत हो गया। खैर, जीना सत्य है तो उसके लिए मौत को स्वीकारो। मौत दो तरह की होती है, एक बौद्धिक स्तर की है। मृत्यु अभीष्ठ बह रही है, जो शरीर जीने लायक न रहे या जिसका जीने से मन भर जाए तो फिर जिया क्यों जाए? दूसरी बात बौद्धिक रूप से नहीं स्वीकार करेंगे, अपनी ही नहीं दूसरे की मौत का भी ख्याल रखना है। हत्या, आत्महत्या का रूप इसे बौद्धिक रूप में स्वीकार करते हैं तभी जीवन–मृत्यु का संबंध होता है। तो मेरे हिसाब से हर समय मौत का ख्याल रखना पड़ता है यदि किसी की ये इच्छा है कि मौत को फोड़कर उसके सहस्य को जानें तो मौत को बौद्धिक रूप से

समझकर काम न चलेगा; तब तो मृत्यु को दिल से स्वीकार करना होगा। बचाव करना है का अर्थ है उसे दूर रखना है। मौत को अपनाना होगा। तो ऐसे में इसका मतमतांतर समाधान करने का खुद के मरने के अलावा कोई उपाय नहीं है और ये संभव है। जो मौत के पीछे पड़ते हैं उनसे शिकायत होती है कि ये तो एकांत गुफा वाले हैं, तो ये केवल अकेले मोक्ष प्राप्त करना चाहते हैं तो उससे तो कुछ भी नहीं होगा। वो, कहां अकेला जन्म–जन्मान्तर का जो अपने ही मन की उलझनों को खोलने में लगा है तो वो नैतिकता को क्यों स्वीकार करे। 'वो कहते हैं कागज की लेखी, मैं कहता आखन देखी।' बाकी तो सत्ता का सुख है, कोई कहता है कि हमें 10 हजार करोड़ रुपए चाहिए लेकिन भौतिक शारीरिक सुख से बड़ा कुछ नहीं होता। एक स्तुति है, आमतौर पर इन बिंबों पर ध्यान देना भारतीय समाज के वाजिब नहीं। एक व्यक्ति के मरने का क्यों सोचें, प्रलय काल का सोचा जाए कि ये प्रलय है। उस प्रलय काल में प्रलय भी हो रहा है और सृष्टि भी। मानव शरीर का बिंब लें तो ढ़ाचा है। दो नर कंकाल उस प्रलय काल में सृष्टि करने के लिए नाच रहे हैं। कलापन तक क्रुर केली.... ये कपालिक की प्राथर्ना है कि ऐसा व्यक्ति जो नर कंकाल रूप में आया, दोनों के हाथ में कपाल है वो डांस, रोमांस कर रहे हैं तथा सृष्टि करना चाहते हैं। तो जीवन और मृत्यु एक साथ देखने की आदत पड़ जाए, तब उस मृत्यु को देखने की इच्छा होती है। आप मुर्गे की दुकान में देखें तो वहां मुर्गा भी है और अंडा भी। देखें तो वहां मुर्गे की गर्दन कट रही है लेकिन फिर भी वो दाना चुग लेता है, पानी भी पीता है और प्रतिक्रिया भी करता है। लेकिन बकरे–बकरियां, गायों की कत्लखाने के पास जाते ही जुगाली बंद हो जाती है। ये आकाश में उड़ नहीं पाते, इनके पास वो सुख नहीं जो पक्षियों के पास है। हमें आसमान में उड़ने का, पंख लगाने का अनुभव नहीं है। इसलिए जैसे ही हमारे किसी की मौत होती है तो हमारी बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है। यारदाश्त भ्रष्ट हो जाती है। जो होश में मरते हैं उनकी यारदाशत गड़बड़ नहीं होती, उनका श्राद्ध वगैरह करने की भी कोई जरूरत नहीं होती। मैंने पिछली बार यहीं पर एक व्याख्यान दिया था उसमें कहा था कि 'सबको

प्रेत पकड़े हुए है' मतलब कि जिसे देश और काल के बोध से चीजें छूट गईं, उसे प्रेत पकड़ लिया तो उसका प्रेत बाधा निवारण करना होगा। जो मर गया, उसका तन तो मर गया लेकिन मन बच गया; तो समय अंतराल का बोध कराओ तो उसे होश में ला सकते हैं। अब ये हो पाएगा कि नहीं हो पाएगा। मेरे पिता वैष्णव थे तो वो विष्णु लोक में गए, मैं तो गांधीवादी हूं तो पता नहीं गांधीवादियों के लिए कोई लोक बना है कि नहीं तो पता नहीं मैं किस लोक में जाऊंगा। मैंने एक बार किसी से पूछ लिया कि गांधी वालों का लोक बना, कि नहीं बना और पूछा कि हमारी मुक्ति होगी? तो वो बोले मुक्ति में मजा नहीं तो मैंने पूछा क्यों? बोले कि ये जो 'स्व' होता है, उसका विस्तार होता है। मैं मेरा, मेरा, स्व।

बाप का मरना आसान है, वो एक बौद्धिक मृत्यु थी इसलिए शायद मैं बोल रहा हूं। यदि मेरा बेटा मौत के कगार पर होता तो तब शायद मैं बोल पाता कि नहीं। पिछली बार हम लोग दिल्ली में आए थे, तब मुझे, मेरी पत्नी और बेटे को डेंगू हो गया। तब मैंने सोचा कि डेंगू तो हो ही गया है और मैंने अपने बेटे को कहा कि या तो मौत को स्वीकार करें या फिर पराक्रमशवश उससे लड़ जाएं। तो हमने कहा कि चलो इस बार लड़ा ही जाए और हम लड़े पर ये कोई सुख नहीं पूरी व्यवस्था है; इसे जाना, सीखा और जिया जा सकता है।

हमारे यहां पर तीन गांठें हैं ब्रह्मा की गांठ वो जन्म से जुड़ी होती है। ये प्रकृति का ऋण है कि आपको किसी ने पैदा किया तो आपको भी किसी को पैदा करना चाहिए। दूसरी गांठ है विष्णु, जिसने सबको लपेट रखा है, जिसने सभी रिश्ते बना रखे हैं। जिसमें रिश्तों की गांठ है और वो बिना जिए पता नहीं चल सकती। तथा जिनके साथ रिश्ते की गांठ बनाई उसे सुलझाए बिना कुछ संभव नहीं होगा। तो मैंने जिससे जो लिया–दिया उसका हिसाब बराबर कर दिया। तो हम स्वस्थ तो नहीं मर सकते। समझ

की गांठ है कि, मानव प्रकृति का छोटा सा भाग है उसे स्वीकार करो और उसे स्वीकार करते ही साइकिल वाला उदाहरण याद आ जाता है; उसके बीच ही जीवन का संतुलन है। मृत्यु और जन्म केवल एक घटना नहीं उसके बाद अनेक घटनाएं शुरू हो जाती हैं, जो मर गए उनका पता नहीं पर जो जीते हैं सभी में जीना होता है। काल, शांति, सापेक्ष और कुछ नहीं उसमें भी सापेक्ष संतुलन है, दो गतियां जब समान्तर हो जाती हैं तो गत्यान्तर का बोध हो जाता है। जो तर्क की तरह सीधी–सीधी बात कर रहा है। यदि थोड़ा पराक्रम हो तो मैं ठंडे पानी से नहा लेता हूं लेकिन यदि गर्म पानी से नहाकर आरामदेह स्थान पर रहने की व्यवस्था न हो तो ठंड लग जाती है। ठंड से बचने के लिए केसर कस्तूरी की दवा खा ली जाए उसके अलावा और भी बहुत सी छोटी–बड़ी चीजें हैं वो न मिलें तो अंडा ही खा लें। शाकाहारी, मांसाहारी सभी लोगों के लिए व्यवस्था है। मृत्यु के लिए फोड़ने वालों ने कोशिश की कि मौत का डर भागे, मैं भी आपसे मिलकर अपने डर से ही भाग रहा हूं। 50 साल के बाद वालों को मौत की तैयारी कर लेनी चाहिए, मैं भी 58 पार कर चुका हूं। टाइम के अंतर को मिटाने को काल और काली की साधना कहते हैं। सूरज और चांद आसानी से दिखने वाले नक्षत्र हैं। आज बहुत से लोग आसमान को देखने की हिम्मत गंवा बैठे हैं। जीवन–मृत्यु का संबंध और बीच से निकलने का रास्ता है उसे मैंने भी महसूस किया मैं भी उसका राही हूं। हम ये जिम्मेदारी लें कि शरीर छोडने के बाद कोई व्यक्ति खड़ा होकर मृत्यु की बात करे। हम तो कई बार मरकर जी गए। कोई भरोसेमंद आदमी बताएं तो ठीक है नहीं तो खुद मर जाएं।

अनुपम मिश्र : रवीन्द्र पाठक जी को आज अभी अपने व्याख्यान से पहले ही अपने पिता की मृत्यु की खबर का पता चला लेकिन उसके बाद भी इन्होंने आज जीवन और मृत्यु के दो पहियों की साइकिल बहुत की बेहतरीन संतुलन के साथ चलाई।

बैठक में उपस्थित :

डॉ. सुरेश शर्मा : सीएसडीएस में डारेक्टर के पद से सेवानिवृत

अनुपम मिश्रा : गांधी शांति प्रतिष्ठान तथा गांधी मार्ग से जुड़े हैं।

रविन्द्र पाठक : गया, बिहार गया में पढ़ाता हूं।

विजय प्रताप : सेडेड से जुड़े हैं।

विभोर जुयाल : सेडेड में सह–संयोजक

मिका : मैं फिनलैंड से आया हूं।

रूबी : मैं सीमेन्पू में इनवायरोमेंट फाउन्डेशन में काम करती हूं।

लव कुमार : दिल्ली विश्वविद्यालय में पढ़ता हूं।

रंजना : पीस आर्गेनाइजेशन से जुड़ी हूं।

वेद प्रकाश सिंह : जामिया मिलिया इस्लामिया से शोध कर रहे हैं।

डुडी राज पोखरेल : मैं नेपाल दूतावास में उप राजदूत हूं।

जुडेडा :

जतेन्द्र कुमार :

माला कपूर, शंकर दास – समाजशास्त्री और दिल्ली विश्वविद्यालय में पढ़ाती हैं।

निरमा : पैरवी

मिराज पाथमा : पैरवी

ओम थानवी : जनसत्ता पत्रिका से सेवानिवृत

अजय झा : पैरवी

जुगनू शारदे :

रामशूद भार : सीएसडीएस में शोधकर्ता

रीता कुमारी : सेडेड में रिसर्चर

सुरेन्द्र सिंह : इंटरनेशनल ब्रदरहुड

राजेन्द्र गुप्ता : मैं, दिल्ली विश्वविद्यालय में वनस्पति विज्ञान में काम करता था अब सभ्यता में प्रारंभिक चरण की खोज में लगा हूं।

रवि भाटिया : दिल्ली विश्वविद्यालय से सेवानिवृत हूं। आज पर्यावरण पर काम करता हूं।

मंगत सिंह : बुंदेलखंड से हूं।

प्रमोद चावला : 2002 में 32 लोगों के साथ अब्दुल कलाम से मिलने गया। 15 साल से चुनाव आयोग के काम से जुड़ा हूं।

क्रिस मेरी क्यूरियन : जवाहर नेहरू विश्वविद्यालय से पीएचडी कर रही हूं। वैल बींग और हैल्थ जैसे विषयों को देखती हूं।

रजनीकांत मुद्गल : प्रवासी जन मंच

रमेश : जीपीएफ

अनास्थिता – संगत

टी एन झा :

रूपल :

मृदुल :

चन्द्र वीर :

कृष्ण कुमार :

सुप्रभात :

कौशल किशोर : सेडेड

सृजला : शिक्षा अधिकार अधिनियम सौरभाम

मनोज : जीपीएच गांधी मार्ग से जुड़ी हूं।

अशोक कुमार : पत्रकार, जीपीएफ में सचिव

वीरेश्वर : चंबल और जुमना के बीहड़ से जुड़ा हूं। आजीविका अर्जुन लोहारी से करता हूं।

विजय भागलपुर : भागलपुर विश्वविद्यालय में पढ़ाता हूं।

अर्जुन :

अतुल कुमार : समाजवादी जन परिषद

महेश :

महेन्द्र शर्मा : मजदूर आंदोलन से पहले हिंद मजदूर सभा से जुड़ा हूं।

राकेश मनचंदा : 2002–04 में डब्लूएसएफ में था इंडिया अगेनस्ट करपशन के लिए अभी आ गया।

जनाफ मिश्रा : लंदन में पढ़ाता था। पूरा लोकतंत्र के लिए लड़ाई जारी रहेगी।

असत खान :

गिरीश कुमार :

हर्ष मेहता :

के.वी. कपूर : यूपी सरकार से रिटायर हूं।

असित : सेडेड में रिसर्चर

महेश सिंह :

अश्विनी : रकाब में पैर डालना

विजय लक्ष्मी ढ़ौंडियाल : सेडेड

पवन अरोड़ा : सेडेड

रमेश सिंह : सेडेड

महमूद : सेडेड

छोट्टन दास : सेडेड

सत प्रकाश त्रिपाठी : दैनिक अखबार

शकील अहमद खां :

.....

बुवेन विविर पर सेडेड संवाद श्रृंखला–जीवन का अर्थ और अर्थमय जीवन
लाओडाटो–सी : पारिस्थितिकीय लोकतंत्र के लिए एक खोज
तिथि : 1 फरवरी 2016
स्थान : गांधी शांति प्रतिष्ठान
मुख्य वक्ता : वीरेन लोबो

वीरेन लोबो : मैं आज के अपने व्याख्यान को अपने पिताजी को समर्पित करता हूं। मेरे पिताजी फ्रांसिस का पिछले साल 26 दिसम्बर को देहांत हो गया था। उन्हीं की सोच से मुझे इस रास्ते पर आगे बढ़ने की प्रेरणा मिली थी। उन्होंने 1980 में वेल्थ फ्रोम वेस्ट पर बहुत से लेख निकाले थे एक तरह से उन्होंने उसे एक कैमपेन की तरह से चलाया था। उसी समय मैं सोसाइटी फॉर प्रमोशन ऑफ वेस्टर्न डेवलेपमेंट में शामिल हुआ था और पिछले 30 साल से काम कर रहा हूं। उस दौरान मैंने महसूस किया कि इकोलॉजी (पारिस्थितिकीय) और आजीविका (लाइवलीहुड) का बहुत गहरा रिश्ता है और पिछले आठ साल से मैं उसी पर आगे बढ़ने की कोशिश कर रहा हूं। लाओडाटो–सीः पारिस्थितिकीय लोकतंत्र के लिए एक खोज इस पूरे विषय पर पोप का पिछले साल का एक लेख है वो बिल्कुल सही वक्त पर आए वो पिछले साल नवम्बर 2006 में भी आए थे तो पेरिस में क्लाइमेट चेंज के ऊपर जो कनवेंशन था उसके पहले कुछ संवाद हुए थे जिसके आधार पर पोप ने ये लिखा है। होने के नाते मैंने प्रचार नहीं किया क्योंकि हो सकता था कि लोग समझते कि मैं ईसाई धर्म के प्रचार का प्रसार करने के लिए ऐसा कर रहा हूं। मुझे ये किताब सबसे पहले सुमन रे ने दी और फिर पिछले साल उदयपुर में उन्होंने मुझसे उस किताब के बारे में बात की कि इसपर चर्चा की जानी चाहिए और फिर 13 जनवरी उन्होंने उदयपुर में इसकी चर्चा की, जिसमें कुछ चंद गिने–चुने लोगों को बुलाया। उसमें मुख्य मकसद था पोप के निवेदन को ठीक से समझें; इसके बाहर व्यापक स्तर पर विषय को समझें। जब मैंने इसे ठीक से समझने की कोशिश की तो मैंने देखा कि जब पोप ने अपना नाम दिया सेंट फ्रांसिस का नाम उस संत के नाम से लिया

जो इस विषय से जुड़ा है। सेंट फ्रांसिसों वसी के नाम से धारणा है पोप ने अपने सबसे पहले पैराग्राफ में उसके बारे में बताया था कि "Praise be to you, my Lord, through our Sister, Mother Earth, who sustains and governs us, and who produces various fruit with coloured flowers and herbs". तो सेंट फ्रांसिस ने इस अर्थ से बात रखी कि धरती हमारी बहन है, हमारी पूरी धरती उसी से चलती है और फिर वो अगले पैराग्राफ में लिखता है। This sister now cries out to us because of the harm we have inflicted on her by our irresponsible use and abuse of the goods with which God has endowed her. We have come to see ourselves as her lords and masters, entitled to plunder her at will. The violence present in our hearts, wounded by sin, is also reflected in the symptoms of sickness evident in the soil, in the water, in the air and in all forms of life. इसका अर्थ ये है कि ये हमारी धरती मां है वो चीख रही है कि उसके साथ अत्याचार हो रहा है जिससे हमारे जीवन के हर पहलू पर असर पड़ रहा है। उससे मिट्टी, हवा, पानी और पूरे जीवन पर ही असर पड़ रहा है। इसे जो पोप ट्रेस कर रहा था उसने उसका एक विचार जॉन 23 से 1950 के पास था और जो हमारी उदयपुर की चर्चा थी तो उसी समय पर्यावरण के ऊपर भी ज्यादा चिंता व्यक्त हो रही थी जिसमें किशोर संत ने रिचर्ड काटी का संदर्भ दिया जिसमें कीटनाशकों के प्रभाव की बात थी मतलब कैलिफोर्निया के ऊपर जो मकान है तो उसका था तो जो अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर जो चिंता हो रही थी वहीं से वो उसे समझ रहे थे। तो जॉन 23 के बारे में बोल रहे हैं कि जो परमाणु संकट हो रहे थे, और रूस तथा अमेरिका परमाणु युद्ध के लिए एक–दूसरे के आमने–सामने हो रहे थे। तो उसमें जो शांति का प्रस्ताव रखा उसके बाद जो अगले पोप 'पोप 6' थे वो पारिस्थितिकीय चिंता को इस ढंग से रख रहे थे कि इंसान की गलत मानवीय क्रियाओं के कारण ये समस्याएं हो रही हैं और उसमें इंसान के काम के ऊपर कोई पाबंदी नहीं है। उसके बाद जॉन पॉल–2 ने बात की कि इंसान प्रकृति को देख रहा है कि ये प्रकृति सिर्फ हमारे लिए है

कि हम इसे कैसे लूटें, कैसे इसका उपयोग करें तो इसके लिए हम अपनी जीवनशैली में कैसे परिवर्तन करें और इंसान आत्मसम्मान से कैसे जिए। इसके पहले जो पॉप थे उन्होंने ये बात लिखी थी कि My predecessor Benedict XVI likewise proposed "eliminating the structural causes of the dysfunctions of the world economy and correcting models of growth which have proved incapable of ensuring respect for the environment") तो उसका व्यवस्था के ऊपर अभी जो कुछ–कुछ पहलू हैं उससे जो समस्याएं आ रही हैं उनको खत्म करना चाहिए और दूसरा कि "eliminating the structural causes of the dysfunctions of the world economy and correcting models of growth which have proved incapable of ensuring respect for the environment" वो कह रहे हैं विकास के गलत अनुपयुक्त मॉडल के कारण पर्यावरण पर विपरीत असर पड़ रहा है तथा इन चीजों का जुड़ाव संस्कृति से भी है जो इंसान के अस्तित्व को प्रभावित करता है। उसके बाद वो कहता है कि ये केवल कैथोलिक चर्च में ही मौजूद नहीं है। इसमें एक दूसरा लेख है जिसमें पेटियार्ड के बारे में लिखा है, मैं उसमें ज्यादा नहीं जा नहीं रहा हूं। डिफेंस ऑफ द पीसफुल इंडियन मॉस बाई मासी तो इसमें पारिस्थितिकीय पर पिकरस की जो समझ है उसको रखा है। इस पृष्ठभूमि से वो सारी बात को आगे बढ़ा रहे हैं। इस सोच को मैं आगे बढ़ाना चाहता हूं कि पोप ने क्या कहा वो स्पष्ट रूप से सबके सामने आना चाहिए। तो उन्होंने स्पष्ट रूप से ये कहा कि आप प्रकृति के ऊपर चिल्ला कर कुछ नहीं कर सकते। जब तक आप इंसान पर होने वाले अत्याचारों के खिलाफ आवाज नहीं उठाते। उन्होंने लिखा It is clearly inconsistent to combat trafficking in endangered species while remaining completely indifferent to human trafficking, unconcerned about the poor, or undertaking to destroy another human being deemed unwanted. उसके बाद जो उसने आगे लिखा The Christian tradition has never recognized the right to private property as absolute or inviolable, and has stressed the

social purpose of all forms of private property. He clearly explained that "the Church does indeed defend the legitimate right to private property, but she also teaches no less clearly that there is always a social mortgage on all private property, in order that goods may serve the general purpose that God gave them". Consequently, he maintained, "it is not in accord with God's plan that this gift be used in such a way that its benefits favour only a few". This calls into serious question the unjust habits of a part of humanity. कुल मिलाकर वो जो निजी संपत्ति है उसपर इंसान की निर्बाध नियंत्रण नहीं हो सकता है। क्योंकि इस संपत्ति का एक उद्देश्य है उसकी पूर्ति उसके सामाजिक उद्देश्य की पूर्ति करने में होना चाहिए। व्यक्ति जो संपत्ति इक्ट्ठा करता है वो अपनी आजीविका और अपनी जरूरत पूरी करने के लिए उस चीज को भी चर्च उसमें डिफेंड करते हैं तो उसमें भी पोप के जो बिशप बारोगया का बिशप ने क्या लिखा तथा न्यूजीलैंड के बिशप ने क्या लिखा है तो बारोगया ने लिखा कि the bishops of Paraguay: "Every *campesino* has a natural right to possess a reasonable allotment of land where he can establish his home, work for subsistence of his family and a secure life. तो हर एक को उतनी जमीन की जरूरत है जिसकी मदद से वो अपनी जीविका को ठीक से चला सके और अपने परिवार का निर्वाह कर सकता है। न्यूजीलैंड के बिशप ने बोला कि कि दस कमान्डेंट हैं जिसपर बात करना है तो उसने बोला था कि आप किसी को कत्ल नहीं कर सकते। तो उन लोगों का कहना है कि इस कमान्डेंट का क्या मतलब है। कि जब 20 प्रतिशत लोग इतने साधनों का उपयोग करते हैं जिससे गरीब देश के लोगों की जीने की क्षमता है मतलब कि आप उनकी जीने की क्षमता को छीन रहे हैं तो इसमें कत्ल करने का अर्थ है कि 20 प्रतिशत लोग बाकी लोगों से सब छीन रहे हैं। इससे स्पष्ट होता है कि वो प्रकृति पर होने वाले और इंसान पर होने वाले अत्याचार दोनों को एक ही समझता है। तो उसमें पाप की परिभाषा क्या है तो पाप की परिभाषा में वो तीन

बातें को रख रहे हैं कि हमने भगवान, पड़ोसी तथा प्रकृति के साथ रिश्ता तोड़ दिया है। जबकि ये तीनों रिश्ते साथ–साथ चलते हैं। फिर वो फ्रांससिको ओलवा का उद्धरण देकर कहते हैं कि इंसान ने जो रिश्ता तोड़ा तो वो एक व्यक्ति था जिसने इसे फिर से जोड़ने की कोशिश की। हम भगवान को प्रकृति और अपने पड़ोसी के माध्यम से समझ सकते हैं। प्रकृति में भगवान का रूप देखना है तो उसमें मूर्ति, पूजा को नहीं देखना चाहिए। उसने विज्ञान और वित्तीत विषय पर जो टिप्पणी की All of this shows the urgent need for us to move forward in a bold cultural revolution. Science and technology are not neutral;

- The specialization which belongs to technology makes it difficult to see the larger picture. टैक्नोलॉजी से कुछ चीजों का हल निकल सकता है सभी चीजों का नहीं, व्यापक समस्या से उसकी नजर हट जाती है। दूसरी बात उन्होंने कही कि The fragmentation of knowledge proves helpful for concrete applications, and yet it often leads to a loss of appreciation for the whole, for the relationships between things, and for the broader horizon, which then becomes irrelevant. तो टैक्नोलॉजी उस तरह से हल करेगा जैसे कि अभी पेरिस में वोबाकिया में ये बात अई कि वहां उस पूरे हल के लिए 53 बिलियन डॉलर चाहिए। कहा जा रहा है कि ये फलाना–फलाना तकनीक है जिसकी मदद से हम ये सब करेंगे तो ये उस चीज को खारिज कर रहे हैं कि ये तरीका सही नहीं है हमें तो बिल्कुल साफ तरीके से अन्याय और अत्याचार के साथ उस चीज को जोड़ना होगा। the absolute power of a financial system, a power which has no future and will only give rise to new crises after a slow, costly and only apparent recovery. तो जो मैं बता रहा हूं कि इतना पैसा चाहिए कि जिससे वो सारी चीजें हल करेंगे ये सब वित्तीय प्रबंध हो और इस ढंग से हम अर्थव्यवस्था को हल करेंगे। ये सोचना है कि यदि पर्यावरण को बाजार व्यवस्था में डाल दें तो उसमें हल निकल सकता है क्या? तो इस चीज के ऊपर वो

बिल्कुल साफ कह रहा है कि ये हल नहीं हो सकता है। There can be no renewal of our relationship with nature without a renewal of humanity itself. There can be no ecology without an adequate anthropology. और इनथ्रोपोलॉजी पर जो उसकी समझ है A misguided anthropocentrism need not necessarily yield to "biocentrism", for that would entail adding yet another imbalance प्रकृति का सुधार तब तक संभव नहीं जब तक इंसान में सुधार की बात नहीं करते। पैसे के माध्यम से पर्यावरण में सुधार हुआ तो उसमें टापू बने जैसे पर्यावरण पार्क, घर वो टापू बनेगा उससे दुनिया का हल नहीं होगा इसलिए वो कह रहा है सबसे पहले पूर्ण इंसान के बारे में सोचो। फिर वो इंसान से जुड़ी हुई पारिस्थितिकीय की बात कर रहे हैं वो ऐसा नहीं है कि वो एक अलग है वो एक प्रतिक्रिया के रूप में है और उससे फिर एक अलग समस्या खड़ी होगी। जिसमें बारीकी से विशलेषण किया तो कह रहे हैं कि पैसे के माध्यम से पर्यावरण का जो सुधार हुआ उसमें टापू बन गए। जिसमें प्राकृतिक पार्क या फिर पारिस्थितिकीय के अनुसार (इकोलॉजिकली) एक सुंदर घर दिया जाएगा जैसी बातें हैं। तो वो सारी चीजों में पैसे लगेंगे तो वो टापू बनेगा और उसमें दुनिया की समस्याओं का हल उस ढंग से नहीं होगा तो वो उस चीज से तो होगा नहीं तो वो उस चीज को खारिज करता है कि ये चीज संभव है तो इसी चीज के बारे में वो कह रहा है कि जब तक आप पूर्ण इंसान के बारे में नहीं सोचते हैं तब तक आप समस्याओं का समाधान नहीं निकाल सकते हैं। और उसके लिए जो वो इंसान के बारे में बोल रहा है कि किस तरह से परिवर्तन होगा Human beings cannot be expected to feel responsibility for the world unless, at the same time, their unique capacities of knowledge, will, freedom and responsibility are recognized and valued. तो इंसान जब तक खुद की क्षमता, अस्तित्व, पहचान पर ध्यान न दे तब तक वो प्रकृति के बारे में नहीं सोच सकता। स्थानीय दलों तथा समुदाय का महत्व है हमें उस संस्कृति की ओर बढ़ना चाहिए। पर्यावरण को सुधारने का ज्ञान को समुदाय के ज्ञान से जोड़ना होगा।

Overlooking the complexities of local problems which demand the active participation of all members of the community; new processes taking shape cannot always fit into frameworks imported from outside; they need to be based in the local culture itself. तो समुदाय के अंदर पर्यावरण को सुधारने के लिए जो ज्ञान है, वो ज्ञान जिसमें समुदाय के ज्ञान को जोड़े बिना जो स्थानीय समस्या का हल नहीं हो सकता है। फिर वो दृष्टिकोण के बारे में इतिहास में जाता है जो 'वर्ल्ड समिट' या जो सपोम डिकलेरेशन था। 1972, 1992 अर्थ समिट, अब जब इंसान के परिवर्तन की बात कर रहे हैं तो स्वंय के सुधार के बारे में बात कर रहे हैं लेकिन उसके ऊपर उसकी क्या टिप्पणी है। Nevertheless, self-improvement on the part of individuals will not by itself remedy the extremely complex situation facing our world today. Isolated individuals can lose their ability and freedom to escape the utilitarian mindset, and end up prey to an unethical consumerism bereft of social or ecological awareness. Social problems must be addressed by community networks and not simply by the sum of individual good deeds.

इसमें समुदाय का सम्पूर्ण योगदान हो इसमें कुछ अच्छे लोग हैं तो कुल मिलाकर वो ये करेंगे। कुछ कर रहे हैं उससे हल नहीं आएगा तो वो कह रहा है शांति की परिभाषा दे रहा है कि peace, which is much more than the absence of war. Inner peace is closely related to care for ecology तो वो बेहतर पर्यावरण से शाति की परिभाषा दे रहा है। उसकी जो उम्मीद है कि जिसमें उसने समुदाय के बारे में बात की कि समुदाय पर्यावरण को सुधारने के अलग–अलग प्रयास करे। उसने जो अलग–अलग उदाहरण दिए हैं वो शायद हमारे लिए उपयुक्त नहीं हैं इसलिए मैं उनका उद्धहरण नहीं दे रहा। Around these community actions, relationships develop or are recovered and a new social fabric emerges. Thus, a community can break out of the indifference induced by consumerism. तो उसकी उम्मीद है कि

लोग जब जुड़कर किसी चीज का इलाज करेंगे तो उस प्रक्रिया में वो एक–दूसरे से चर्चा करेंगे और कुछ पुरानी चीजें जो उनके मन में जो दुनिया में बाजारवाद के कारण जो खरीद–फरोक्त हो रहा है और उससे उनके मन में प्रकृति के प्रति दूरी बन रही है। उससे वो फिर से जागृत होगा और उससे संभावना है कि समुदाय कुछ–कुछ जगह पर एक नया रिश्ता बना सकता है जिससे सुधार होगा। वहां वो कह रहा है कि इसमें जरूरी नहीं है कि अमीर समुदाय ही हो उसमें गरीब समुदाय भी इलाज कर सकता है। इसके बारे में आशीष कोठारी ने जो लेख लिखा resistance and reconstruction जिसमें उसने पूरी टिप्पणी की तो उसका जो कमेंट है मैं उसमें नहीं जा रहा हूं। जो जिसको ये चाहिए लोनाडलो–सी का और दूसरा तो मैं सेडेड को दे दूंगा। तो इसमें वो कहता है कि पोप ने ईसाई जो अत्याचार किया उसके बारे में कुछ कहा नहीं तो लोडालसो सी में नहीं लिखा। लेकिन पिछले 10 जुलाई सेंटा क्रूज़ में बोलिविया में बात हो रही थी उसका मैं जिक्र कर रहा हूं जिसका आशीष कोठारी ने भी जिक्र किया। many graves since were committed against the native people of America in the name of god I humbly ask forgiveness not only for their offenses of the church for self but also for the crimes committed against the native people during the so called compost of America. अमेरिका के लोगों पर ईसाई के नाम पर बहुत सारे अत्याचार हुए तो उसके लिए माफी मांग रहा हूं और ये जो चर्च के नाम पर अत्याचार हुए हैं उसके लिए भी माफी मांग रहा हूं कि इससे इंसान बनेगा और कई सारी चीजें रखी गई हैं। दूसरी बात वो कह रहा है कि इस पूरी चीज में पूंजीवाद का कोई जिक्र नहीं है। लेकिन वो कह रहा है कि 15 जुलाई को सांता क्रूज में बोलिविया में उसने बात रखी थी उसके बारे में उसने जिक्र किया। behind all these pain death and destruction there is spinach of dazzle of cyseria called the dove of the devil book and unfettered persuade of money rules the service of common wood is left behind ones capital becomes ideal and guides peoples decision

ones breed of money presides over the entire social economic system it ruined society and clearly see even put address as our common goal. तो उसने सारा साफ तरीके से कहा कि अगर लोग पूंजीवाद के नियम पर चलेंगे और सब काम उसी से संचालित होंगे तो वो समाज के ढांचे और पूरी धरती को बर्बाद करेंगी आशीष ने कहा कि कुछ चीजों में शर्म आती है कि उसने जो भगवान गॉड इज ऑल पावरफुल ऑफ गोड, all powerful creater मतलब कि हमें उसके सामने घुटने टेकने चाहिए। लेकिन मैंने उनकी बात का विरोध किया कि कुछ ऐसे लोग हैं जो ये सोचते हैं कि इंसान कुछ भी कर सकता है। भगवान अगर न हो तो इंसान ही भगवान बन गया कि इंसान सबकुछ कर सकता है वो विज्ञान के माध्यम से हर समस्या को हल कर सकता है। तो ये सब इसकी प्रतिक्रिया में है तो चीजें बदलती नहीं है ऐसा नहीं हैं कि यदि आप अच्छा चाहते हैं तो अच्छा होगा उसकी एक प्रक्रिया उसका एक नियम है समाज का परिवर्तन भी एक नियम है। प्रक्रिया का भी एक नियम है उसे समझकर आप कर सकते हैं तो उसके सामने तो आपको घुटने टेकने ही पड़ेगे। तब जाकर आप उस बात को हल कर सकते हो तो मैंने कहा कि उसमें जैसे आप निकाल लो हो सकता है हर व्यक्ति उसे न माने। उस बात में अहमियत है और दूसरी बात जो उसने की वो चैलेंज कर रहे हैं इसलिए मैंने उसे ठीक से रखा नहीं इसलिए मैं उसे दोबारा उस बात को रख रहा हूं कि एक जगह पर बाइबिल के माध्यम से है कि धरती हमारे लिए बनी है। भगवान ने पहले दिन ये बनाया, दूसरे दिन ये बनाया और आखिरी दिन इंसान को बनाया। तो सारी चीजें इंसान के लिए बनाई तो वो इस चीज को चुनौती देता है कि प्रकृति इंसान के लिए बनी है जबकि वो कहता है कि प्रकृति की अपने आप में महत्व है और हमें प्रकृति का सम्मान करना है। इसलिए उनको वित्त आदि बातों में गड़बड़ लग रही है। सांता क्रूज के अंदर भी निष्कर्ष निकल रहा है और यहां पर मैं अपनी बात का भी निष्कर्ष निकालता हूं कि the future of humanity does not lies solely in the hands of great leaders the great power and the elites it is

fundamentally in the hands of the people and their ability to organize पूरी दुनिया की जो हम आगे देख रहे हैं कि बड़े–बड़े नेता या ताकतवर देश या लोगों के हाथ में नहीं है ये जनता के हाथ में है और जनता को संगठित होकर इसका हल निकालना होगा और इसी में सभी का भविष्य है। धन्यवाद।

विभोर जुयाल : हम अनुपम जी की अध्यक्षता में इस सीरीज को कर रहे हैं इसका प्रथम व्याख्यान भी श्री अनुपम जी ने ही दिया था। आप चाहें तो इस सीरीज के वीडियो हमारी वेब साइट में भी देख सकते हैं।

ओंकार मितल : मैंने वीरेन लोबो के साथ 3–4 साल तक काम किया है। मेरी वीरेन जी से संयोग से मित्रता हो गई। क्योंकि ये पूरी चर्चा जीवन के अर्थ के संबंध में हो रही हैं इसलिए मैं आपसे कुछ निजी बातें कह रहा हूं क्योंकि जीवन का अर्थ तो निजी चीज ही होती है। तो वीरेन जी के साथ जो हमने पिछले 3–4 सालों में सामाजिक, राजनैतिक काम किए वो अलग हैं लेकिन निजी तौर से वो इस मीनिंग की क्वेस्ट को अपने–अपने से करते रहते हैं और उन्होंने अपने साथ के लोगों से भी ये किया है। इसलिए मैं इनसे पिछले 4 साल से संवाद करता रहा और जैसा कि इन्होंने कहा है कि उन्होंने अपने पिताजी को श्रृदांजली देने के लिए इस संवाद की शुरूआत की। तो ये अच्छी बात है कि इससे हमारे बीच में मीनिंग ऑफ लाइफ की चर्चा हुई है और जब अपने पिता की मौत होती है तो एक बड़ा ही अजीब सा अवसर होता है और उसको भी अर्थ देने की कोशिश होती है और इन्होंने बड़े सुंदर तरीके से उसे अर्थ देने का प्रयास किया है। उनके पिताजी को उद्देश्य था 'री–यूज एडं री–साइकिल'। इस पर शायद उन्होंने एक किताब भी लिखी है। तो इन्होंने जो विषय उठाया है तो मैंने भी इन्हें अपने निजी तरह से प्रेरित किया है, उकसाया है कि वो इस विषय पर जरूर बोलें। इस बारे में भी मैं आपसे एक–दो बातें संक्षेप में कहना चाहता हूं कि हमारे एक मित्र होते थे हरभगवान, आप लोग उन्हें जानते होंगे। यहां मौजूद राखी जी ने उनके नाम से एक पुस्तकालय भी

चलाया है। उनसे मेरी मुलाकात 1974 में हुई जब मैं दयालसिंह कॉलेज में गया वो वहां पढ़ाते थे। तो उनके जीवन के आखिरी के वर्षों में जब मैं उनके पास कुछ लिखकर लेकर जाता था तो वो कहते थे कि जो तुमने लिखा है वो अच्छा लिखा है लेकिन तुमने ये लिखा है कि ये बात उसने कही है, ये बात इसने कही है तो मैं ये कहना चाहता हूं कि यदि आप कुछ कहना चाहते हैं तो वो कहो बाकी लोगों का जिक्र करना छोड़ दो। तो मैं उनसे कहता था कि आप जो कह रहे हैं वो तो बहुत ही मुश्किल बात है क्योंकि हम लोगों ने तो साइंस पढ़ी है और उसमें तो जो भी बात की जाती है उसमें संदर्भ दिए जाते हैं तो उसके बिना मैं अपनी बात कैसे कहूं। तो वीरेन जी ने जो कहा उसमें क्योंकि हम लोगों का मुद्दा राजनैतिक चिंतन है। और राजनैतिक चिंतन में जो एक पक्ष आता है तो उसके साथ उसका विपक्ष भी आता है। हर विषय कनटेस्टेंट टेरिटरी है। तो वीरेन जी ने जो बात रखी कि पोप ने पिछले वर्षों में जो अपने प्रस्तुति की तो उसके संबंध में मेरा ये कहना है कि अभी हमारे सामने जो भी समस्या है उसके बारे में यदि हम ये कहें कि पोप ने ऐसा कहा, ईमाम ने ऐसा कहा और विश्व हिन्दू परिषद ने ऐसा कहा तो इससे बात कहीं पर खो जाती है क्योंकि यदि हम कहें कि ये बात पोप ने कही तो हमें बात तो सुनाई नहीं देगी बल्कि हमें पोप का चेहरा दिखाई देगा और उसके बाद हमारी उससे जुड़ी अच्छी–बुरी भावनाएं, हमारे इतिहास की समझ उसके साथ खड़ी हो जाएगी। तो एक दौर ऐसा चला जबकि अंग्रेजों के नेतृत्व में इस प्रकार के अंतर–धार्मिक इंटर–रिलीजियस डॉयलॉग करवाए जाते थे। तो अंग्रेज जो कि डिस्ट्रिक्ट मेजिस्ट्रेट होते थे वो एक पंडित को, एक मौलवी को, पादरी को खड़ा कर देते थे और कहते थे कि अब आप एक–दूसरे के खिलाफ बोलिए। तो हमें एक ऐसे तरीके की जरूरत है कि जिसमें मैं इस बात को छोड़ दूं कि मैं मार्क्स को या गांधी को पढ़कर ऐसा बोल रहा हूं। मैं अपने एक मित्र से बहस करता हूं कि आप हर बात को इस तरह से क्यों कहते हैं कि गांधी जी ने ऐसा कहा था क्योंकि इससे तो कोई कहने लगेगा कि गांधी जी ने ऐसा तो नहीं कहा तो इससे हम बहुत दिक्कत में पड़ जाते हैं। लेकिन इस चर्चा को आगे

बढ़ाने के लिए अगर मैं कहूं कि मैं इस बात को मानता हूं। प्रकृति न्याय का संपत्ति के जो भी रिश्ते हैं उस विषय पर मेरा ये विश्वास है और आप अपना विश्वास बताइए तो ये सारी बातें एक कागज पर यदि मिल जाएं तो हमें उससे कुछ फर्क नहीं पड़ेगा कि पोप ने ऐसा कहा कि मौलवी ने ऐसा कहा तो इससे हम झगड़ों में नहीं पड़ेगे बल्कि उनसे बच जाएंगे। अगर हमने कहा कि ठीक है हमसे पहले कुछ गलतियां हुई और आज हम उन गलतियों की माफी मांगते हैं तो आज सवाल खड़ा रह जाएगा कि आप वास्तव में माफी मांग रहे हैं कि नहीं मांग रहे तो उससे वो बात बन नहीं पाएगी। तो इस समय दुनिया में डिबेट चल रही है और कैथोलिक चर्च में यूरोप में अपने आप में कैथोलिक चर्च एक कनटेस्टेंट टेरेटरी बना हुआ है। और उसपर ये बात कही जा रही है कि क्या कैथोलिक चर्च को रिर्फोम कर सकते हैं और वीरेन जी ने माफी वगैरह की बात की है तो वहां के लोग लगातार ये सवाल उठा रहे हैं कि रिर्फोम पर्याप्त नहीं है जबकि कैथोलिक चर्च कह रहा है Reform itself. तो इस बहस में जाने से उनको लाभ नहीं होगा दुनिया में लोगों की कुछ ऐसी मान्यता भी है पूंजीवाद की जड़ में ईसाईयत है और उसके बिना पूंजीवाद खड़ा नहीं हो सकता और ये सब मुश्किल सवाल है और मैंने इनकी तरफ इसलिए इशारा किया कि मेरी इनसे चर्चा होती रहती है। तो मैं यही कहूंगा कि किसी भी चर्चा में अर्थपूर्ण जीवन ढूंडते हुए और चर्चा को अर्थपूर्ण बनाते हुए हम ऐसी चर्चा करें जिसमें कि हम एक–दूसरे के साथ हो सकें जिससे हम सब सहमत हों और जिसे हम सब मिलकर करने को तैयार भी हों। तो ये जो हमारे सामने आज मुख्य चुनौती है कि हम अन्याय का सामना कर रहे हैं, प्रकृति का नुकसान कर रहे हैं और पूंजीवाद से भी जूझ रहे हैं तो इसके बारे में नीति बनाने की वीरेन जी की मूल प्रेरणा है तो मैं उनका स्वागत करते हुए अपनी टिप्पणी समाप्त करता हूं। धन्यवाद।

विजय प्रताप : वीरेन जी जब बोल रहे थे तो मेरे मन में दो बातें आईं एक तो ये कि हम लोग दिमाग में आस्था और विवेक दो खांचों में सोचते हैं किसी के साहस और किसी के अवचेतन में तो एक तो आस्थावादी लोग जो ईश्वरवादी हैं या जो चर्च को मानते हैं वो

लोग तो इस दस्तावेज को आस्था के एक मील के पत्थर के रूप में देखते हैं। उसके हिसाब से ये दुनिया कैसी होनी चाहिए, ये देश कैसा होना चाहिए और ये दिल्ली कैसी होनी चाहिए। तो उसमें क्लामेट चेंज के बारे में, समाज व्यवस्था के बारे में जो भी कहा गया है उससे वो अपनी प्रेरणाएं ग्रहण करेंगे और ये जो ओद्यौगिक क्रांति और विज्ञान के साथ एज ऑफ फ्रीज़न चल रहा है। उससे पहले तो आस्थावादियों के भीतर ही लड़ाइयों का इतिहास रहा है। आधुनिक समय में ही आस्था और विवेकवादी एक–दूसरे पर फतवा देते हुए ज़्यादा लड़े हैं। तो मुझे लगता है कि आज के समय में जिस तरह से पृथ्वी तथा जीवन पर संकट आया है उसमें हमें ईश्वरवादियों और अनीश्वरवादियों के बीच के सेतु खोजने चाहिए। मेरी समझ से गांधी हमें वो सेतु देते हैं और भी लोग देते हैं लेकिन मेरी समझ से गांधी ने गीता के संस्करण में जो उनका भाष्य है उसकी भूमिका में कहा है कि मेरी सार्वजनिक कार्य में कोई रूचि नहीं है मुझे मोक्ष चाहिए और मोक्ष दरिद्र नारायण, सत्य की खोज से मिलता है। सत्य की खोज दरिद्र नारायण की सेवा से होती है। वो मोक्ष जो कि गैर भौतिकवादी लक्ष्य है जिसे लोग ईश्वरीय ज्ञान के माध्यम से पाने की चेष्टा करते हैं। गांधी जी उसके बारे में गरीब की, अंतिम जन की, दरिद्र नारायण की सेवा के माध्यम से मोक्ष का रास्ता खोजते हैं। अब मोक्ष की ये जो परिभाषा है वो क्रांतिकारियों को, भौतिवादी क्रांतिकारियों को और ईश्वरवादी क्रांतिकारियों को दोनों को जोड़ती है और गांधी जी इस बात को कहने वाले अकेले नहीं थे। जसविक प्रीस्ट काफी रेडिकल माने जाते हैं। उनके बीच के एक भारतीय जसविक प्रीस्ट फादर एस. कपन ने एक किताब लिखी है 'जीसेस एडं फ्रीडम' और उसमें उन्होंने पूरे विस्तार से लिखा है कि अभी की कलरजी कैसे यथास्थिति की वैद्यता गढ़ने का काम कर रही है और जीसेस के संदेश को यदि सरवाइव करना है तो इस कलरजी के स्वरूप को बुनियादी तौर पर बदलना होगा। और जीसेस का संदेश अंतिम आदमी की सेवा में ही, गरीब की सेवा में ही अनफोल्ड करता है उसके अलावा जीसेस के संदेश को समग्र रूप से समझने का कोई और तरीका नहीं है। तो गांधी जी अपने को सनातनी हिन्दू कहते

थे। फादर कपन अपने को क्रिशचन मानते थे और जब उन्होंने ये किताब लिखी तो उस समय के चर्च ने उनपर सेंसर बिठाया और कहा कि आप किताब के ये अंश वापिस लीजिए तो उन्होंने कहा कि 'मैंने तो ये लिखा ही है कि आपकी ये प्रतिक्रिया होगी और मैं ये वापिस नहीं लूंगा' इस प्रकार उनके इस जवाब के बावजूद जस्विक समुदाय की हिम्मत नहीं हुई कि वो उन्हें निकाल सकें। तो मुझे लगता है कि हम में से जो लोग अनीश्वरवादी हैं वो इस तरह के उदाहरण जिसमें ईश्वरवादी लोगों ने भी बौद्धिक जगत के अन्यायों के लिए जिस तरह से लड़ाइयां की हैं उसमें ध्यान रखते हुए एज ऑफ डीजन का जो फंडामेंटलिज्म है, मार्डनिटी का, रेशनेलिटी का उसमें सिर्फ विवेक से ही सब होगा और आस्था को तिलांजली देनी होगी ये जो क्रांतिकारियों की एक शर्त रहती है संवाद और सहकार करने की मैं कम से कम उसका हिस्सा नहीं हूं। मैं ये नहीं कहना चाह रहा हूं कि सब लोग अपनी शर्तें बदल दें लेकिन मैं सार्वजनिक विमर्श के नाते ये बातें कह रहा हूं और मुझे लगता है कि रूस के युग के परिवर्तनकारी समय होते हैं। उसमें सब तरह के विचारों का जो शुभ पक्ष होता है, बेहतर पक्ष होता है उस सब की फिर चाहे वो देखने में एक–दूसरे के खिलाफ लगें। देखने में एक–दूसरे के समांतर लगें लेकिन उनमें सब में एक नई ऊर्जा आती है तथा सबमें समग्रता की एक कोशिश होती है तो अगर हमारी दुनिया को बचना है और बेहतर होना है तो फिर चाहे हिन्दू धर्म हो, इस्लाम हो, मुसलमान हों, जैन हों, बुद्धिस्ट हों सबमें जो एक संकीर्णता और नई दीवारें खड़ी हो रही हैं उनके खिलाफ एक समग्रता की लड़ाई, अंतिम जन की लड़ाई होनी होगी। ऐसा नहीं होगा कि इस्लाम में तो आईएसआई पैदा हो जाएं और हिन्दू धर्म में उदारता चलती रहे ये संभव नहीं है। अगर उदारता रही तो वो सब धर्मों में जीतेगी, एक साथ जीतेगी। दुनिया में जो एकात्मकता है जो वननेस है उसे कोई भी धर्म नष्ट नहीं करता है बल्कि उसे बढ़ावा देता है और हम लोग जो सीएसडीएस के एक बौद्धिक संगठन हैं, उसके हिस्सा होने के कारण ही हम ये सब काम कर रहे हैं। लेकिन आप में से कुछ लोगों को ध्यान होगा 2003 में जब पहला बड़ा एएसएफ, उसके बाद 2004 में

बम्बई में उसके बाद 2005 में यहां हुआ। तो हर फोरम में हम एक आयोजन करते थे रिलीजियसिटी, आइडेनटिटी और स्वराज (धर्ममयता, पहचान तथा स्वराज) तो हमें लगता है कि इसका भी एक रिश्ता है इसलिए हमने सेडेड में एक समूह 'धर्म जिज्ञासु मंच' बना रखा है जो कभी अच्छा चलता है तो कभी सुस्त हो जाता है उसमें धर्म का तत्व क्या है और उसका स्वराज से रिशता क्या है जिसपर हम कभी–कभी चर्चा करते हैं। आज की चर्चा में मेरे मन में दो तरह के परिणाम हैं अगर वो निकल सकते हैं एक तो इस दस्तावेज की प्रेरणा से लिखा गया एक दस्तावेज तैयार करें जिसमें हमारे सुझाव और टिप्पणियां आएं। उसके बाद जो टिप्पणियां आएंगी उन्हें हम जैसे कि हिन्दुओं के 13 अखाड़ों के मुखियाओं के पास जाएंगे और तो तमाम परंपराओं से हिन्दुओं के मठ–मंदिर है उनके पास वो भेजें; राजनैतिक दृष्टि से बनाए हुए फिर चाहे वो कर्ण सिंह का हो या फिर अशोक सिंघल का उनके भिक्षु मंचों में भेजने के बहुत पक्ष में मैं नहीं हूं क्योंकि उनका उद्देश्य धर्ममयता न होकर एक राजनैतिक संघर्ष हैं तो वैसे मंचों को न भेजकर जो परंपराओं में भिन्न धर्मों और संप्रदायों के जो बौद्धिक विमर्श के अगर कोई केन्द्र हों जैसे कि रामकृशन मिशन वो ज्यादा संगठित हैं। वो आधुनिक समय का एक संप्रदाय है और बाकी धर्मों में जो भी उपलब्ध हैं उनके पास ये दस्तावेज भेजा जाए और इन सवालों के अलोक में भारत और दुनिया, सस्टनेबल गोलस को कैसे इन्टरपरेट करेगी और प्रकृति और पुरूष के रिश्ते को ध्यान में रखते हुए एक उचित विकास का मॉडल क्या होगा इसके बारे में हम लोग एक विमर्श चलाएं ये मेरे मन में खास है और इसके अलावा इसका जो दूसरा लालच है कि '91 में जब से मनमनोहन सिंह ने भारत में स्ट्रक्चरल एडजेस्टमेंट प्रोग्राम शुरू करके और कंपनी राज शुरू किया और अब हमारा पूरा अर्थतंत्र पूरी दुनिया के अर्थतंत्रों की तरह कंपनी कंट्रोल्ड लोकतंत्र हो गया बजाए इसके कि हम उसे लोकतंत्र की ओर ले जाते तो उससे लड़ाई के लिए जो सांस्कृतिक जो आध्यात्मिक प्रेरणा के क्या स्रोत हो सकते हैं वो भी हम अपने विमर्श में शामिल करें क्योंकि जो आर्थिक और सामाजिक सरंचना का सवाल है उसपर काफी बहस हुई है।

और हमारी लड़ाई किसी निर्णायक सफलता की ओर नहीं पहुंची है केवल थेकली लगाने के लिए राइट टू इन्फोमेशन मिल गया और मनरेगा मिल गया लेकिन व्यवस्थागत परिवर्तन हों और आर्थिक व्यवस्था में लोकतंत्र कायम हो उससे उल्टी दिशा में हम लोग लगातार जा रहे हैं तो अपनी लड़ाई में जो आर्थिक और गरीबी और यूनियन लोगों के माध्यम से और उनके नेतृत्व से हम लोगों ने जो लड़ाई की है वो अभी तक लगभग नाकामियाब रही है। तो क्या हम उस लड़ाई को ज्यादा समग्र बनाने के लिए हमारे जो दर्शनगत स्रोत हैं, सिद्धान्त के स्रोत हैं, संस्कृति के स्रोत हैं उनमें से भी कुछ ऊर्जा खोज सकते हैं कि हमारी लड़ाई में समग्रता आए और जो आखिरी के तमाम सत्ताधीश राजनेता हैं चाहे वो बिहार में हों या फिर चाहे गुजरात में हों उनकी सहमति है विकास के मॉडल पर, प्रगति के मापदंडों पर तो क्या उस सहमति को हमें भेज सकते हैं, उसमें कोई तोड़ ला सकते हैं? ये एक दूसरा लालच है तो इस तरह की बहसों से यदि उसके कुछ दिशा संकेत मिलेंगे तो अच्छा होगा। धन्यवाद।

पवन गुप्ता : विजय जी ने मीनिंग ऑफ लाइफ एडं मीनिंगफुल लाइफ (जीवन का अर्थ और अर्थपूर्ण जीवन) शुरू किया है ये विषय बहुत ही सार्थक है और ये एक बहुत अच्छी सीरीज शुरू की है। मुझे लगता है कि इसमें कुछ अपनी बात होनी चाहिए। जिस तरह से मित्तल जी ने दूसरों की बात के बारे में कहा कि यदि हम दूसरों की बात छोड़कर अपनी बात करेंगे तो शायद हम इसमें से कुछ निकाल पाएंगे। मेरी कई मित्रों से भी बात होती है कि दिल्ली की इस तरह की सभाओं में जाने–अनजाने बौद्धिकता हावी हो जाती है, बौद्धिकता से मेरा कोई विरोध नहीं है पर मैं ये कहना चाहता हूं कि शब्द हावी हो जाते हैं। और ऐसे में अपने अंदर झांककर अपनी बात ईमानदारी से रखना जाने–अनजाने दूर होता चला जाता है। मैं ये नहीं कह रहा हूं कि ऐसा जानबूझकर हो रहा है ये एक आधुनिक परंपरा बन गई है कि हम अगर सभा में जाएं तो एक खास

मुहावरे में बात करें। उस मुहावरे का एक हिस्सा होता है कि आप किसी का संदर्भ जरूर दें, किसी दूसरे की बात जरूर करें। मेरा ये मानना है कि इस पूरी श्रृंखला से कुछ सार्थक निकल सकता है अगर हम अर्थमय जीवन का क्या अर्थ है इस विषय पर अपने को लगाकर बात करें और जिसमें कि एक समस्या जो मैं महसूस कर रहा हूं कि एक तो हम बहुत सारे शब्दों का प्रयोग करने के आदि हो गए हैं जिसमें मैं खुद को भी शामिल कर रहा हूं। उन शब्दों का अपना एक प्रभाव है जैसे 'डेवलेपमेंट' एक शब्द है या फिर 'डेमोक्रेसी' एक शब्द है, या 'सेक्युलरिज्म' एक शब्द है या 'ईश्वर' एक शब्द है ये सारे शब्दों का एक अपना एक प्रभाव है जब मैं उसको इस्तेमाल करता हूं तो उसका प्रभाव जो मैं वास्तव में कहना चाहता हूं उससे भी ज्यादा हो जाता है। और यदि इसके लिए हम बहुत अधिक संवदेनशील नहीं होंगे तो मुझे लगता है कि हम ज्यादा दूर नहीं जा पाएंगे तो मैं इस छोटी सी बात पर आपका ध्यान दिलाना चाहता हूं।

दूसरी बात अभी विजय जी ने एक बात उठाई उन्होंने दो वर्ग बनाए एक विवेक और दूसरी आस्था की। जहां तक मेरी बात है मैं पहले तो वर्गों से नहीं डरता था लेकिन अब डरने लगा हूं। आज मैं बहुत आस्थावान हो गया हूं और मेरी आस्था का ईश्वर से कोई लेना–देना नहीं है। मुझे उससे कोई समस्या नहीं और उसका मेरी आस्था से कोई संबंध भी नहीं है। मेरी आस्था विवेक से जनित है। मेरे विवेक ने ही मुझे आस्थावना बनाया और मुझे लगता है कि हम आधुनिकता के चक्कर में आस्थारहित हो गए हैं और शायद हम सब में एक अहंकार पैदा हो गया हो गया है कि हम बहुत विवेकवान हैं या फिर हम बहुत सोचने–समझने वाले हैं और इसलिए आस्था से हमारा कोई लेना–देना नहीं है। अगर ध्यान से देखा जाए तो मेरी यात्रा कुछ खास अलग नहीं है, जितने भी समाजवादी या आज दिल्ली जिनके प्रभाव में जीता है या हर प्रगतिशील आदमी जिस प्रभाव में जीता है जिसमें सेक्युलर होना, साइंटिफिक टैम्परामेंट होना, रेशनल होना ये बहुत उम्दा चीजें मानी जाती हैं, गुण माने जाते हैं तो मैं उसी माहौल से निकला हूं। मैं इसी यात्रा से निकलकर आस्था तक पहुंचा हूं और मुझे लगता है कि मैं

ज्यादा सुखी और सहज हूं। मैं ये भी नहीं कहूंगा कि मैं सुखी हो गया है और मैं ये भी नहीं कहूंगा कि मैंने सहजता को प्राप्त कर लिया है लेकिन मैं पहले से तुलना करूं हालांकि वो गलत चीज होती है लेकिन वो अपने को पहचानने का तरीका है तो मैं ये कहता हूं कि मैं पहले से ज्यादा सहज हूं। मैं पहले से ज्यादा सुखी हूं पहले से ज्यादा अपने साथ सहज महसूस करता हूं, और जो खुद के साथ सहज है वो दूसरों के साथ सहज हो ही जाता है। वो उसका परिणाम है और ये मुझे इसी यात्रा से निकलने से हुआ। मैं चाहता हूं कि हम इसपर बात करें क्योंकि ये महत्वपूर्ण है जो मेरे साथ हुआ है मैं ये नहीं कह रहा हूं कि मेरे पास उत्तर है लेकिन ये प्रक्रिया क्या थी, ये प्रक्रिया क्या है और ये कैसे हुआ इसपर कभी बात होनी चाहिए ये इस विषय से संबंध रखता है। मैंने अभी कहा कि मैं पहले से ज्यादा सुखी हूं लेकिन मैं दुखी भी हूं, दुखी इसलिए कि जब मैं चारों तरफ देखता हूं आशा नहीं है तो मुझे एक बहुत घनघोर अंधकार चारों और दिखता है जब मैं अपने बच्चों को देखता हूं, जब मैं अपनी उम्र के पीढ़ी के लोगों को देखता हूं, जब मैं अपने पुराने मित्रों को देखता हूं जब मैं चारों तरफ नजर दौड़ाता हूं और पूरे समाज में नजर दौड़ाता हूं और अपनी नजर से देखता हूं, हो सकता है कि मैं गलत तरीके से देख रहा हूं लेकिन मुझे अंधकार दिखाई देता है और वो अंधकार खाली मोदी जी की वजह से ही नहीं है लेकिन वो अंधकार है और पीड़ा इस बात से होती है कि जब मैं अपने हिन्दुस्तानी लोगों को पढ़े–लिखे समाज के लोगों को देखता हूं तो मैं पाता हूं कि हम लोग कितने ज्यादा सचेत हैं। एक तरफ तो अत्यंत संवेदनहीनता है जो दिखकर भी नहीं दिखाई देती है, महसूस नहीं होती है सब ऊपर'–ऊपर की बात होती है और दूसरी तरफ तीव्र आत्म चेतना (एक्यूट सेल्फ कॉन्सिससनेस) कि दूसरा मेरे बारे में क्या सोचता होगा, मैं ये बोलूंगा तो वो क्या सोचेगा वो पॉलिटिक्ल फोरम में भी है और वो घरेलू वातावरण में भी है। मैं अगर कुछ कह दूंगा तो कोई ये तो नहीं मान लेगा कि मैं सेक्युलरिस्ट नहीं हूं और खासकर दिल्ली जैसे शहर में तो ये बात आम है। मैं दिल्ली में ज्यादा नहीं रहता, हो सकता है कि दिल्ली से दूर बैठकर मुझे ज्यादा महसूस होता

होगा जैसे कि कभी कोई संवेनदशील अंग्रेज आता है तो उसको हिन्दुस्तानियों की ये आत्म चेतना (सेल्फकॉनियसनेस) और अंग्रेजी बोलकर अपने आप को ये बताना कि मैं कितना मॉर्डन हूं या कितना पढ़ा–लिखा हूं। ये सब शायद बाहर वाले को अधिक दिखाई देती होगी जो कि ज्यादा संवदेनशील होता है। जैसे कि मैंने मार्क टू ली की एक पुरानी किताब 'नो फुल स्टाप इन इंडिया' पढ़ रहा था तो उसका जो परिचय वाला अध्याय है उसे पढ़कर मुझे लगा कि क्या हम भारतीय वो बात लिख सकते हैं जो उसने अपनी सेल्फ कॉनसियसनेस के बारे में लिखी कि हम इस बात के लिए कितने सचेत रहते हैं कि हमारी अंग्रेजी कैसी है, हमारे बोलने के तरीके कैसे हैं इत्यादि। हम हिन्दी में भी बात करेंगे तो कुछ न कुछ तो ऐसा करेंगे कि दूसरे को लगेगा कि ये पढ़ा–लिखा तो बहुत है, हिन्दी बोल रहा है तो क्या हुआ तो ये सब हमारे चरित्र का हिस्सा बन गया है। इससे हमारे कपड़ों का कोई लेना–देना नहीं है। हम कोई भी कपड़े पहन लें या फिर कोई भी भाषा बोल लें उससे कोई लेना–देना नहीं है। मैं मानता हूं कि जब तक हम इन सभी बातों पर ईमानदारी से नंगा होकर बात नहीं करते, कि हम एक–दूसरे के साथ कम से कम अपने मित्रों के साथ ईमानदारी से बात करें तो क्या इन प्रश्नों का हल मिल पाएगा, क्या हम उस दिशा में आगे बढ़ भी पाएंगे इसपर थोड़ा संदेह है। हम दूसरों की बातें करते हैं कि जैसे कि गांधी जी की बात करते हैं लेकिन मुझे कभी ये दिखाई नहीं दिया कि लोग गांधी जी की हिम्मत की बात करते हैं कि गांधी जी ने जलियावाला बांग की दुर्घटना के बाद वो आदमी बोल सकता है कि जलियांवाला बाग में जब पूरा देश जल रहा था तो वो ये बोलने की हिम्मत रखते हैं कि 'वहां सब के सब कायर लोग थे, वहां एक भी आदमी शहीद नहीं हुआ क्योंकि सबके सब लोगों की पीठ पर गोली लगी' मैं इसमें नहीं जाऊंगा कि उन्होंने सही बोला या गलत बोला लेकिन मैं ये कहना चाहता हूं कि क्या ऐसी हिम्मत हममें से किसी में है क्या? नेताओं में तो बिल्कुल भी नहीं है। परन्तु क्या हम साधारण लोगों में वो हिम्मत है क्या? मुझे लगा कि नेताओं में हो न हो लेकिन साधारण लोगों में तो वो हिम्मत होनी चाहिए। तो इसे कैसे पुर्नजीवित किया

जाए। कैसे इसे छोटे स्तर पर किया जाए। विजय जी बोल रहे थे कि हम अखाड़ों के पास जाएं और उन लोगों से पूछें उससे पहले मुझे लगता है कि हम दस लोगों से पूछें, हम दस लोग तो बैठकर ईमानदारी से बात करें। क्या उसके लिए समय है, क्या हममें उतनी नग्नता की ताकत है? और नहीं है तो पैदा करें। क्योंकि मुझे लगता है कि सबकुछ डूब रहा है तो क्या हम प्रयास नहीं कर सकते। डूब तो वैसे भी रहा है लेकिन शायद तब कुछ बच जाए तो क्यों न इसमें से एक प्रयोग किया जाए जिससे शायद कुछ बच ही जाए।

अनुपम मिश्र : इस विषय पर मेरी गति नहीं है। पिछली बार जब मुझे भाषण के लिए बुलाया गया था तो तब भी मैंने यही कहा था कि हमें अपने आस–पास जो अंधेरा दिखता है वो खास मौकों पर ही दिखता है। जब हम सब एकत्र होते हैं तो उस समय अंधेरा कुछ ज्यादा ही होता है लेकिन वैसे जब हम अपना निजी जीवन जीते हैं तो तब अंधेरा उतना ज्यादा नहीं होता। क्योंकि तब हम अपने बहुत मामूली, सामान्य कामों में लगे रहते हैं और हम अपने जीवन में कोई चिंगारी नहीं आने देते। छोटी–छोटी चीजों को लेकर झगड़ा करते हैं। वीरेन जी ने जिस विषय को रखा है सचमुच उस विषय पर मेरी गति नहीं है इसलिए संकोच हो रहा है। हम लोगों में थोड़ी बहुत उदारता भी हो कि हमें क्षमा करना भी आना चाहिए कि यदि कोई किसी का विषय नहीं है तो वो उसमें क्यों बोले?

आज शायद 1 फरवरी 2016 है। ये हमारा कलैण्डर है। हमें कुल इतनी ही गिनती आती है, दूसरे समाजों में और कैलेण्डर चलते होंगे जैसे कि विक्रम सम्वत है, किसी में साल जुड़ेंगे तो किसी में घटेंगे तो बहुत सारे ऐसे समाज हैं जिनका हमें पता ही नहीं है। हो सकता है उनका कैलेण्डर पांच हजार साल पुराना हो, या छह हजार साल पुराना

होगा। उनके यहां पर कोई ऐसी घटना घटी होगी जिससे उनका कैलेण्डर निकला होगा और ये 2016 को कैलेण्डर भी किसी घटना से ही निकला होगा। तो हर समाज में घटनाएं तो हुई ही होंगी, सुख–दुख सभी पर आए होंगे। लेकिन ये पृथ्वी तो उससे भी पुरानी है हमारे 2000–5000 साल की गिनती में उसका कहीं नंबर नहीं आता। कुछ करोड़ों साल का इतिहास है। हम दिल्ली में रहते हैं यहां पर अरावली पर्वतमाला है वो हिमालय से दस हजार गुणा ज्यादा पुरानी है। जब हिमालय नहीं था वो तब भी थी। तो ये जो धर्म और कोई भी धर्म हो जब वो पृथ्वी से खुद को जोड़ता है, उसे बचाने का प्रयास करता है तो ये मुझे कोई बहुत ज्यादा समझ में नहीं आता। और ये बातें दो–चार बात हुई कि हम अपनी बात कहें गांधी जी ने जो कहा वो न कहें। लेकिन गांधी जी ने धर्मों के बारे में एक अच्छी बात कही उसको हमें दोहरा तो लेना चाहिए। उन्होंने कहा कि इन सभी धर्मों में कमियां हैं क्योंकि वो मनुष्य द्वारा निर्मित है तो मनुष्य मात्र की जो कमियां हैं वो धर्म में प्रतिबिंबित होना स्वाभाविक है। हर पीढ़ी का ये काम है कि वो इसमें से कुछ चुने जैसे एक अच्छा किसान अपनी फसल में से कुछ बेकार चीजों को उखाडकर फेंक देता है जो उसकी मुख्य फसल को बर्बाद कर सकती हैं तो ये काम एक पंडित का, एक पादरी का मौलवी का नहीं है ये तो 2–5 पीढ़ियों को अपने सामने देखना चाहिए और तब ये तर्क न हो कि पादरी नहीं उखाड़ रहा तो पंडित क्यों उखाडे क्योंकि निंदा तो निंदा है। जिस धर्म में होगा वो उसकी मुख्य फसल को बर्बाद करेगा। अब नाम तो सभी धर्मों के अच्छे ही हैं और सबका इतिहास है तो दो–ढाई साल पुराने धर्मों में प्रौढ़ता आनी चाहिए लेकिन उनके अनुयाई कई बार ऐसा बर्ताव करते हैं कि जिससे मुझे नहीं लगता कि वो प्रौढ़ हो गए हैं। निंदा की बात मैंने इसलिए कही कि जो भी कमियां हों वो निकालो लेकिन निकालने का तरीका भी सोचना होगा।

अभी इन दिनों एक अभियान चला है कि शनि देव के मंदिर में कौन जाएगा और कौन नहीं जाएगा। एक तो शनि देव भी अभी–अभी स्थापित हुए हैं इससे पहले इनकी बहुत ज्यादा व़क्त नहीं थी। कुछ टीवी चैनल्स का हाथ है और कुछ अन्य कारण हैं तो

इतनी बड़ी बहस नहीं थी। वो बेचारे किसी कोने में रहते होंगे और जिनको साढ़े साती का डर सता रहा होगा वो ही वहां जाकर आते होंगे। इसकी तुलना में व्हाइटहोम सत्याग्रह को याद कीजिए जो गांधी ने दक्षिण में चलाए कि मंदिर में फलां जाति नहीं जाएगी, उस आंदोलन की उन्होंने कैसी रूपरेखा बनाई, वो आंदोलन कितने दिन चला? क्या वो एक ही दिन में खत्म हो गया, हैलीकाप्टर से उतरकर? या फिर करीब–करीब 16–17 दिन चला। उसके लिए धीरज और तरीके, किसको लेना कैसे लेना, किनसे बातचीत करना आदि? उस तैयारी में उन्होंने पहले वहां के सब उच्च और सब अच्छे शास्त्रियों से बातचीत की कि पहले कारण तो बताओ कि इन्हें क्यों नहीं जाने देना? फिर उसके बाद उन्होंने कहा कि इसमें जो सबसे ऊंचे ब्राह्मण हैं वो शमिल होंगे, जिसको नहीं जाने देना है वो नहीं आएं उसकी वकालत करने के लिए दूसरे लोग आएं तो उसमें आचार्य आए और लोगों को डंडा पिटवाने के लिए बिठाया उन्होंने। और केरल के मानसून के बारे में तो हम सब जानते हैं कि कितना पानी देता है तो उन्होंने कहा कि मंदिर का रास्ता नहीं रोकना है जिनको जाना है उनको जाने देना है। तो फुटपाथ पर एक–एक लाइन पर बैठकर भजन गाना है फिर बादल भी फट जाएं तो उसके बाद भी भागना नहीं है। तो उन्होंने पुलिस के साथ, समाज के साथ कितनी तरह की वार्ताएं की होंगी उन्होंने और दूर भी रहे। तो ये मुद्दा उखाड़ना अपने को बार–बार देखना चाहिए। मैं बहुत पक्का भी नहीं कह सकता है कि क्या कहना चाहिए लेकिन जो पवन जी ने कहा कि कैटेगरी से डर लगता है वो बिल्कुल सही बात है। ईश्वर–अनीश्वर ये सब कैटेगरीज हो गए हैं और ईश्वर भी क्या बचा? सगुण और निगुर्ण की भी ऐसी 12 बजे हैं अब उसके बारे में कहना चाहिए कि नहीं जैसे कि किसी ने कहा है कि कोई बात मित्रों में भी कहते हुए डर लगता है लेकिन मेरा ईश्वर निणुर्ण है उसका कोई चित्र नहीं है, उसका कोई रंग–रूप नहीं है लेकिन विजय जी ने उसका एक आकार बना दिया तो क्या मैं विजय जी के पीछे पड़ जाऊंगा? नहीं ! मैं तो कहूंगा कि मेरा ईश्वर तो निगुर्ण है, उसका तो कोई रूप है ही नहीं, आपने जो देखा होगा वो बनाया होगा, मेरे वाले का

तो कोई रूप ही नहीं है। तो इस हद तक एक–दूसरे के लिए सोचने का काम करना पड़ेगा। और छोटी–छोटी चीजों पर हम लोग भडकने लगेंगे तो मुझे लगता है कि इससे कुछ निकलने वाला नहीं है और दूसरी बात मुझे लगती है कि ईश्वर–अनीश्वर ये केवल कैटेगरीज हैं इसमें सभी में जंग लगा है, सभी में ही निंदा है। तो एक समय में पंचकव्य भी चलेगा और उसी समय जीएम फूड भी चलेगा। तो जो पवन भाई ने आशा–निराशा की बात की कि उन्हें अंधेरा दिखता है मैं उनसे भी कहना चाहता हूं कि बहुत अंधेरा भी मत देखो और बहुत रोशनी भी मत देखो। अभी ये जितना हो सके हम सब लोग एक साथ एक–दूसरे पर बिना शक किए, पूरे विश्वास के साथ, पूरे प्रेम के साथ बातचीत करें और फिर मैं अनुरोध करूंगा कि इस श्रृंखला में हमें जल्दी से जल्दी पवन जी को सुनाने का प्रबंध करें, जिसमें वो लंबे समय तक बोलें और ये बातें अधिक से अधिक लोगों तक जाएं। और अधिक से अधिक लोगों के पास जाने के लिए जिस तरह से विजय जी बहुत प्रयोग करते हैं, इस विषय पर मेरी तो कोई गति नहीं है। बस धन्यवाद।

नागराज : मार्क्सवादी एकेडमिक है जॉन वैली फास्टर जो हैं तो उनके जो लेख निकलते हैं क्लाइमेट चेंज पर इकोलॉजिकल क्रासिस पर उनके अलग–अलग कोर्स हैं और ये जो लाओडाटो –सी की जो चर्चा हुई उनका आप एक पीस ले सकते हैं तो उसमें आप देख सकते हैं कि ये किसने लिखा है फॉस्टर ने लिखा है या फिर पोप फ्रांसिस ने। ये एक अभूतपूर्व दस्तावेज है। तो अर्बोशन के मुद्दे को छोड़कर जो कि मुझे समस्या वाला लगा बाकी सब अभूतपूर्व है। क्योंकि इसमें केवल क्लाइमेट चेंज के मुद्दे नहीं थे बल्कि बहुत विस्तृत मुद्दे थे जिसमें रोजगार भी शामिल है। इसमें मैंने टैक्नोलॉजी के मुद्दे भी पढ़े जो कि बहुत समृद्ध थे जिस खूबसूरती से उन्होंने तकनीक के मुद्दों को रखा है। जबकि टैक्नोलॉजी इस तरह से सवालों का जवाब नहीं दे सकती। कुछ दिनों पहले मैं अपने गांव में था मेरा गांव मैंगलोर में पड़ता है तो मैं वहां एक चर्च में गया ये पता करने कि

जब पोप का इतना महत्वपूर्ण दस्तावेज आया तो चर्च में इस दस्तावेज के बारे में किस तरह से चर्चा हो रही है। एक तो वो इस दस्तावेज का एक पेज में स्थानीय भाषा में अनुवाद कर रहे थे तो मुझे लगता है कि इस तरह के दस्तावेज को अलग–अलग भाषा में अनुवाद करना चाहिए और खासकर उन्हें हिन्दी में होना चाहिए। उसमें ऐसी चीजें होंगी जिससे हममें से कई लोगों को आपत्ति होगी। चर्च में इस पर किस तरह की चर्चा हो रही है जैसे कि कैथोलिक चर्च में 1 बिलियन लोग हैं और जहां पोप की ओर से इस तरह का महत्वपूर्ण दस्तावेज निकला है तो उसपर चर्चा हो। इसमें पारिस्थितिकीय और अन्य रेडिकल सेंटर के बिंदुओं पर भी विचार–विमर्श हो। इस विषय पर बहुत तरह से चर्चा हुई है लेकिन मुझे लगता है कि कर्क्स एंड इकोनॉमिक अलटानेटिव और पिछले 15 सालों से जितने पॉलिटिक्ल अलटरनेटिव खड़े हुए हैं फिर चाहे बोलिविया में हों या फिर ब्राजील हों none of them pause to economic alternative to capitalism. This document makes a very clear losing the word capitalism how central like growth consumption spending in it. बिना 'कैपटलिज्म' शब्द इस्तेमाल किए ये दस्तावेज पोप ने पूरी तरह से स्पष्ट किया है। और जिस तरह से इस दस्तावेज पर यहां पर चर्चा हुई है वैसे ही इसपर इस पर विस्तृत चर्चा की आवश्यकता है कि किस तरह से आर्थिक विकल्प हों। तो मुझे लगता है कि आज जो भी हो रही है उसमें आर्थिक तर्क की कमी सी है। लेकिन मुझे लगता है कि कैपटलिज्म से जो आर्थिक नुकसान हुआ है उसपर बात जरूर की जानी चाहिए।

प्रशांत : मैं 30 जनवरी को किसी घटनाक्रम के कारण एक समारोह में राजघाट गया आमतौर से मैं जाता नहीं हूं लेकिन फिर भी गया और जैसे कि आमतौर से होता है कि जिन लोगों को नहीं बुलाना होता है उन्हें बहुत पहले बुला लेते हैं और जिन्हें बुलाना होता है उन लोगों को बाद में बुलाते हैं। इसलिए मुझे वहां कार्यक्रम शुरू होने तक इंतजार करना पड़ा जो कि लगभग डेढ़ घंटे का रहा मैंने वहां सब देखा। जिसके इंतजार में सब रुका हुआ था वो तो तभी आया जब उसे आना था पर बाकी लोग तो

एक–एक करके आ ही रहे थे। तो मैं ये मन में सोच रहा था कि यहां जो भी आ रहा है वो अपने कंधे पर कुछ न कुछ लेकर आ रहा था। ऐसा लग रहा था कि जैसे सभी अपने–अपने कंधे पर कुर्सियां लेकर आ रहे थे जो दिख तो नहीं रही थी लेकिन समझ में आ रही थी। वो वहां सब लोग बोझ से दबे आ रहे थे और वो उस बोझ को पहचान लें इसकी कोशिश कर रहे थे। एक ऐसे आदमी की याद में वहां आ रहे थे जिसने अपने नहीं होने की कोशिश में ही अपना सारा जीवन बिता दिया। तो ये जो विरोधाभास है हमारे अंदर, हमारे खोने के भाव का और इस भिक्षा का कि हम दूसरों को भी पता चलाएं। ये है जहां हमारे भीतर विरोधभास है। जैसे अभी आप अंधकार की बात कर रहे थे तो अंधकार क्या है। अंधकार ये नहीं कि बाहर कुछ नहीं दिख रहा। अंधकार ये कि हम खुद को नहीं देख पा रहे हैं और खुद हम ऐसे बनें कि सारे लोग हमें देखें। इन दोनों के बीच का जो खिंचाव है वो हमें बहुत परेशान करता है। वो गालिब ने कहा है कि 'न कुछ था तो खुदा था, न कुछ होता तो खुदा होता, डुबोया मुझको होने ने, न मैं होता तो क्या होता।' वो गालिब है जो मुद्दत हुई मर गया पर याद आता है कि हर एक बात का कहना कि यूं होता तो क्या होता। तो कहीं न कहीं आप ये सोचें कि जो सवाल विजय जी ने हमारे सामने रखा है जीवन की सार्थकता और जीवन का अर्थ तो इसका रिश्ता हम सभी से कभी न कभी जुड़ता है। हम सब इस कोशिश में हैं कि हम कुछ ऐसे बनें कि सारी दुनिया हमें देखे। यदि दुनिया हमें नहीं देखती तो हम इंतजार में रहते हैं। पर दरअसल ये सब बातें तो अपने भीतर से ही पैदा होती हैं अगर ये सोचकर देखें कि हम कुछ भी नहीं हैं तो तब भी आन्नद मिलता है क्या? अगर आन्नद नहीं मिलता तो ये अंधकार है और ये हमें और भी अंधकार में ले जाता है। मैं तो समझता हूं कि कुछ ऐसी चीज नहीं जिसका आनंद आपको अकारण मिलता हो तो उसमें से उत्साह भी आता है, उसमें से आशा भी आती है। निराशा की स्थिति मिलती है और आशा नजर आती है। उस जगत या बिंदु की खोज की जरूरत है हम सभी के लिए और ये कोई दार्शनिक बात नहीं बहुत ही सामान्य व्यवहार की बात है कि हम सब अपने जीवन में एक ऐसी

जगह ढूंढ पायें जहां से आनंद मिलता हो। तो बहुत सारे काम पड़े हैं और बहुत सारे काम नहीं हुए, दुनिया में ये ठीक नहीं चल रहा है, ये ठीक चल रहा है तो मैं ये कहता हूं कि क्या ये दुनिया तुम्हारे बाप की है कि जो तुम्हारे रास्ते पर चलेगी तुम खुद ये देखो कि तुम किस रास्ते पर जा रहे हो और यदि तुम अपने रास्ते पर जा रहे हो तो आनंद मिलता है फिर लगता है कि यदि सभी लोग इस तरह से सोचें तो बहुत कुछ सुधर सकता है। तो फिर एक रास्ता बनेगा और समाज भी उसपर चलेगा। लेकिन यदि हम रास्ता बना लें और सोचें कि समाज उसपर चले तो ये तो बात उतनी आसान नहीं है। तो मैं यही कहना चाहता हूं कि हम सब लोग कुछ ऐसी चीजों को ढूंढ सकें जहां से आनंद मिलता हो और आनंद हमेशा सार्थकता से ही मिलता है, निरर्थकता से नहीं मिलता। तो सार्थकता कहां पर है आपके करने की, आपके कहने की या आपके बोलने की। आपके गाने की, आपके लिखने की। यदि आप उन सब में सार्थकता निकालेंगे तो आप लिखेंगे और संदर्भ भी बदलेंगे। आपको कुछ न कुछ चीजें दिखाई भी देने लगेंगी।

कैनसेस फर्नांडिस : मैं इंडियन सोशल इंस्टियूट का डारेक्टर हूं। ये खुशी की बात है कि मैं यहां पर हूं जिससे मुझे वीरेन लोबो का व्याख्यान सुनने को मिला। यहां के साथियों ने जो अपना प्रतिक्रिया दीं और यहां पर सुना। लाओडाटो–सी के बारे में ये है कि ये एक दस्तावेज है और ये उसी समय पर रिलीज हुआ जब पेरिस में क्लाइमेट चेंज का डिस्कशन हो रहा था। तो उस समय एक प्रकार का दबाव देखने को मिल रहा था कि जो अमीर देश और जो सबसे ज्यादा प्रदूषण फैलाते हैं उनके ऊपर इस लाओडाटो–सी के डाक्यूमेंट ने एक दबाव डाला उसके बाद पेरिस में अंततः एक आशावादी दस्तावेज निकला। और जब हम ये डाक्यूमेंट पढ़ते हैं तो कभी–कभी यह हो सकता है ये मन में आए कि लाओडाटो–सी एक पोप का डाक्यूमेंट है तो क्रिश्चियन का है लेकिन हम ये बात हमेशा इस डाक्यूमेंट के बारे में ये बात मुख्य बात है कि पृथ्वी हमारा घर है तो हम

कोई भी हों हिन्दू, मुस्लिम, सिख, इसाई तो हर एक इंसान को इस धरती पर जीने का हक है और खुशी से जीने का हक है वैसे ही बाकी जो जनजाति है और जो जानवर, पक्षी हैं जो भी हैं सबके लिए इस साझे घर में जीने का हक है। तो हम इसपर ध्यान न दें कि धर्म की बात किसने बोली बस अपनी आगे की पीढ़ी के लिए ये सोचें कि हमारा घर एक सस्टनेबल घर होना चाहिए इसी विषय पर पोप ने कुछ बातें लाओडाटो–सी में रखी हैं। यदि वैसा ही हो जाए और हम अपनी पृथ्वी को बेहतर तरीके से चला पाएं तो बेहतर होगा। हमारा आर्थिक एवं सामाजिक प्रक्रियाएं ठीक से चलें और किसी ने बताया कि हमें विकल्प खोजने चाहिए। ये सही बात है कि हमें विकल्प ढूंढ़ना चाहिए और यदि हम विकल्प ढूंढ़ना चाहते हैं तो हमें एक tendencies to unifermize any solutions हर एक समुदाय खासकर आदिवासी समुदाय के पास सस्टनेबल उपाय हैं, हर एक समुदाय में सस्टनेबल उपाय हैं और अगर हम बहुत विकेन्द्रीकृत हैं, हो सकता है कि हमारे विश्व में बहुत सारे देश हैं लेकिन सभी देशों में लोकतंत्र नहीं है और लोकतंत्र जब थोपा गया है वहां नेशनस ढह गए। तो uniformalize any political system or any other system. लोग हर एक समुदाय उनका जो सिस्टम social, cultural, economic system जो ठीक है, सस्टनेबल है उसे ढूंडना चाहिए और प्रोत्साहित और प्रचार करना चाहिए और मुझे लगता है कि ऐसे जो विचार–विमर्श ये सेडेड ने शुरू किया है मैं उनकी प्रशंसा करता हूं और उनको बधाई देता हूं। धन्यवाद।

लक्ष्मण पंत : मैं प्रवासी नेपाली संगठन में काम करता हूं। विजय प्रताप जी ने आज की बैठक का विषय 'जीवन का अर्थ और अर्थपूर्ण जीवन' रखा जो कि बहुत ही समकक्ष है तथा इसके बहुत गहरे अर्थ हैं। अर्थपूर्ण जीवन क्या है? मुझे लगता है कि समाज को या पूरी मानवता को सुखी रखने में अपना योगदान देना ही अर्थपूर्ण जीवन है।

विजय प्रताप जी ने मुझे क्रांतिकारी नाम दे दिया लेकिन मैं कोई क्रांतिकारी नहीं हूं। मैं किसी क्रांतिकारी कहलाने वाले आंदोलन से जुड़ा हो सकता लेकिन क्रांतिकारी नही। क्रांति शब्द भी सापेक्ष शब्द है वो निरंतर एक विकास और संवाद की और आगे बढ़ता है। तो मेरे हिसाब से अर्थपूर्ण जीवन, समाज के बारे में जैसे कि मार्क्स ने बोला कि समाज को समझना है और उसे न केवल समझना बल्कि बदलना है। तो हमारे हिसाब से ये अर्थपूर्ण जीवन है। मैं कहूंगा कि ये अच्छा विषय है इसपर लगातार एक संवाद हो इसके लिए इस सीरीज की शुरूआत हुई है आगे भी विचारों को मंथन करते हुए आगे बढ़ाना चाहिए। दूसरा जो हमारे दक्षिण में भारतीय उपमहाद्वीप में जो पारिस्थितिकीय विषय है खासकर आप हिमालय को लें क्योंकि मैं भी पहाड़ से ही हूं। तो मैं देखता हूं कि आज से 45 या 50 साल पहले जब मैं बालक था तो हमारा जो पहाड़ों में घर था तो वहां से हिमालय का दृश्य बहुत ही मनमोहक दिखता था लेकिन अब कभी मैं दो–चार साल में एक बार उस इलाके में एक पर्यटक के रूप में जाता हूं तो मैं देखता हूं कि हिमालय की बर्फ पिघल गई है और वो एक काले पहाड़ की तरह दिखता ह जो बहुत ही दुखदायी दृश्य है तो ऐसे में समग्र में मानवता को कैसे बेहतर बनाया जाए; इसके लिए मैं यही कहूंगा कि अभी पहले के वक्ता ने धरती के उद्भव के करोड़ों साल के इतिहास की बात की तो धरती आज से दस करोड़ साल पहले जैसी थी क्या हम वैसी धरती फिर से दे सकते हैं। जब हम मानव की हैपीनैस की बात करते हैं तो उसपर हमें फोकस तो करना ही चाहिए। कि हम आज से 300 साल पुरानी धरती को लाएं और मानव कैसे मॉर्डन बने कि वो इसमें संतुलन भी ले आए। क्योंकि आज धरती ऐसी हो गई है कि हिमालय में न तो बर्फ बची है, न पानी बचा है तो वैसी धरती कैसे बनाएं जैसे 300 साल पहले थी। तो मुझे लगता है कि ये बहुत बड़ी चुनौती है। तो मुझे लगता है कि मानव और फिर वो चाहे भौतिकवाद में विश्वास रखने वाले मार्क्सवादी, लैनिनवादी, या माओवादी हों या फिर ईश्वरवादी आदर्शवाद में विश्वास रखने वाले आदर्शवादी हों तो हमें लगता है कि सभी को इस ओर ध्यान देना चाहिए। धन्यवाद।

स्टेट फर्नांडिस : I am regional director of gadget refuges service basically I work with refugees in south Asia the reason why this sharing because I know Viren very well we both in Pune and we also have same interest in it and ecology as dense shared this world is our home what can we do in order to give it to the next generation. So I look at world as our home and we are only borrowing it from the future generations. When Viren was talking about the topic the topic was a quest for ecological democracy. So this quest is not just an intellectual quest something about our self but I felt that this quest is must also looks is the in models that we have. What brings us together is also the common background that we have at least. Earlier we are working in the Ahmadabad district in integrated watershed programme and that brings together the whole village community to order regenerate environment as to rebuild the community so that the community can live on the land where is home where the community has its home and people not have to migrate. So If we are looking at solutions, sustainable solutions for our world for tomorrow we can look at so many models that we have and each community develops its own model a model which is sustainable a model which not only in regenerate a mind but regenerate society also. I am very grateful that I could be here among you and I thank Viren especially for his presentation on Laudato-si and I hope that our continuation is not just about knowledge and discussions but also how we can come together in bringing about through our life and through our action a world that is better place for all. Thank You.

विमल : जब शैतान के मुंह से अच्छी बातें हों तो बहुत अजीब लगता है। वो लोग जिन्होंने धरती को नरक बनाया है, जिन्होंने इस धरती को रहने लायक नहीं रखा, वो

जिन्हें ये पता नहीं है कि हमारे जीने के ढंग से अकेले मानवता नहीं खत्म होगी, मानवता के साथ तमाम जीव–जन्तु, पेड़–पौधे बल्कि खेती भी खत्म हो जाएगी और जो लोग इसके लिए जिम्मेदार हैं आज वो इस तरीके से इतने अच्छे ढंग से, इतनी अच्छी शैली से उपदेश दे रहे हैं कि हमें इस पारिस्थितिकीय को बचाने के लिए क्या करना चाहिए; ये देखकर बड़ा आश्चर्य होता है। ये देखकर तो और भी अधिक आश्चर्य होता है कि कुछ लोग उनकी बात सही करने के लिए उनकी कठपुतली बनकर उनकी बातों को आगे बढ़ाकर उनकी बात पर लीपा–पोथी कर रहे हैं। दोस्तों वास्तव में ये जिम्मेदारी पारिस्थितिकीय को बचाने की जिम्मेदारी है जिसके लिए हम लोग यहां बैठें हैं लेकिन हमने अपनी 60 साल की जिन्दगी में, अपने निजी अनुभवों से जीवन का अर्थ समझा है और ये समझा कि जीवन का अर्थ कुछ होता है तो वो केवल संघर्ष होता है। वो संघर्ष किस बात के लिए होता है तो वो केवल कुछ अच्छी बातों के लिए। यदि हमारा जीवन केवल कुछ अच्छी बातों के लिए होता है, अगर हमारा हृदय कहता है कि जीवन का अर्थ यज्ञ है, जीवन का उद्देश्य यज्ञ है और जीवन एक यज्ञ है तो जो लोग धरती को खत्म करने के लिए जिम्मेदार हैं वो बता रहे हैं कि हमें इस पारिस्थितिकीय को बचाने के लिए क्या–क्या करना चाहिए जो कि एक विडंबना है।

जीवन का अर्थ होता है उन अच्छी चीजों के लिए संघर्ष जिनसे जीवन चल सके, जीवन बच जाए और यदि उस संदर्भ में आज पारिस्थितिकीय की, प्रकृति की समस्या को देखना है तो ये पर्यावरण की समस्या हम शासक वर्गों की, राज सत्ताओं के उनके हाथों में सौंपने की जगह जनता को अपने कंधों पर उठानी होगी तथा दुनिया की जनता को भी सोचना होगा कि इस विषय पर उनकी चेतना का जो स्तर है वो किस तरह से बढ़े और कैसे शासक वर्ग के हाथ से इन एजेंडों को छीनकर इस धरती के रहने वाले लोग धरती को सुरक्षित करें यदि इस बात पर हमारी चिंताएं बढ़ेंगी तो मैं समझता हूं कि इससे जीवन का अर्थ सार्थक होगा।

वर्षा तिवारी : मुझे बहुत खुशी हुई कि पोप ने ये विचार रखे कि प्रकृति और मानव कैसे एक–दूसरे से जुड़े हैं और कैसे प्रकृति को बचाया जा सकता है तथा इस विषय पर सबने अपने विचार रखे। मैं आपके सामने अपना एक अनुभव रखना चाहती हूं; कल मैं दिल्ली के चिड़ियाघर में गई वहां जंगल के सारे प्राणी मुझे एक ही जगह पर दिखाई दिए जिसे देखकर बहुत अच्छा लगा लेकिन बहुत दुख हुआ ये देखकर कि उनसे उनका घर क्यों छुड़ा कर यहां पर एक प्रवासी की तरह रखा है। तो ये देखकर मुझे बहुत तकलीफ हुई कि क्यों उन पशुओं को इस तरह से रखा है। मैं दिल्ली में अपने माता–पिता से अलग एक कमरे में रहती हूं और अक्सर मुझे लगता है कि काश आज मेरे माता–पिता मेरे साथ रहते तो कितना अच्छा होता या फिर मेरे साथ उन लोगों का समूह होता जो मेरी ही तरह होते, जिनके साथ मैं बातचीत कर सकती। तो वहां पर तमाम जानवर पिजरों में थे तो किसी पिंजरे में केवल एक शेर है, किसी में केवल एक चिड़िया है आदि तो वो अकेले–अकेले उदास से दिख रही थे जो मुझे बहुत खल रहा था। प्रकृति, हरियाली और सभी जानवरों को देखकर मुझे अच्छा तो लगा लेकिन वहां जानवरों की हालत देखकर बहुत दुख हुआ। मैं हमेशा ये कोशिश करती थी कि मैं प्रकृति के लिए कुछ करूं और जितना हो सके मैं वो करती हूं। मुझे लगता है कि हम जिस चेतना की बात कर रहे हैं उसकी कमी इसलिए है कि जैसे हमारे स्कूलों में सिलेबस के रूप में पर्यावरण को डाला है लेकिन वो जिस गंभीरता से पढ़ाया जाना चाहिए उस गंभीरता से नहीं पढ़ाया जा रहा यदि ये पढ़ाया जाता तो मुझे लगता है कि काफी मुश्किलें आसान हो सकती हैं। विदेशों में पर्यावरण को बचाने के लिए बड़ी–बड़ी चर्चाएं होती हैं, और बॉयो डाइवर्सिटी, क्लाइमेट चेंज आदि बड़े–बड़े शब्दों का प्रयोग करके हम पर्यावरण को बचाने की बात करते हैं लेकिन उसके लिए हम सबको आगे आना होगा, हमें एक–दूसरे से बात करके एक–दूसरे को मनाकर हमारी पृथ्वी को बचाना होगा।

कौशल किशोर : ये जो तीन बातें आई हैं कि ये तो पाप है कि हम भगवान को, अपने पड़ोसी को और प्रकृति को भूल गए हैं। ये तो पुराना पाप है ये कोई नया पाप नहीं है, हम आज से नहीं बहुत पहले से भूल गए हैं तो इस बात पर अगर कुछ और प्रकाश पड़े तो अच्छा है। एक सवाल मैं करना चाहता हूं कि आपने इस बात को आगे बढ़ाकर मूर्ति पूजा और प्रकृति की पूजा की उसे लोबो साहब कैसे देखते हैं और इस दस्तावेज में कैसे परिभाषित किया है कि प्रकृति की पूजा की बात तो वहां पहले रही है।

वीरेन लोबो : सिर्फ वो संदर्भ था आप चकित हो गए कि प्रकृति के ऊपर Praise god through mother earth, He did not think Christianity is preaching this.

मनोज : 'जीवन का अर्थ और अर्थमय जीवन' की इस सीरीज की शुरूआत से ही अच्छा लगा। किसी लक्ष्य को पाने के लिए विश्व के सारे धर्मों की स्थापना हुई है सिर्फ ये दो शब्द जीवन का अर्थ और अर्थमय जीवन इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए हैं। लेकिन दुर्भाग्य है कि हमारे स्वार्थपूर्ण धर्म विचार में और राजनैतिक और सामाजिक स्वार्थवश इसमें सभी धर्मों में प्रकृति की सारी बनावट के आगे संकट पैदा कर दिया है। जग जानता है कि जब हम बौद्धिक लोग इन सबसे डरते हैं तो अपने आप–पास की चीजों का रोना रोते हैं। और सबसे महत्वपूर्ण प्रश्न है कि संकट की इस घड़ी में हम सब लोग, सभी धर्मों के लोग जैसा अनुपम जी ने कहा और कुशार प्रशांत जी ने भी यही इंगित किया कि उन सभी धर्मों की अच्छाई को लेकर एक सामाजिक आंदोलन की तरह से चलाएं तो ये मानव समाज के लिए ही नहीं इस सारी प्रकृति के लिए बहुत की सुंदर होगा। जीवन का अर्थ और अर्थमय जीवन इसके बारे में आप जब कभी भी गौर से सोचेंगे कि कूड़ा–रद्दी सिर्फ समाज में ही नहीं होती बल्कि वो जीवन में भी होती है। तो अपना उद्देश्य खो चुके जीवन में या यदि उसमें कुछ चीज कूड़े के समान है तो हमें उसे कहां रखना है ये एक–एक व्यक्ति पर निर्भर करता है।

रोशन : मेरे लिए बहुत गर्व की बात है कि मुझे बड़े–बड़े विद्वानों के सामने बोलने का मौका मिला लेकिन डर भी लगता है क्योंकि अपनी विद्ववता को सिद्ध करने के लिए मेरे पास शब्द भी नहीं है। बात बाइबिल के बहाने होती है और मैं सोचता हूं कि ये केवल बाइबिल की बात नहीं है यदि हम अपने विवेक से भी उत्तर मांगे तो उत्तर वहीं से मिलेगा कि धरती किसी की बपौती नहीं है। वो किसी की निजी संपत्ति नहीं हो सकती क्योंकि ये जीवन का आधार है और ये भी हमने मान लिया कि ये किसी व्यक्ति की संपत्ति है जबकि ये केवल सारे मनुष्यों की संपत्ति भी नहीं है तो फिर वो तो कोर्ट में घर वाली स्थिति होती है। हम गिरजाघर में या मंदिर या मस्जिद में जाकर जिस बात को शपथपूर्ण कहते हैं, नियम और कानून बनाते समय उस बात को बिल्कुल भूल जाते हैं या जानबूझकर भी उसकी अपेक्षा करते हैं ये भयावह स्थिति है। आज इस चर्चा से मैं ये बात समझ रहा हूं कि आज मनुष्यता के सामने ही नहीं पूरे अस्तित्व के सामने, धरती के अस्तित्व के सामने एक भयावह स्थिति है जैसे कि प्राकृतिक दुर्घटना के समय या किसी भयावह खतरे के समय सारे लोग अपनी प्राकृतिक दुश्मनी तक भूलकर एक सहचरय, सामन्वसय के साथ बिना दूसरे पर आक्रमण किए या मारे बिना किस प्रकार अपना जीवन बचाने में लग जाते हैं। तो मुझे लगता है कि आज ग्रह के सामने भी यह स्थिति हो गई है साथ ही आज ये सवाल है कि ये स्थिति किसने पैदा की, कौन जिम्मेदार है तो मैं तो यही कहूंगा कि ये जो ज्ञान की भी ठेकेदारी है जिसे कुछ लोगों ने अपनी बपौती मान लिया है जिसमें कहीं न कहीं उनकी भी भूमिका है। लेकिन इसके परे भी यदि मैं बात करूं तो आलोचना से कुछ नहीं मिलता यदि हम आज भी समझ जाएं तो कल के भविष्य को सुधारने की स्थितियां बन सकती हैं इसमें कोई कठिनाई की बात नहीं है और ये सारी की सारी समस्या मानव विज्ञान से सीधा संबंध रखती हैं। मैं कहने के लिए वसुधैव कुटुम्बकम की बात बहुत बार कहता हूं लेकिन जब आचरण की, नियम की, कानून की, शासन की और शासितों की बात आती है तो ये सारी बातें भूलकर हम वही आचरण करते हैं जो मानव मनोविज्ञान के अनुसार व्यक्तिगत स्वार्थ को दिखाता है।

सत्ता में कोई भी रहे वह सारी मनुष्यता के भविष्य को अनदेखा करके अपनी बिल्डिंग बना रहा है। और उसके प्रमाण के लिए मैं किसी दर्शन में नहीं जाऊंगा, किसी सिद्धान्त की बात नहीं करूंगा प्रत्यक्ष रूप से जो दिखाई दे रहा है कि आज जो आंकड़े आ रहे हैं 62 लोगों के पास दुनिया की सारी संपत्ति एकत्र हो गई है। एक तरफ हम धरती पर किसी का स्वामित्व नहीं मानते इस बात को सिद्धान्तः स्वीकार करते हैं और दूसरी तरफ 62 लोगों के पास सारी संपत्ति एकत्र हो गई है ये बेहूदापन है ये हमारा अन्तरविरोध जिसे हमें समझना होगा। हर आदमी दूसरे से ज्यादा सुखी होना चाहता है ये कौन सी बात है। यदि हम चाहते हैं कि सभी को सुख पाने का अधिकार है, सब समान स्वतंत्रता। हम जन्म से एक ही समान जीने का अधिकार लेकर पैदा होते हैं तो फिर वो समानता हमारे व्यवहार में नहीं है, मैं तो कहूंगा कि व्यवस्था के अंदर होनी चाहिए। यदि मैं व्यवस्था के अंदर की बात करूं तो हमें ये मानना होगा कि सबका अधिकार बराबर है तो फिर इतने लोग भूख से क्यों तड़प रहे हैं इतने लोगों के भूख से तड़पने की स्थिति एक तरफ है दूसरी तरफ गोदाम भरे हैं। यानि कि गोदाम भरे हैं और पेट खाली हैं इसका सबसे बड़ा कारण जो मैं समझ पाया हूं तो मैं तो पहले ही कह चुका हूं कि मैं तो मूर्खों के बीच रहा हूं और मूर्खों की भाषा जानता हूं। मेरा जीवन मूर्खों के बीच ही कटा है लेकिन शायद ज्ञानी लोग इस बात को नहीं समझ पाते हो सकता है उस बात को मूर्ख समझ लें इस बात को भी कोई कैसे साबित करेगा। तो मेरा ये कहना है कि यदि आप सबकी स्वतंत्रता को सुनिश्चत करना चाहते हैं तो एक व्यक्ति की स्वतंत्रता चाहे वो कितना ही प्रतिभावान क्यों न हो, चाहे वो कितना ही ज्ञानी क्यों न हो, चाहे वो सारी विद्याओं का कितना ही जानकार क्यों न हो लेकिन उसके अधिकार की कोई सीमा होगी कि नहीं। आज की व्यवस्था, आज की स्थिति में व्यक्तिगत स्वतंत्रता की कोई सीमा स्वीकार नहीं करती। कोई व्यक्ति अपनी आवश्यकताओं से पता नहीं कितना गुणा अधिक संग्रह करके रखता है तथा उसके लिए आपके कानून, आपके नियम उसे मान्यता प्रदान करते हैं आप जरा निरीक्षण करके तो देखिए कि आपने इस मान्यता को देकर

अपना ही अहित नहीं किया है बल्कि सबका अहित किया है तथा यही खतरा पूरी मानवता के लिए खतरा बना हुआ है। इसलिए मैं इस नियम के लिए कहूंगा कि आप लोग लालच पर अंकुश लगाइए और एक व्यक्ति के न्याय के आधार पर अधिकारों की सीमा का निर्धारण कीजिए। यदि आप सबकी स्वतंत्रता पाने का हक समान मानते हैं और उसमें सभी जीवों को ध्यान में रखकर बात करते हैं तो एक व्यक्ति के अधिकार की अधिकतम सीमा न्याय के आधार पर, बराबरी के आधार पर मेरी समझ में औसत सीमा तक होनी चाहिए। इसलिए जो भी आदमी औसत सीमा से अधिक संग्रह करता है आपको उसकी प्रतिभा की रक्षा करते हुए उसे हतोत्साहित करना होगा। पहले भी कुछ लोगों में ये बात प्रसिद्ध हो चुकी है कि मैं अमीरी रेखा बनाने की बात करता हूं। मैं स्पष्ट रूप से ये बात कह रहा हूं कि एक व्यक्ति के अधिकार की अधिकतम सीमा के निर्धारण के बिना न हम अपने आपको बचा पाएंगे, न प्रकृति को बचा पाएंगे न ही आज हमारे सामने जो पर्यावरण का भीषण संकट उपस्थित हो गया है ना ही हम उसकी रक्षा ही कर पाएंगे। आपको न्याय के अधिकार पर औसत साधनों को रखने का अधिकार इस असंग्रह को आपको स्वीकार करना होगा। मेरी समझ में दुनिया का कोई भी मनुष्य जिसमें आप शासकों की बात तो छोड़ ही दीजिए, अर्थशास्त्रियों की बात छोड़ दीजिए दुनिया का कोई ऐसा मनुष्य नहीं है जिसने संग्रह के ऊपर लगाम की बात को बहुत अधिक महत्वपूर्ण मानते हुए उसकी बात न कही हो। आज की स्थिति में सबसे बड़ा दोष ये है कि एक व्यक्ति के संग्रह की कोई सीमा नहीं है और उस प्रकार की जो असंग्रह की प्रवृति है उसे बढ़ावा देने वाले अनेक अधिकार हैं, यदि आप उनपर नियंत्रण लगाएंगे और वितरण को प्रस्तुत करेंगे। अर्थात जब प्रकृति के सभी साधनों पर सबका समान अधिकार है तो फिर उनका रूपांतरण करने से आपके सुखी होने के लिए जो कुछ भी सरंचना की उससे मिलने वाले सुख में सबका लाभ क्यों न हों। यदि आपने उसका वितरण ठीक से किया होता तो आज ये भीषण विसंगति न होती और इसलिए मैं अपनी बात वितरण पर ले जाकर खत्म करता हूं कि औसत सीमा से ज्यादा संपत्ति पर ब्याज

की दर से कर लगना चाहिए क्योंकि वह औसत सीमा से ज्यादा संपत्ति के लिए समाज का दोषी होता है। ये केवल संपत्ति कर से होने वाली आय है ये पूरे समाज की सामूहिक आय है इसलिए इसका वितरण सब लोगों में होना चाहिए और इससे जो पर्यावरण का संकट हो रहा है जो बिल्कुल ही बेलगान लोभ की प्रवृति है इसपर अंकुश लगेगा और जो परस्पर टकराव की स्थिति बन रही है अनेक समस्याएं खड़ी हो रही हैं उनका समाधान भी होगा ये कहकर ही मैं अपनी बात समाप्त करता हूं।

वीरेन लोबो : मैं अपनी अंतिम बात सीमित शब्द में रखूंगा। उसमें एक बात जो विमल जी ने कही उसके लिए छोटी सी सफाई दूंगी कि ये पोप लैटिन अमेरिका से हैं और वहां के जितने भी प्रीस्ट हैं वो अमेरिका साम्रज्यवाद के खिलाफ संघर्ष कर रहे हैं। तो ये समझ रिफलेक्ट हो रही है वो इन चीजों से पहले से चल रहा है और दूसरा उनका व्यवहार अभी देखा जा रहा है उसमें जो बोल रहा है और जो खुद कर रहे हैं तो वो पूरा ढ़ांचा जो खुद कॉल कर रहे हैं जो आप बोल रहे हैं वो खुद बोल रहे हैं कि ये सब परिवर्तन इस ढ़ांचे से होना तब तक संभव नहीं है जब तक जनता खड़ी होकर संगठित नहीं होती तब तक कुछ संभव नहीं है। और दूसरी जो चीज है कि मैं इसको अलग–अलग जगह पर रख ही रहा हूं, मैंने इसे उड़ीसा में भी रखा था। वहां पर एक कम्पेन चल रहा है 'कैम्पेन टू कारपोरेट अब्यूज' जिसे सुभाष महापात्रा चला रहे हैं, उसमें विधिवत तरीके से एक केम्पेन हो जिसमें जनता शामिल हों। उसके बारे में कुछ चर्चा हुई जो विजय जी वो बोले उसी का ये उद्देश्य था कि पहले किशोर जी ने जो बात रखी उसको समझें फिर उसके इर्द–गिर्द जो विचार हैं फिर उसको सबके सामने परोसा जाए जो धर्म को मानने वाला हो और जो धर्म को न भी मानता हो और इसलिए इसको चुना है वो काफी कमपरेहेनसिव है। जैसे कि नागराज ने बताया कि कुछ जगह पर विवाद हो सकता है लेकिन जो मूल बिंदु हैं, जिसके आधार पर हमारा संघर्ष आगे बढ़ना चाहिए उसमें इन सारी चीजों का जिक्र है। तो ओंकार जी ने जो बताया वास्तव में मेरा व्यक्तिगत संघर्ष है वो उसको फ्लेग कर रहा था कि ये–ये बिंदु है कि काफी लोग

इसके ऊपर का नाम देखकर या पोप की शक्ल देखकर नहीं समझेंगे कि इसके अंदर क्या है तो उसकी जरूरत है। दूसरा आज की तारीख में भारत में जिस तरह के सवाल उठ रहे हैं जैसे कि ये रोहित वर्मला और इसी तरह से जो दूसरी बात उठ रही हैं उसमें सभी तरह से लोग किस तरह से जुड़ सकते हैं और किस आधार पर जुड़ सकते हैं ये जरूरी है। और सिर्फ यही बात नहीं है जब मैंने लिखा है तो मैंने कहा है कि मैं अपने आगे का जीवन भी इसी पर समर्पित करूंगा इसमें जो सिम्बोलिज्म भी है कि ये पोप फ्रांसिस है और मेरे पिताजी का नाम फ्रांसिस था। मैं अपने आगे का जीवन उसी के लिए समर्पित करूंगा।

विषय : 'बुवेन विविर' पर सेडेड संवाद श्रृंखला – जीवन का अर्थ तथा अर्थपूर्ण जीवन
स्थान : चन्द्रशेखर आजाद भवन, नई दिल्ली
तिथि : 7 फरवरी 2016
मुख्य वक्ता : रघु ठाकुर

रजनीकांत मुद्गल : आज हम सेडेड की ओर से 'जीवन का अर्थ और अर्थपूर्ण जीवन' श्रृंखला की अपनी तीसरी बैठक आयोजित कर रहे हैं। इससे पहले कि हम अपनी बातचीत शुरू करें मैं अपने वरिष्ठ साथी राजनाथ जी से आग्रह करूंगा कि वो आज की बैठक की अध्यक्षता करें। मैं आज के हमारे प्रमुख वक्ता श्री रघु ठाकुर जी से भी निवेदन करता हूं कि वो अपना स्थान गृहण करें। साथियों जैसे कि मैंने आपको बताया कि आज की हमारी बैठक 'जीवन का अर्थ और अर्थपूर्ण जीवन' श्रृंखला की तीसरी कड़ी है और हमारी योजना है कि हम इस कार्यक्रम को आगे भी चलाते रहें।

आज की बैठक का कार्यक्रम इस प्रकार से है कि पहले प्रमुख वक्ता 'जीवन का अर्थ और अर्थमय जीवन' पर अपनी बात रखेंगे और उसके बाद हमारा सबसे निवेदन रहेगा कि सभी साथी जिनके इस तरह के अनुभव रहे हों वो साथी तय समय सीमा के अंदर अपने विचार रखें। तो अब मैं निवेदन करता हूं कि सभी अपना–अपना परिचय दें।

रजनीकांत मुद्गल : मैं सेडेड के साथ जुड़कर काम कर रहा हूं।

राजनाथ शर्मा : मेरा नाम राजनाथ शर्मा है। मैं समाजवादी विचारधारा से काम करता हूं, बाराबंकी में रहता हूं और एक गांधी जयंती समारोह ट्रस्ट चलाता हूं जिसमें गांधीजी के विचारों का प्रचार–प्रसार का काम होता है।

रघु ठाकुर : मेरा नाम रघु ठाकुर है, मैं समाजवादी हूं।

राम कृपाण पचेरी : मैं सागर, मध्य प्रदेश से आया हूं। बुंदेलखंड, सर्वदलीय नागदेव संघर्ष मोर्चा में मैं प्रवक्ता हूं। माननीय रघु ठाकुर के नेतृत्व में वहां की बुनियादी सुविधाओं के लिए हम बर्षों से संघर्ष कर रहे हैं।

अजीत झा : मैं दिल्ली विश्वविद्यालय के कॉलेज में इतिहास पढ़ाता हूं।

विजय प्रताप : अभी लोकतांत्रिक समाजवादी पार्टी में हूं और वसुधैव कुटुम्बकम नाम का एक अन्तराष्ट्रीय संगठन बनाने की कोशिश में हैं जिनका मुख्य उद्देश्य मौजूदा कारपोरटी लोकतंत्र को स्वराज की ओर कैसे ले जाया जाए उसपर काम करता हूं और बाकी दक्षिण एशिया का लोकतंत्र के सवालों पर एक सोलिडेरिटी सेंटर को भी देखता हूं।

रवि भाटिया : मैं दिल्ली विशविद्यालय का रिर्टायर्ड प्रोफेसर हूं।

ब्रहमचारी अध्ययन : कार्यकर्ता हूं और आमतौर पर लोगों की सेवा में उपस्थिति रहता हूं।

अमर नाथ झा : मैं दिल्ली विश्वविद्यालय में इतिहास पढ़ाता हूं।

विजय शंकर मिश्र : मैं सत्यवती कॉलेज में पढ़ाता हूं।

मैहमूद : सेडेड

विजय लक्ष्मी : सेडेड

विक्रम सिंह : सामाजिक कार्यकर्ता

राजेन्द्र धापी :

महेन्द्र केसी : हेल्थ नेपाली मिशन का महासचिव हूं

विचित्र कपूर : मैं सच फाउन्डेशन में काम करता हूं।

जी.पी. मिश्रा : पत्रकार हूं।

विभोर जुयाल : सेडेड

पाटेश्वरी प्रसाद : चौथी दुनिया अखबार के लिए पत्रकारिता करता हूं।

रघु ठाकुर : 'जीवन का अर्थ और अर्थमय जीवन' इस विषय पर यदि आप किसी बापू को बुलाते तो बेहतर होता। परन्तु मुझे विजय प्रताप जी का प्रेम, उनका आग्रह और आदेश मानना पड़ा। जीवन का अर्थ और अर्थपूर्ण जीवन एक ऐसा विषय है जिसकी चर्चा करने से ज्यादा आदमी को अपने जीवन में अपनाना जरूरी है। दरअसल ये जीवन क्या है इस विषय पर हमारे धार्मिक ग्रंथों, मजहबों में भिन्न प्रकार की चर्चाएं मिलेंगी। और जीवन की निरन्तरता के बारे में चर्चा मिलेगी। परन्तु क्या जीवन का अर्थ इंसान का केवल जन्म लेना और जिंदा रहना है; क्या जीवन का तात्पर्य केवल जिंदा रहकर खाते–कमाते मर जाना है। या फिर जीवन का कुछ और भी अर्थ हो सकता है। मैं जीवन के अर्थ के संदर्भ में में ऐसा महसूस करता हूं कि जब तक किसी के जीवन का एक उद्देश्य न हो और उस उद्देश्य के प्रति व्यक्ति का समर्पण न हो तब तक जीवन का कोई अर्थ नहीं है और जिसे अर्थपूर्ण जीवन कहा जाए वह अर्थपूर्ण जीवन भी तभी संभव हो सकता है जब व्यक्ति अपने उद्देश्य के लिए लगातार समर्पित रहे। आजकल हम लोग जब कभी दार्शनिक बातों की चर्चा करते हैं तो कुछ लोग अध्यात्म की चर्चा करने लगते हैं और अध्यात्म के बारे में कई बार हमें कुछ ऐसे व्यक्तियों से भी चर्चा करने को मिली है जिनको देश, धर्म का ठेकेदार मानता है या फिर एकमात्र प्रवक्ता मानता है। एक जगत गुरू शंकराचार्य से हमारी मुलाकात अचानक रेल में हो गई तो उन्होंने अध्यात्म के बारे में चर्चा शुरू की। कई बार लोग यूं ही चर्चा में कह देते हैं कि साहब वो तो बहुत अधयात्मिक व्यक्ति हैं। कई बार लोग धर्म के गुरूओं को आधयात्मिक व्यक्ति कहते हैं। परन्तु अध्यात्म का अर्थ क्या है मैं उसे अभी तक समझ नहीं पाया हूँ या फिर उससे सहमत नहीं हो पाया हूं। जिस अध्यात्म की परिभाषा मैं अपने मन और दिल से

करता हूं उसपर उनकी सहमति मेरे सामने तो होती है लेकिन पीठ पीछे वो भी उससे सहमत नहीं हो पाते क्योंकि अध्यात्म की चर्चा या अध्यात्म के शब्द का संबंध हमारे मुल्क में खासकर नहीं है और क्योंकि मेरा रहना यहीं भारत में ही होता है; बाहर का जिम्मा हमारे विजय जी के पास है। तो आमतौर पर लोग किसी बात को धार्मिक पक्ष की ओर जोड़कर देखते हैं, धार्मिक रूप में देखते हैं। मुझे ये महसूस हुआ कि यदि समाजवाद की कोई आधार बुनियाद है तो वो अध्यात्म है तो अध्यात्म शब्द का अर्थ ये है कि आदमी अपने मन का, अपनी आत्मा का इतना विकास करे कि वो अपने–आपको विश्व में समझे और विश्व में अपने–आपको समझने लगे। जब विश्व के साथ एकाकार होने की प्रक्रिया उनके दुख, उनकी तकलीफ, उनके दर्द, उनकी पीड़ा उसके साथ एकाकार होने की जो प्रक्रिया है मेरे ख्याल से यही आधात्यम है और जो व्यक्ति इसे महसूस करने लगे वही आध्यात्मिक हो सकता है। तो इस अर्थ में यदि अध्यात्म को माना जाए तो जो व्यक्ति अध्यात्मिक होगा वो समाजवादी होगा ही होगा क्योंकि ये एक प्रकार की व्यवस्था है। जीवन को जीने के बारे में और अध्यात्म के बारे में कई चीजों, घटनाओं की चर्चा इसमें हो सकती है। हमने उनसे पिछली दो घटनाओं के बारे में एक सवाल किया। एक घटना केरल के पास की थी कि वहां एक व्यक्ति होटल में खाना खाने गया और उसने होटल से बढ़िया खाना मंगवाया लेकिन वहीं बाहर से उसे दो बच्चे देख रहे थे जिनके लिए वो खाना बहुत आकर्षक था, बहुत लालच वाला था क्योंकि जाहिर सी बात है वो भूखे रहे होंगे। तभी उसकी नजर उन बच्चों पर पड़ी उसने उन्हें बुलाया और पूछा कि आप लोग क्या खाना चाहते हैं तो उन्होंने कहा कि हम यही खाना चाहते हैं तो उसने उन बच्चों को खाना खिला दिया। उसके पास शायद उससे ज्यादा पैसे नहीं थे इसलिए उसने खाना नहीं खाया और होटल के मालिक तथा बहरे को कहा कि बिल ले आओ तो जब वो बिल लेकर आए तो उस बिल पर लिखा था 'इंसानियत का कोई मूल्य नहीं है'। अर्थात उस होटल के मालिक ने भी उससे पैसे नहीं लिए। अब मैं समझता हूं कि इससे बड़ा आध्यात्म क्या हो सकता है यहां तो एक व्यक्ति है जो भूखा है जो खाना खाने बैठा

है जो भूखा है जो उसके पास पैसे की इतनी सीमा है कि वो दूसरे को खिला नहीं सकता है लेकिन फिर भी भूखे बच्चों की भूख को मिटाने के लिए वो अपने आप को भी भूखा रखने को तैयार है। तो वो व्यक्ति है दूसरे के दर्द को अपना समझ रहा है और वहीं दूसरी ओर होटल का मालिक है जो उस व्यक्ति की मानवता को उसी मानवीयता के भाव से देख रहा है और उसे देखकर उसके बिल की कोई कीमत नहीं ले रहा। तो मैं समझता हूं कि जीवन मे आधात्यम केवल शाब्दिक चर्चा का विषय नहीं ये कर्म का विषय है, ये जीवन को जीने की शैली का विषय है और जीवन का अर्थ तभी कुछ हो सकता है या अर्थपूर्ण जीवन तभी हो सकता है जब व्यक्ति के जीवन में कुछ बुनियादी मूल्यों के प्रति समर्पण हो, उनका अपने कामों में इजहार हो तथा उन बातों को लेकर वो उनपर अम्ल करें। जिन लोगों ने दुनिया में अर्थपूर्ण जीवन जिए हैं लोग उन्हीं को याद करते हैं। अर्थ के लिए जीने वाले को कोई याद नहीं करता है। अर्थ के लिए जीने वाले तो बहुत लोग हैं जो पैदा होते हैं और चले जाते हैं। स्वामीविवेकानंद ने एक बार कहा, उनको किसी व्यक्ति ने शिकायत की कि ये अमुक–अमुक व्यक्ति वहां मदद करने के नाम पर बीमारों के लिए बहुत से काम कर रहे हैं। उन्होंने कहा कि वही सबसे अच्छा काम कर रहे हैं, सबसे अच्छा धर्म का काम तो वही कर रहे हैं। हम सब तो कीड़े–मकोड़े हैं जो कीड़े–मकोड़ों की तरह आए और चले जाएंगे लेकिन जो व्यक्ति दूसरों की इतनी चिंता कर रहा है वही सबसे बड़ा धर्म है, वही सबसे बड़ा दर्शन है। तो जीवन का अर्थ है केवल अपने अकेले के जीवन को बचाना नहीं है जीवन को जीने का जो अर्थ है वो अपने से ज्यादा दूसरे के जीवन को बचाने का है। और भले तात्कालिक रूप से ये लगता हो कि अर्थप्रधान युग में स्थितियां बदली हैं जिसके लिए लोग चिंता नहीं कर रहे हैं लेकिन मैं आशवस्त हूं कि इन बातों की चिंता लोगों को करनी पड़ेगी। ये बात सही है कि आज भी कुछ प्रभाव पैसे का ज्यादा हुआ है जिनको हम सामाजिक मूल्य कहते हैं उसमें बहुत कमी आई है, बहुत गिरावट हुई है। जिनको वैचारिक मूल्य कहते हैं उसमें गिरावट आई है, कमी आई है लेकिन दुनिया में कुछ ऐसी घटनाएं मिलती

हैं जिनसे ऐसा महसूस होता है कि न केवल भारत में बल्कि भारत के बाहर भी कहीं–न–कहीं लोग अपने जीवन का अर्थ खोजने के प्रयास कर रहे हैं या फिर जाने–अनजाने उनको जीने का भी प्रयास कर रहे हैं। अभी हमने आपको एक घटना केरल की बताई। और जिसका जिक्र हमने शंकराचार्य जी को किया।

दूसरी घटना हमें अखबार या पत्रिका में पढ़ने को मिली। वो अमेरिका की घटना है कि अमेरिका में एक लड़की की शादी हुई और उसके बाद शादी का समारोह था। तो शादी समारोह के लिए बड़ी तैयारी की गई थी, उसके लिए किसी होटल में खाने का इंतजाम किया गया लेकिन उस होटल के पास में जो झुग्गी–झोपड़ी थी। वहां के बच्चे होटल के कांच से देख रहे थे अंदर कुछ पार्टी होने वाली है उस लड़की ने अपनी मां से चर्चा की कि ये शादी की पार्टी को कैंसल करके इन बच्चों को ही पार्टी दे दो। उसकी मां भी इस बात से सहमत थी फिर उसने अपने पति से बात करके पूछा कि यदि हम इस मैरिज पार्टी को कैंसल करके इन्हीं गरीब बच्चों को खाना खिला दें तो ज्यादा बेहतर होगा। फिर वो सब सहमत हो गए और फिर तकनीक के इस्तेमाल से उन्होंने सभी लोगों को सूचना दे दी कि मैरिज पार्टी कैंसिल कर दी गई है और जो पड़ोस के भूखे बच्चे थे उनको बुलाकर उनके साथ पार्टी की गई। तो समाज में एक ऐसी प्रक्रिया भी कहीं न कहीं पर चल रही है जो प्रक्रिया आज भी आशवस्त करती है कि लोग अपने जीवन को अर्थपूर्ण रूप से बदलने के लिए प्रयास कर रहे हैं या उसके प्रति चिंतित हैं और उसके प्रति प्रतिबद्ध भी हैं। इस घटना में तीन पक्ष थे एक तो उस लड़की का अपना फैसला था, उसके मन का भाव था और यदि उसकी मां ने भी इंकार किया होता तो फिर भला ये कैसे संभव था, उस लड़की के पति जिनके मन में बड़ा उत्साह रहा होगा कि भई आज हमारी शादी की पार्टी हो रही है, मेहमान आएंगे लेकिन एक साथ तीन लोगों के मन में समान भाव के साथ समान चिंता एक कहीं न कहीं इस बात को आश्वस्त करता है कि लोग जीवन के अर्थ को भिन्न रूप में देखने का प्रयास कर रहे हैं और जितना हम देश में कर रहे हैं उतना खर्चा तो आजकल लोग विदेशों में

भी कर रहे हैं। जो संपन्न कहलाते हैं वहां पर भी नहीं कर रहे हैं। क्योंकि संपन्नता पेट तो भर सकती है, तिजोरी तो भर सकती है लेकिन संपन्नता जीवन की समस्याओं से मुक्ति नहीं दिला सकती है। संपन्नता जीवन की समस्याओं से मुक्ति नहीं दिला सकती है। संपन्नता कुछ व्यक्तियों की हो सकती है। इस घटना का उल्लेख अपने एक लेख में भी लिखा है कि जो लोग अमेरिका की ताकत से या फिर पैसे से बहुत प्रभावित हैं उनको भी मालूम होना चाहिए कि जिस प्रकार से हिन्दुस्तान में किसी बड़े शादी–समारोह के आस–पास बच्चे घूमते हैं और आजकल तो एजेंसी तैयार हो गई हैं जो खाना बचाने का काम करती हैं। यानि आदमी की सुरक्षा के बाद अब खाना बचाने के लिए भी एजेंसी की जरूरत पड़ रही है। तो ये जो विषम संपन्नता का परिणाम है कि एक बंबई यहां पर भी है। लेकिन जिस देश को लोग दुनिया का ताकतवर देश मानते हैं वो वहां भी गरीबी है। तो कुल मिलाकर एक ही अर्थ है कि व्यवस्था किस प्रकार की है वो व्यवस्था को बनाने वाले लोग किस प्रकार के हैं, उनकी चिंताएं किस प्रकार की हैं इससे जीवन का अर्थ जुड़ जाता है।

आज सुबह के समाचाार पत्रों में हमने अमेरिका के वर्तमान राष्ट्रपति ओबामा जी का टाइम पत्रिका में छपा लेख पढ़ा उन्होंने कहा कि मैं इस बात से बहुत चिंतित हूं कि राजनीति पर पैसे का प्रभाव बढ़ रहा है। अब ये बात की चिंता वो भी करने लगे हैं जिन्होंने इस बीमारी को सारी दुनिया में फैलाया है। कि जो पैसे का वाइरस जहां से शुरू हुआ तो पैसे के वाइरस को फैलाने वाले जो लोग हैं अगर वो लोग भी इसके प्रति चिंतित होने लगे हैं तो इसका अर्थ है कहीं न कहीं एक वैश्विक चिंतन भी शुरू हुआ है। मुझे लगता है कि जो बाजार का वैश्वीकरण का दौर आया ये दौर जल्दी ही जाएगा इस बार के वैश्वीकरण के स्थान पर विश्व में एक मानवता का दौर शुरू होगा और जो हम लोगों की विचारधारा के नजदीक होगा। हम तो जब अर्थपूर्ण जीवन के बारे में सोचते हैं कि अर्थपूर्ण जीवन क्या हो सकता है तो हमको जो हमारे आदर्शवाद लोग हैं वहीं नजर आते हैं। हमको कभी बुद्ध लगते हैं हालांकि सीमित अर्थों में। सीमित अर्थों में इसलिए

कि बुद्ध के ऊपर गांधी का जो सवाल है उस सवाल का उत्तर अभी हमें नहीं मिल पाता है। दरअसल समाज के प्रति काम करने की सोच होती है, जो नजरिया होता है उसे किस रूप में और किस अर्थ में देखा जाए। आज एक समस्या हम लोग आज के राजनैतिक जीवन में महसूस करते हैं कि लोग कहते हैं अभी हमारे पास साधन नहीं हैं यदि साधन जुड़ जाएं तो फिर हम राजनैतिक काम करेंगे। हम लोग के समाजवादी आंदोलन में भी ऐसे कई लोग आए हैं कि जो पहले सुरक्षा चाहते हैं फिर बाद में काम करना चाहते हैं। काम भी करना चाहते हैं लेकिन पहले सुरक्षा चाहते हैं। जैसे पहले हमारे बच्चे की नौकरी लग जाए तो फिर करेंगे, कोई और धंधा–पानी ठीक हो जाए तो फिर करेंगे। कुछ को ठेका मिल जाए तो करेंगे और कुछ काम न मिले तो आजकल एक नया काम मिला है 'एनजीओ' का तो कोई एनजीओ मिल जाए तो वो ही कर लेंगे। तो ये जो सुरक्षा के साथ राजनीति या सुरक्षा के साथ सामाजिक सेवा का जो भाव है इस भाव के साथ क्या कोई बहुत बेहतर परिणाम निकल सकते हैं या फिर अपने जीवन के जो दायित्व हैं जिनको आपने स्वीकार किया है या जिसके लिए आपने जिम्मेवारी ली है वो कोई ईमानदारी से पूरा करते हुए फिर आपके पास जो समय है उसे आप समाज के लिए लगाएं ये ज्यादा बेहतर है। दरअसल पैसे के राजनैतिक प्रभाव ने सभी जगह पर बहुत विचित्र असर डाला है और हम तो देखते हैं कि हमारे देश की राजनीति एक तरह से बंधुआ राजनीति हो गई है। एक तो राजनैतिक दलों के ढांचों में बंध चुके हैं क्योंकि राजनैतिक दलों के ढांचों में लोकतंत्र नहीं है। और आमूमन जो देश में राजनीतिक पार्टियां हैं वो किसी एक परिवार या व्यक्ति की ही बंधक सी बन गई हैं। सारा का सारा निर्णय करने वाले कुछ लोग ही होते हैं और वो ही निर्णय करते हैं। दूसरा जो राजनैतिक जमात है वो जमात भी राजनैतिक नेताओं की बंधुआ बन गई है और इस हद तक बंधुआ बन गई है कि राजनेता सत्ता में जाकर पैसा कमा रहा हैं और पैसा कमाने के बाद अपने कार्यकर्ताओं को पालते हैं। पैसा देकर काम करवाते हैं तो उनके पास वोट की राजनीति का अर्थ एक नौकरी की तरह से बन गया है। कोई भी इंसान नौकरी तो

फिर भी पेट के लिए करता है लेकिन जब पेट के साथ–साथ विचार के लिए पैसा जाने लगे तो फिर बहुत बदतर स्थिति होती है क्योंकि फिर इंसान से बेहतर जानवर हो जाता है। जानवर पेट के लिए करता है, वो पेट के लिए खाता है और जितना खाता है उससे ज्यादा समाज को देने की कोशिश करता है। गाय अगर चारा खाती है तो जो दूध देती है उसका इस्तेमाल समाज के लिए होता है और जो बच्चा पैदा करती है उस पैदा किए बच्चे के लिए थोड़ा सा दूध अपने पास रखती है बाकी हिस्सा समाज को दे देती है। बछड़े को शुरू में जो दूध पिला पाए वो पिला पाए जब तक थन में दूध न जाए और फिर बाकी बकाया समाज के पास चला जाता है लेकिन हम अपने आपको इंसान कहते हैं जो जीवन के बारे में सोचते हैं, चिंता करते हैं, बड़े–बड़े उपदेश देते हैं और हम लोगों का तो भाषण करने का स्वभाव भी है क्योंकि हमारा समाज खासकर के भारतीय समाज है जिसमें मैं अपना जीवन गुजार पाया हूं तो मैं देखता हूं कि हमारे समाज में पाखंड बहुत तेजी से व्याप्त है। उसका कोई अंत नहीं है। आदमी के करने, आदमी के बोलने, जीने में कोई सांमजस्य नहीं है। तो जो इंसान है वो तो जानवर से भी कुछ नहीं सीख रहा है। दरअसल ऐसा लगता है कि हम लोग बड़े जानवर हैं और हम जिसे जानवर कह रहे हैं वो हमसे बेहतर जानवर हैं। याने हम लोग अपने मोहल्ले के कुत्ते जैसे जानवरों के आगे झूठन डाल देते हैं वो भी रात में हमारी सुरक्षा करते हैं जबकि उन्हें कोई तनख्वाह नहीं, कुछ लाभ नहीं मिलता लेकिन फिर भी वो रात भर शोर करते हैं ताकि कोई हमारी चोरी न कर ले। लेकिन इंसान इस गिरावट तक पहुंच चुका है कि यहां पर जानवर भी उससे बेहतर हो गए हैं तो ये जो राजनैतिक स्थितियां हैं ये इस देश के लिए चिंता का कारण हैं तो अभी जो मैं देख रहा हूं कि देश की संसद में बड़े पैमाने पर वो लोग आ रहे हैं जो कि खुछ पैसे वाले लोग हैं, अरबपति हैं, खरबपति हैं। जब हम समाजवादी आंदोलन की चर्चा करते हैं, पुरानी घटनाओं की बात करते हैं तो फिर कौन व्यक्ति कितने रूपयों में चुनाव जीत गया। सेडुल से बदुबे का एक जिला है सेडुल जिला वहां से हम लोगों के संयुक्त समाजवादी पार्टी से एक जमाने में लोहिया

जी की पार्टी थी उसमें उस जमाने में एक आदिवासी जीते थे जिनका नाम ऊटिया था और वो साइकिल पर चलते थे। और लोग बताते हैं कि वो 700 रुपए के खर्च में चुनाव जीत गए। उस जमाने की जो सरकारी पार्टी थी जिसकी राज्य में सरकार थी, जिसकी केन्द्र में सरकार थी वो चुनाव हार गई पर ये स्थिति क्यों थी? वो इसलिए थी कि इंसान ने खुद को पैसे का दास नहीं बनाया था। आज की तारीख में आज जो स्थितियां बन रही हैं उसमें सारा का सारा पैसे का काम बढ़ गया है। राजनेता और कार्यकर्ता के संबंध भी पैसे के संबंध हो गए हैं और अब राजनीति मानवता की सीमाओं से हटकर प्रबंधन की बन गई है। जिनके पास पूंजी है, जिनके पास पैसा है वो बाजार में पूंजी से पैसा कमाते हैं और पैसा कमाने के बाद में राजनैतिक काम पर खर्च करते हैं। दफ्तर बने हुए हैं, आप कितने ही लोगों को जानते होंगे जो कि मेंबर ऑफ पार्लियामेंट हैं या सरकारों में हैं और उन्होंने दिल्ली में मकान लेकर रखे हैं। जहां से चुनाव लड़ते हैं वहां कभी आना–जाना नहीं होता है, कोई संबंध ज्यादा नहीं होता लेकिन वहां पर भी उन्होंने मकान लेकर रखे हैं। वहां पर कर्मचारी रखे हैं। चार कम्प्यूटर वाले हैं, चार फोटो वाले हैं और भी प्रकार के लोग हैं और जो आदमी आता है उस आदमी के आने के बाद उसकी छोटी–मोटी मदद कर देना। किसी की कोई जरूरत है, किसी की सिफारिश कर देना, किसी के लिए पत्र लिखवा देना आदि काम करते हैं। अगर क्षेत्र के लोग यहां दिल्ली में आते हैं तो उनको खाना फ्री मिलता है और वापसी का टिकट भी देते हैं। और जब चुनाव लड़ने जाते हैं तो फिर उनके लोग मोहल्लों–मोहल्लों में निकलते हैं और पूछते हैं कि आपका कौन सा बिल बकाया है? टेलीफोन का है तो लाओ हम जमा कर देंगे, पानी का है तो लाओ हम जमा कर देंगे, बिजली का है तो हम जमा कर देंगे। यानि कि सारी की सारी राजनीति को, सारे के सारी विचारों के साथ–साथ जो देश की आत्मा होनी चाहिए उस आत्मा को पैसे से खरीद लिया जाता है। ये जो विकृतियां आई हैं ये विकृतियां हमारे देश में अभी बहुत ज्यादा हैं लेकिन अब इसकी विश्व में भी चिंता होने लगी है इसीलिए हमने आपको ओबामा के लेख का उल्लेख किया वो इसलिए कि

अब अमेरिका भी इन चीजों से चिंतित होने लगा है। कहीं न कहीं ये बातें उनको भी परेशान कर रही हैं। ऐसे में हम जिस अर्थपूर्ण जीवन को खोजना चाहते हैं उसके लिए हमको अपने उन आदर्शों को खोजना होगा जिन आदर्शों के लिए हम लोग चिंता करते हैं वो इसलिए करते हैं जिन्होंने जीवन में उनका इस्तेमाल हर क्षण, अपने समाज के लिए और देश दुनिया के लिए किया है। हम लोग महात्मा गांधी, बुद्ध की चर्चा करते हैं। मैंने गांधी की चर्चा थोड़ी सी की थी कि गांधी जी ने एक सवाल पूछा और कहा कि मैं बुद्ध को बहुत महान मानता हूं लेकिन कभी उससे बात हो पाती तो मैं उससे सवाल पूछता कि आपने लोगों को काम करना क्यों नहीं सिखाया? जो व्यक्ति बुद्ध संत बन गया वो व्यक्ति कुछ काम नहीं करता है वो केवल एक प्रकार से समाज के खाने पर जिंदा है। कहीं वो मांगकर खाने वाला हो सकता है, किसी और मजहब में उसका स्वरूप किसी और प्रकार का हो सकता है पर कुल मिलाकर वो कर्म नहीं करता तो क्या बिना कर्म किए खाना ये क्या समाज के लिए आदर्श हो सकता है? गांधी ने तो ये भी कहा कि अगर कोई व्यक्ति बिना परिश्रम के खाता है तो वो चोरी करता है। और उसके लिए उन्होंने पुराने धार्मिक संदर्भों का उल्लेख करके ही कहा। तो इंसान को अपने जीवन में समाज के प्रति चिंता करना उसके साथ–साथ अपनी आजीविका का ईमानदार साधन करना। नंबर एक हमारे आर्थिक साधन वो हों जो हमारे मस्तिष्क को, हमारे विचार को गुलाम न बना दें। नंबर दो हमारे आर्थिक साधन वो हों जो ईमानदारी के साधन हों जिनसे समाज में धाक पड़ सके। और अगर आर्थिक साधन हमारी तरह पर्याप्त नहीं हैं तो फिर जरूरी नहीं है कि हर आदमी पूर्णकालिक बन जाए। व्यक्ति अपना काम करते–करते जो समय दे सकता है वो समय दे एक राजनैतिक व्यक्ति की ये परिभाषा होनी चाहिए। महात्मा गांधी ने इस प्रकार के प्रयोग अपने जीवन में शुरू किए थे और इन प्रयोगों की जितनी चर्चा कर सकते हैं उनको हम सभी जानते हैं। आज हम इसलिए गांधी को आदर्श रखते हैं क्योंकि गांधी ने अपने हर क्षण को जिया है, हर पल को जिया है और जीवन के कितने अर्थ हो सकते हैं और किस प्रकार से उनकी

सार्थकता हो सकती है इस बात को उन्होंने अपने कर्म से, अपने आदर्श से सिद्ध कर दिया है। हमने अपने कमरे में गांधी जी की एक फोटो रखी है जो हमको बड़ी मुश्किल से मिल पाई है। उसमें गांधी जी साइकिल चला रहे हैं और एक व्यक्ति पीछे बैठा है। जब हमको वो फोटो मिली तो हमने उसके बारे में पूछा कि ये फोटो किसकी है, कैसे मिली और उनके साथ कौन हैं? जिनके पास वो फोटो थी उन्होंने बताया कि एक बार गांधी जी को किसी गांव में शाम को सभा करने जाना था। उस समय महादेव भाई जिंदा थे वो गांधी के साथ ही रहते थे। तो उस दिन गांधी जी प्रार्थना सभा में सवालों के जवाब दे रहे थे जिसमें उन्हें विलम्ब हो गया और वहीं किसी दूसरी सभा का समय होने वाला था तो वहां समय पर पहुंचने के लिए गांधी जी ने साइकिल ली और साइकिल चलाई और उनको पीछे बिठाया ताकि वो समय पर सभा में पहुंच जाएं। इससे समझ में आता है कि समय की पाबंदी का जीवन के साथ कितना बड़ा रिश्ता है। हम लोग हैं अपने कई कारणों के चलते जो समय बर्बाद करते उसका कितना बड़ा अर्थ है। यदि एक व्यक्ति नौकरी करता है और उसका नौकरी का समय आठ घंटे होता है। एक घंटा उसके चाय–पानी का छोड़ दें तो सात घंटे होते हैं। यदि उसकी एक दिन की तनख्वाह मोटा–मोटी दो या तीन हजार रूपए मिलती है। तो एक घंटे का अर्थ होता है कि इस देश का करीब–करीब तीन सौ रुपया तो ऐसें में यदि वो व्यक्ति समय बर्बाद करे तो अनुमान लगा सकते हैं देश का कितना नुकसान होगा। तो हम लोग जो समय को बर्बाद करते हैं, इंतजार करते हैं कोई देर से आता है, कोई मंत्री या कोई बड़ा आदमी। तो हम केवल अपना की समय बर्बाद नहीं कर रहे इसके साथ–साथ हम दो और विकृतियों में उलझ जाते हैं। एक तो कि जो आर्थिक पैदावार की संभावना हो सकती है उसका समय जा रहा है। यदि एक व्यक्ति के एक घंटे की कीमत 300 रुपया है और आपने उसके घंटे–दो घंटे बर्बाद कर दिए तो आपने देश के लिए 600 रुपये का नुकसान पहुंचाया है। दूसरा, इंसान–इंसान के बीच का फर्क जो आदमी के बीच में तानाशाह पैदा होता है वो जो फर्क है वो भी यहीं से शुरू हो जाता है। कौन बनाता है

तानाशाह? तानाशाह बनाने में कहीं न कहीं अगर सेना की, सत्ता की भूमिका है तो तानाशाह को बनाने में आदमी की, समाज की अपनी भूमिका होती है। जब कोई समाज किसी को तानाशाह स्वीकार कर लेता है तभी कोई तानाशाह बनता है। अगर समाज किसी को तानाशाह स्वीकार न करे तो कोई तानाशाह नहीं बन सकता। अभी पिछले दिनों दुर्भाग्य से कहिए कि हमें पत्रकारों के एक कार्यक्रम में निमंत्रण मिला जहां हमें जाना था। पिचोरी जी हमारे साथ थे, सारे पत्रकारों का समूह था जिसमें कोई 150–200 पत्रकार रहे होंगे तो वहां पर एक मंत्री को आना था। तो हम लोग वहां तय समय पर पहुंचे। इस देश में मंत्री तो माननीय होते हैं तो सबको ही मालूम था कि मंत्री जी थोड़े समय में पहुंचने वाले हैं तो हमने 5–7 मिनट इंतजार किया। और जिन लोगों ने हमें निमंत्रण देकर बुलाया था वो हमारे बहुत आत्मीय लोग हैं जो हमारे साथ काम भी करते हैं और सबको हमसे प्रेम भी है। लेकिन जब हमने देखा कि 10 मिनट हो गए और मंत्री जी नहीं आए तो हम लौटकर चले आए। क्योंकि माना कि वो मंत्री हैं और उनका समय कीमती है पर हम ऐसा भी नहीं मानते कि हमारा समय फालतू है। उनका समय कीमती और हमारा समय फालतू ऐसा तो नहीं हो सकता बल्कि उनके पास तो साधन ज्यादा हैं वो तो काम जल्दी कर सकते हैं। हमारे पास तो साधनों का आभाव है तो हमारा समय तो और भी ज्यादा कीमती है। अब विजय भाई ने हमें आदेश दिया 28 तारीख को उस समय हम छत्तीसगढ़ में थे तो उन्होंने कहा कि आपको जो बोलना है उसे लिख लीजिए ताकि हम लिखकर सबको भेज देंगे। और हमने लापरवाही के तौर पर कहा कि हां हम लिख देंगे क्योंकि हमारी स्थिति ये नहीं है कि हम लिख पाएं। हम जिस काम को कर रहे हैं, जो हम करना चाह रहे हैं और उसमें जितने सहयोगी होने चाहिए उनका जितना आभाव है उसके चलते कई चीजों को करना चाहते हैं पर नहीं कर पाते हैं जैसे कि हमें यात्राएं करनी होती हैं और वो बहुत संकटपूर्ण हो गई हैं और हम लोगों की यात्रा तो बहुत संकटपूर्ण है। हमें याद है कि आज से 30 साल पहले जब मोबाइल इतने नहीं चलते थे और हमारे पास थे भी नहीं तो उन दिनों हमारा संवाद अक्सर पत्रों से होता

था। औसतन में 30–40 पत्र रोज डाक में डालता था। सारा का सारा पत्राचार मैं अपने रेलगाड़ी में करता था, दफ्तर में नहीं करता था। फिर उसके बाद के दिनों में हमने कुछ अपने लिखने–पढ़ने का काम भी रेल में शुरू कर लिया। अभी एक–डेढ़ साल से मैं ये देख रहा हूं कि आज ये स्थिति हो गई है कि रेल में बैठकर पत्र लिखना भी संभव नहीं है, कुछ पढ़ना भी संभव नहीं है। विजय भाई के आदेश का हम पालन नहीं कर पाए और एक तरह से असत्य भाषण में हमने कह दिया कि कर रहा हूं, कर रहा हूं। तो मैं आप सभी से इस माध्यम से क्षमा चाहूंगा कि हमसे क्रुटि तो हुई परन्तु व्यवहारिकता है कि हमें समय ही नहीं मिला। हां तो मैं कह रहा था कि समय की बड़ी सीमा है। हमारे कई बार मित्र लोग कहते हैं कि 'भई जन्मदिन किस तारीख को मनाना है' तो हम कहते हैं कि भाई जन्मदिन नहीं मनाना चाहिए। क्योंकि जब आप जन्मदिन मनाते हैं तो आप अपनी घटती उम्र को ज्यादा याद करते हैं। आप अगर जन्मदिन मनाएंगे और लोग खुश होंगे कि साहब आप 80 साल के हो गए हैं। परन्तु आपके मन में जरूर चिंता आएगी कि दो–चार साल में पता नहीं क्या हो जाएगा। तो ये हम लोग उस अंत की और ज्यादा सोचने लगते हैं। आज बाजार ने कई प्रकार को विकृतियां पैदा की हैं और बाजार ने क्रम की संस्कृति को बिगाड़ने का काम शुरू किया है। बाजार ने सारी की सारी संस्कृति को उपभोग की संस्कृति बना दिया है। क्योंकि बाजार को तो उससे ही लाभ होता है, बाजार का जीवन तो उसी से चलना है। आजकल एक नया दौर चल पड़ा है वो ये है कि आदमी शादी की 55 वीं या 60 वीं सालगिरह बना रहा है। अब कुछ पुरानी परंपराएं थीं जो अच्छी नहीं थी परन्तु उसमें जिन लोगों के माता–पिता जिंदा नहीं होते थे तो वो उनकी वरसी मनाते थे कि भई उन्हें साल में एक बार याद कर लिया। वो भी अच्छी परंपरा नहीं थी माता–पिता को याद करने के लिए बरसी मनाएं, किसी की मृत्यु के बाद तेरहवीं करें ये कोई अच्छी परंपरा नहीं हैं बल्कि इनको भी एक प्रकार की विकृतियां ही मानकर चलना चाहिए। पर अभी बाजार ने एक नया उत्साह पैदा कर दिया है और छोटे–छोटे कस्बों में जिनके पास पैसा हो गया है तो वहां पर बूढ़े–बूढ़े लोग,

उम्रदराज लोग जो हिन्दू धर्म की चर्चा करते हैं और हिन्दू दर्शन क्या कहता है कि चौथापन वाणप्रस्थ के लिए है। आपको तमाम चीजों से निवृत होकर और दुनिया को छोड़कर कहीं पर चिंतन–मनन के लिए जाना चाहिए। परन्तु ये जो बाजार ने नई संस्कृति पैदा की है इसने इंसान के मन में नई भोग की, इच्छा की, लालच की इतनी चीजें पैदा कर दी हैं कि वो अब वाणप्रस्थ नहीं जाना चाहता अब तो वो ये चाहता है कि कोई ऐसी दवाई निकल जाए कि वो 80 साल में भी जवान हो जाए तो वो उसके लिए भी वो तैयार बैठा हुआ है। उनकी पुनः शादी का आयोजन होता है, अखबार में विज्ञापन छपते हैं कि इन बूढ़े–बूढ़ी को रथ पर दूल्हा–दुल्हिन की तरह बिठा देते हैं। हमारे कोई बुजुर्ग साथी लोग हैं उनका भी मन में ऐसा कोई सपना हो तो मेरी बात का बुरा मत मानना लेकिन जो बात चुभती है वो मैं कह रहा हूं कि इन बातों ने समाज को एक प्रकार से भोगवादी समाज बना दिया है। तो त्याग और भोग में विसंगति ये 36 का आंकड़ा है। त्याग की संस्कृति और भोग की संस्कृति दोनों अलग है। भोग की संस्कृति पूंजीवादी संस्कृति है। कर्मविहीनता की संस्कृति है। जबकि त्याग की संस्कृति ये सही मायने में भारतीय संस्कृति है, सही मायने में आध्यात्मिक संस्कृति है और ये समाजवादी संस्कृति है। तो ये जो जीवन का फर्क है जैसे कि मैंने कहा कि गांधी ने बुद्ध के बारे में सवाल उठाया कि उनसे पूछते कि आपने लोगों को कर्म से क्यों मोड़ा। ठीक है कि आप लगातार एक प्रकार का अच्छा जीवन जीने का प्रयास कर रहे हैं पर कर्म के साथ रिश्ता क्यों नहीं है अर्थात कर्म के बिना आपका रोटी खाना भी अपराध है। तो इसलिए गांधी ने अध्यात्म और कर्म को साथ जोड़ने का प्रयास किया था। हम लोगों के जो भी समाज के, जीवन के आदर्श हुए जिन्हें हमें मानते हैं वो जयप्रकाश जी हों, लोहिया हों, आचार्य नरेन्द्र देव हों। इनको इसीलिए याद करते हैं क्योंकि इन्होंने अपने जीवन को अर्थपूर्ण तरीके से जिया है यदि अर्थपूर्ण जीवन नहीं जिया होता तो लोग आज इनको याद क्यों करते। जो लोग तात्कालिक तौर पर सत्ता के शीर्ष पर होते हैं वो जितने दिन सत्ता होती है उतने ही दिन वो जीवित होते हैं। वो सत्ता के जाते ही चले जाते हैं पर कर्म की जो

चमक है, अर्थपूर्ण जीवन की जो चमक है ये तो निरंतर प्रकाशित होने वाली है और निरंतर प्रकाश देने वाली है तो अर्थपूर्ण जीवन पर हमें इन सारे सवालों पर सोचना चाहिए। हर व्यक्ति को ये प्रयास करना चाहिए कि हम लोग अपने जीवन का अर्थ खोजें। धर्म के बारे में हमारे यहां पर कई परिभाषाएं हैं; तुलसी की धर्म की परिभाषा अलग है। तुलसी ने अपनी परिभाषा दी उन्होंने अपनी चौपाई में कहा 'पहले तो धर्म निभाई, परपीड़ा सबमें आजमाई'। गांधी ने तो कहा कि 'सत्य ही ईश्वर है'। तो धर्म के बारे में लोगों की अपनी–अपनी परिभाषाएं हैं और अपने–अपने ढंग से लोग उस धर्म को देखने का काम करते हैं। प्रयास करते हैं पर समाज में कुछ लोग जो अच्छी चीजों को लाने वाले, जो बदलाव को लाने वाले लोग होते हैं उनका धर्म क्या होता है। एक धर्म की परिभाषा कृष्ण ने की। उन्होंने धर्म का जिस तरह से इस्तेमाल किया और जो मैं समझ पा रहा हूं कि उन्होंने धर्म को स्वधर्म में बदल दिया और बहुत हद तो उन्होंने उसे स्वभाव में जोड़ दिया कि आपका जो स्वभाव है आप उसके अनुकूल करें यही आपका धर्म है तो एक सीमित अर्थ में ये बात हो सकती है। इस अर्थ में कि जिस व्यक्ति को जो काम करना है वो अपने काम को परिपूर्णता के साथ करने का प्रयास करे। यदि मैं विद्यार्थी हूं तो मेरा धर्म है कि विद्यार्थी के रूप में बेहतर काम करूं। यदि मैं कहीं पर कोई काम कर रहा हूं तो मेरा ये धर्म है कि मैं उस काम को पूरी ईमानदारी के साथ अपनी पूरी क्षमता के साथ अंजाम दूं। परन्तु कृष्ण ने उसको स्वधर्म के साथ जोड़ा कि आपको अपना धर्म भी तय करना है वो इसलिए कि शायद उन्होंने ये महसूस किया होगा कि संपूर्ण समाज को एक सूत्र में बांधना कठिन है। व्यक्ति की कहीं न कहीं अपनी रुचियां, अपनी क्षमताएं होंगी जिनके आधार पर व्यक्ति अपने–आप का विकास करता है। तो ये जो फर्क है, ये जो सोच है। आज जिन लोगों की चर्चा मैंने की इन लोगों को हम इसलिए याद करते हैं क्योंकि इन्होंने अपने जीवन को उस ढंग से जिया कि जिसके चलते वो समाज के लिए कुछ दे सकते हैं। दरअसल आज हमारे मन में समाज में एक चिंता की स्थिति पैदा हो गई है। और हमको लगता है कि ऐसा समाज जिंदा कैसे

रहेगा। किसी भी कुंए में पानी तभी होता है जब उसमें कोई झर होती है। यदि कुएं में झर न हो केवल पानी निकाला जाए तो कितने दिन चलेगा? अगर बारिश का पानी नदी या नाले में न आए तो खाली पानी का इस्तेमाल ही हो तो वो कितने दिन चलेगा। तो जब तक आने का साधन भी साथ में न हो तब तक कोई चीज पूरी नहीं होती। आज हमारे समाज की ये स्थिति है कि हमारे समाज से सब लोग लेना चाहते हैं लेकिन उसे देना नहीं चाहते। जिस समाज में लोग केवल लेना चाहेंगे और देना नहीं चाहेंगे वो समाज बेहतर समाज कैसे बन सकता है। वो समाज अच्छा समाज कैसे बन सकता है। आज एक प्रकार की लूट की होड़ मच गई है, देने की बात कोई नहीं करता है। किसको क्या नहीं मिला इसकी चर्चा होती है लेकिन किसको क्या मिला इसकी चर्चा नहीं है। हम लोग राजनैतिक क्षेत्र में देखते हैं कि जो एक बार विधायक बन गया वो कहता है कि अरे मैं तो विधायक ही बन पाया हूं, मंत्री तो बन ही नहीं पाया हूं। जो मंत्री बन जाता है वो कहता है कि मुख्यमंत्री नहीं बन पाया। जो सांसद बनता है वो मंत्री नहीं बन पाया, मंत्री बन गया तो फिर दुख होता है कि प्रधानमंत्री नहीं बन पाए। तो निरंतर कुछ न कुछ पाने की होड़ है लेकिन हमें समाज को देना क्या है इसकी कोई सोच नहीं है। यदि देने की कोई भावना पैदा हो, तभी आपका जीवन अर्थपूर्ण जीवन हो सकता है और वही जीवन का अर्थ है। तो हम लोग समाज को कितना दे सकते हैं, कितना अधिकतम दे सकते हैं, कितना बेहतर दे सकते हैं इसके ऊपर समाज का स्थायित्व निर्भर करेगा, इसके ऊपर हमारे जीवन की जो सोच, दृष्टिकोण है वो हो सकता है।

आजादी के पहले जो लोग राजनैतिक जीवन में आए थे उन लोगों ने समाज को देने का काफी काम किया। आगे की नीतियों से जिम्मेदारियों से लाभावित्त हो सकते हैं पर एक व्यक्ति जो बेहतर नौकरी पा सकता है वो अपनी नौकरी छोड़कर आए और फिर कुछ कठिनाइयों के साथ समाज के लिए काम करे तो वो समाज को दे रहा है। आज के दौर में तो ये स्थिति है कि व्यक्ति बगैर पाए कुछ करना ही नहीं चाहेगा। तो एक

प्रकार की हर आदमी के मन में पाने की होड़ है। अभी चर्चा चल पड़ी है और जो चर्चा हम लोग सुनते रहते हैं जो कभी–कभी अखबारों में भी आ रहा है। कि साहब समाजवाद तो मर गया, अब इसका कोई भरोसा नहीं। और हम जानते हैं कि अभी विजय भाई कहेंगे कि अभी यहां पर समाजवाद की चर्चा क्यों कर रहे हैं। परन्तु मैं समाजवाद की चर्चा इसलिए कर रहा हूं क्योंकि मेरे और विजय भाई की जवानी की उम्र साथ–साथ बीती है। उसमें हमने यही सीखा था कि अर्थमय जीवन का यही अर्थ है कि त्यागपूर्ण जीवन, कुर्बानी का जीवन। और त्यागपूर्ण और कुर्बानी का जीवन किसके लिए है? वो खुद के लिए नहीं हो सकता है अपने लिए तो हर आदमी करता ही है ये नहीं है। पर जो खुद के लिए कुछ न करे और दूसरों के लिए ही करे वही सही मायने में अर्थमय जीवन है। तो कभी–कभी पुरानी फिल्में के गानों में वो सुनने को मिल जाता है अभी तो 40–50 साल से कोई फिल्म नहीं देखी पर पहले जब कभी किसी फिल्म का गाना सुनते थे उसमें था 'अपने लिए जिए तो क्या जिएं, तू जी जमाने के लिए'। तो जो अपने लिए जिएं उनका कोई अर्थ नहीं है और ये समाज भी उन लोगों को ही याद करता है जो दूसरों के लिए जिए। आज का ये कार्यक्रम उषा परिख जी की स्मृति में है। उनकी बनाई हुई संस्था के माध्यम से कार्यक्रम है। उषा जी हमारे समाजवादी आंदोलन की नैत्री थीं, समाजवादी साथी थीं और कई बार उनसे मिलने–जुलने का अवसर मिला। उनके मन में भी समाज के लिए कुछ करने की इच्छा थी। गांव की महिलाओं के लिए, वहां के लोगों के लिए करने की इच्छा थी और आज से 50–60 साल पहले किसी महिला का सामाजिक काम में जाना कितना कठिन था। अभी तो चीजें बदली हैं, कुछ व्यक्तियों ने बदला है, कुछ माहौल ने बदला है, कुछ शिक्षा ने बदला है, कुछ दुनिया ने बदला है पर 50–60 साल पहले कोई महिला समाज के काम के लिए निकले और उस जमाने की सारी परिपाटियों को तोड़कर उसके खिलाफ खड़ी हो ये कोई मामूली काम नहीं था। ये अर्थपूर्ण जीवन को जीने का तरीका था कि हमको समाज को कुछ देना है यदि इसमें जोखिम है तो है। जीजू बा फूले ने जोखिम लिया और बच्चियों को पढ़ाना

शुरू किया। तो विद्रोह हुआ कि यदि लड़कियां पढ़ जाएंगी तो फिर धर्म का क्या होगा क्योंकि धर्म तो कई लोगों को ज्ञान देने के बजाय कई बार अज्ञानी बनाने का माध्यम बन जाता है तो जिस दौर में वो थे जीजू बा फूले थी उस दौर में धर्म अज्ञानता का माध्यम बन गया था यानि कि ज्ञान देना अपराध और अज्ञान बनाकर रखना धर्म हो गया था तो जो धर्म के ठेकेदार थे उन लोगों ने लगातार हमला शुरू किया उनके ऊपर। उनके ऊपर पत्थर फेंके, उनका स्कूल जलाया, उनके ऊपर कीचड़ फेंका लेकिन एक व्यक्ति का साहस, एक व्यक्ति का संकल्प उस संकल्प को उन्होंने कभी डिगने नहीं दिया। एक दिन वो सड़क पर जा रही थी अपने स्कूल के लिए बच्चों को पढ़ाने तो किसी ने उनके ऊपर कीचड़ फेंक दिया तो फिर उस दिन से वो दो साड़ी साथ में लेकर जाती थीं कि तुम कल फिर फेंकोगे तो हम जाकर स्कूल में बदल लेंगे लेकिन पढ़ाना नहीं छोड़ेगे। तो हमें अपने संकल्प से डिगना नहीं है फिर चाहे जो हमला व्यवस्था के द्वारा या समाज के द्वारा हो उसका मुकाबला करना है, उसका रास्ता निकालना है ये तरीका होना चाहिए तो ये अर्थपूर्ण जीवन जीने के तरीके हैं।

समाजवाद की चर्चा हमने इसीलिए शुरू की थी कि हम लोग समाजवाद की चर्चा न करें तो हमारा जीवन भी अर्थमय जीवन नहीं हो सकता है इसलिए कि हम ये मानकर चलें कि ये व्यवस्था की कोई कल्पना है ये कल्पना दुनिया की सबसे बेहतर कल्पना है। अभी एक प्रकार का शुरू हुआ बाजारवाद का प्रचार और कहा गया कि 'भई ये तो समाजवाद खत्म हो गया है'। तो मुझे समझ में नहीं आता है कि 'भई समाजवाद खत्म कैसे हो सकता है'। आज हमने 'टाइम' मैगजीन में ओबामा का लेख पढ़ा जिसमें लिखा था कि समाजवाद खत्म हो रहा है। मुझे लगा कि ये समाजवाद खत्म कैसे हो रहा है जो व्यक्ति पूंजीवादी व्यवस्था के सबसे बड़े रक्षक और प्रचारक थे आज उनको महसूस हो रहा है कि आज इस व्यवस्था से हल नहीं निकलने वाला है। यदि अमेरिका के सीटेल शहर में एक कस्बे में ये स्थिति हो सकती है कि वहां एक होटल के पास में झुग्गी–झोपड़ी के भूखे बच्चे ये देख रहे हों कि हमें खाने को क्या मिलेगा तो फिर

पूंजीवाद की सफलता कहां है? जिन देशों में साम्यवाद आया हम उन देशों की स्थिति देख रहे हैं कि वहां पर साम्यवाद की व्यवस्था सफल नहीं है, जिन देशों में पूंजीवाद आया वहां की असफलताएं हमारे सामने हैं। तो अगर कोई व्यवस्था दुनिया के लिए बेहतर व्यवस्था हो सकती है तो आज भी वो व्यवस्था केवल समाजवाद की व्यवस्था ही हो सकती है और उस व्यवस्था के संकल्प को लेकर लोग चले थे इससे बेहतर कोई व्यवस्था नहीं है। हिन्दुस्तान में अक्सर जब हम लोगों से चर्चा करते हैं तो प्रबुद्ध लोग बोलते हैं अब प्रबुद्ध कई प्रकार के होते हैं एक प्रबुद्ध तो वो हैं जिसके मन में कुछ ज्ञाान हो और उसके साथ कुछ करने की प्रेरणा है, उसका तो भाव अलग होता है पर जिनके ऊपर बौद्धिक होने का ठप्पा होता है, एक सिक्का होता है, ये जो डिग्री है ये संस्थाओं द्वारा दी जाती है, संपन्न तबकों के द्वारा प्रचार के माध्यम से। तो जब वो लोग चर्चा करते हैं तो कहते हैं कि अब ये व्यवहारिक नहीं है। कई बार हमसे लोग बोलते हैं कि लोहिया व्यवहारिक हैं क्या? गांधी या जयप्रकाश व्यवहारिक हैं क्या? तो ये जो व्यवहारिकता और वास्तविकता का फर्क बताने का लोग प्रयास करते हैं ये क्या है? दरअसल ये एक प्रकार का पाखंड है जो अपने–आपको छिपाने का आवरण है। क्यों फर्क होना चाहिए इसमें व्यवहारिकता और वास्तविकता का क्या अंतर हो सकता है? समाजवाद कैसे मर सकता है? किस बात के लिए समाजवाद मर सकता है? आज जो तीसरी दुनिया मन में है उसके लिए दुनिया का हल क्या निकल सकता है। क्या इसका हल समाजवाद के अलावा कुछ निकल सकता है। जब लोहिया ने सप्तक्रांति की चर्चा की। सात क्रांतियां बताईं तो इन सातों क्रांतियों में दुनिया की करीब–करीब उस जमाने का जो समाज था उसकी जो विषमताएं थीं उन सारी विषमताओं को मिटाकर बराबर का समाज बनाने की कल्पना की। आर्थिक समानता, राजनैतिक समानता, लैंगिक समानता, रंग–भेद की समाप्ति, दुनिया से हथियारों की समाप्ति, दुनिया में एक बेहतर विश्व की कल्पना क्या इन कल्पनाओं से मुक्त कोई और बेहतर समाज बन सकता है। इसके आगे कौन हो सकता है। हां कुछ चीजें बढ़ी लोहिया के जमाने में लोहिया ने सप्त क्रांति की

चर्चा की थी अभी हम लोग कह रहे हैं अभी 11 क्रांतियों की आवश्यकता है इसलिए कि समय के हिसाब से नहीं चीजें उभरकर आती हैं जिनका हल खोजना समाज के लिए जरूरी होता है। और बेहतर शिष्य वही होता है जो गुरू के ज्ञान को आगे बढ़ाने का प्रयास करे और जो शिष्य गुरू के नाले के बांधने का काम करे वो समझिए कि गुरू का सबसे बड़ा दुशमन है क्योंकि विचार का प्रवाह तो लगातार चलना चाहिए। अब आज कुछ सवाल उभरकर आए हैं जैसे कि पर्यावरण और प्रदूषण का सवाल है। आज से पचास साल पहले जब लोहिया की मृत्यु हुई या लोहिया का जीवनकाल था उस जमाने में शायद ये समस्या इतनी गंभीर रूप से नहीं थी वरना अपने उन क्रांतिकारी साथियों को भी शामिल करते। आज पर्यावरण और प्रदूषण के सवाल को भी हमें इसमें जोड़ना होगा। आज मानव विकार के सवाल एक दूसरे ढंग से दुनिया में उभरकर आ रहे हैं उन्हें भी हमें देखना पड़ेगा। तो ये सवाल बड़े हैं तो इन सवालों के लिए हमें समझ बिठानी है लेकिन जो मूल चीज है समाजवाद की जो मूल आत्मा है कि इंसान–इंसान के बीच कोई फर्क न हो, एक बराबरी की व्यवस्था बने, एक समान समाज की व्यवस्था बने। अगर सुख हो तो सुख के सपने भी सबके हों और अगर दुख हो तो दुख भी सबका हो। जो एक कल्पना ऋगवेद ने अपने श्लोक में की। उसमें कहा गया है कि जो सूर्य का प्रकाश है ये प्रकाश सबका समान है। ऐसा न हो कि ये कुछ के हिस्से में जाए और कुछ के हिस्से में न जाए, ऐसा न बने। तो समाजवाद तो सही मायने में हमारे आदिकालीन सभ्यता का पर्याय है और समाजवाद तभी मिट सकता है जब समाज बंट जाएगा यदि समाज रहेगा तो समाजवाद भी रहेगा और जहां तक उसके सफल और असफल होने का सवाल है तो सफलता–असफलता कई चीजों पर निर्भर करती है। हम लोगों ने शुरू किया कि जीवन का अर्थ और अर्थपूर्ण जीवन अब ये चीजें व्यक्ति की सोच पर निर्भर करती हैं कि आप देखते कैसे हैं। कुछ लोग नकारात्मक तरीके से देखते हैं कि अब कोई समाजवादी जीत नहीं सकता है या समाजवाद जीत नहीं सकता है। वोट तो मिलना नहीं है, चलो हम भाजपा में चले जाएं शायद वहीं से जीत जाएं, चलो

हम कांग्रेस में चले जाएं शायद वहीं से जीत जाएं। कुछ बन जाएंगे तो जो सफलता की कसौटी या सफलता का उद्देश्य लोगों के दिमाग में है कि हमें क्या बन जाना है, हमें क्या हासिल कर लेना है? क्या कोई चीज हासिल कर लेना ही सफलता है? मैं समझता हूं कि सफलता की कोई बड़ी परिभाषा है तो मेरी राय में है कि जो व्यक्ति अपने जीवन को अपने जीवन के विचारों को छोड़े बगैर अगर मरने को तैयार हो तो वो सबसे बड़ी सफलता है। अपने विचारों के साथ जीना और विचारों के साथ मरना ही सबसे बड़ी सफलता है जो कि मैं समझता हूं। तो मेरी सफलता की परिभाषा एक अलग प्रकार की है और आज जो सफलता की परिभाषा है वो अलग प्रकार की है। आज भी हमारे कई मित्र लोग हमसे कहते हैं और विजय भाई भी कहते हैं कि आप बदलते ही नहीं हो, विजय भाई बड़े प्रयोगधर्मी हैं और मैं यथास्थितिवादी हूं। वो निरंतर नए प्रयोग के लिए तत्पर होते हैं और मैं निरंतर नए प्रयोगों में कमियां खोजता रहता हूं। इसके बाद भी ये लोकतांत्रिक भावना है कि हम लोगों का रिश्ता चलता रहता है और कहीं कोई फर्क नहीं पड़ता है जो उनको करना है उसकी छूट उनको रहती है और जो हमको करना है उसकी छूट हमें रहती है। कई बार वो हमसे पूछते हैं कि भई क्या विजय प्रताप और आप एक ही पार्टी में हैं तो मैं कहता हूं कि हां हम एक ही पार्टी में हैं। तो लोग पूछते है कि निभती कैसे है तो हम कहते हैं कि यही लोकतंत्र की खूबसूरती है कि कई सवालों पर राय भिन्न हो सकती है उसके बाद भी या तो हम आपकी राय बदलने का प्रयास करेंगे, सफल होंगे तो आप हमारे विचार अपना लेंगे और आप हमारे विचार बदल सकते हैं। और न भी कुछ कर पाएं तो साथ तो काम कर ही सकते हैं। तो जो समाजवादियों के साथ जो स्थिति आई है कभी मन में कमजोरी सी आई है ये कमजोरी क्यों आई है। ये कमजोरी जयप्रकाश या गांधी के मन में नहीं आई। ये कमजोरी लोहिया के मन में नहीं आईं और प्रयोग भी कब किए जाएं ये भी उस समय पर निर्भर करता है। प्रयोग का समय और काल भी अलग–अलग प्रकार का होता है जो प्रयोग रणनीति के तौर पर इंदिरा ने गैर कांग्रेसवाद में 1967 में किया क्या वो प्रयोग आज संभव है? आज

तो स्थिति ये है कि जो पार्टियां उस जमाने में हम लोगों के समानार्थी थी आज वो पार्टी सत्ता में है तो अब गैर कांग्रेसवाद कहां है? अब तो स्वरूप बदल गया तो आज तो वो प्रयोग संभव नहीं है। उस प्रयोग के लिए कोई कहे कि भई यही हमारा धर्म है लेकिन हो क्या गया है कि हमारे मुल्क में लोगों ने शब्दों के साथ खेलना शुरू किया है। साम्प्रदायिकता और धर्मनिरपेक्षता ये दो शब्द हैं जिन शब्दों को बाजार ने आपके सामने ऐसा प्रस्तुत कर दिया है कि सारा का सारा समाज दो वर्गों में बंट जाता है। अब जो देश के चुनाव हैं उसमें मतदाता के सामने विकल्प क्या हैं? सोच क्या है? कोई समस्या के आधार पर बेरोजगारी है, रोजगार है, काम है, धंधा है, पानी है खेती नहीं है। अब ये है कि एक के लिए चाहिए कि धर्मनिरपेक्षता का मतलब ये है कि ऐसी सरकार बने जिसमें भाजपा न हो और दूसरी सोच है कि एक ऐसी सरकार बने जिसमें हिन्दू वर्चस्व रहे या फिर हमारा वर्चस्व रहे। कुल मिलाकर जो वैश्विक पूंजीवाद है उसने ये खेल है और क्या है। जो हिन्दू और मुसलमान का खेल है ये खेल सबसे बड़ा दुनिया की पूंजीवाद का सरगंद है जिसने हिन्दुस्तान को यहां पर पहुंचाया और समाजवाद को या इस विचारधारा को कुछ क्षति हुई है तो वो क्षति हुई है; तो क्षति हुई है साम्प्रदायिक मानसिक विभाजन से क्योंकि फिर आर्थिक सवालों पर कोई चिंता नहीं, कोई सुध नहीं। उनके बारे में कोई सोचने को तैयार नहीं है। अब चुनाव आएगा तो मुसलमान भाई कहेगा कि भाजपा को हराना है तो चलो ये जीत सकता है इसे जिताओ। कसौटी ये नहीं है कि आप अच्छे हों या बुरे हों। कसौटी ये नहीं कि आप ईमानदार हों या बेईमान हों। कसौटी ये भी नहीं है कि आपके सिद्धांत पर कौन खड़ा हुआ है। कसौटी ये है इनको कौन हरा सकता है। दूसरी जो जमात है वो ये सोचती है कि इनको कौन हरा सकता है। तो जब कुल मिलाकर युद्ध का लक्ष्य कुछ न हो, कुल मिलाकर ये कि हराना है तो उस युद्ध का परिणाम क्या हो सकता है। तो आज जो स्थितियां बनी हैं इन स्थितियों में इन सवालों को सोचने का सवाल है और इससे कोई विचारधारा खत्म हो जाएगी, या मिट जाएगी ऐसा नहीं है। दूसरा जो समाजवादी आंदोलन के सामने परेशानी

आई है वो इसलिए भी आई है कि लोगों के मन कुछ कमजोर भी हैं और जो सत्ता की दलदल है इस सत्ता की दलदल में लोग फंसे हैं और ये फंसने वाले भी ज्यादा नहीं हैं। परंतु फिसलने वाले को ही व्यवस्था प्रतीक बनाकर पेश करेगी अगर किसी के लिए समाजवाद का विकृत रूप बताना हो तो वो लालू का नाम लेगा कि ये समाजवादी हैं। परिवारवाद को विकृत रूप बताना होगा तो मुलायम सिंह का नाम बताएगा कि ये समाजवादी हैं परंतु विजय प्रताप या फिर राजनाथ भाई का नाम नहीं लेगा। अजीत झा जी का नाम नहीं लेगा। और हमने तो शादी भी नहीं की और बच्चों का तो सवाल ही नहीं तो उनका नाम नहीं लेगा। जब कभी समाजवाद की बात आयेगी तो कहेंगे कि हां! देखो मुलायम सिंह का सारा घर चला गया राजनीति में। सारे हिन्दुस्तान के लाखों लोगों ने जिन्होंने अपना जीवन, जवानी सब कुछ इस आंदोलन के लिए लगा दिया है उन्हें कितने लोगों ने कहा कि कोई परिवार आया है। कितने लोग हैं जो ऐसे ही मरे जिनका कोई नाम लेने वाला नहीं है। परंतु व्यवस्था का एक तरीका होता है कि वो अपने प्रतिपक्ष की कमजोरियों को प्रतीक बनाकर खड़ा करती है ताकि विचार के ऊपर आघात हो जाए। तो समाजवादी विचार के ऊपर आघात करने का ये भी व्यवस्था का एक तरीका चला है। आज भी समाजवाद का भविष्य है और रहेगा ये कल्पना है, एक सपना है जिसका भविष्य रहेगा और ये हमपर निर्भर करता है कि हम इसको कितना सफल बना सकते हैं। जब भारतीय संविधान संसद में पेश हो गया और राजेन्द्र प्रसाद जी राष्ट्रपति थे और उन्हें हस्ताक्षर किए थे। और अंबेडकर साहब उसे पेश करने वाले थे तो वहां बड़ी चर्चा हुई कि संविधान में ये कमियां हैं, वो कमियां हैं, ये सफल हुआ कि नहीं होगा तो दोनों ने एक ही उत्तर दिया कि 'अगर सफलता होगी तो संविधान की है और यदि असफलता होगी तो हमारी है'। तो आज मैं एक समाजवादी के तौर पर कह सकता हूं कि यदि हम भी सफल हुए तो विचारधार की जीत है और यदि हम असफल हुए तो हमारी कमजोरी है। धन्यवाद।

विजय प्रताप : रघु भाई ने कई ऐसे रेफरेन्सेस दे दिए हैं जिससे कुछ गलतफहमी की गुंजाइश हो सकती है इसलिए मैं कुछ सफाई देना चाहता हूं। पहली बात तो ये कि मैं रघु भाई को यथास्थिति और जड़ नहीं मानता हूं बल्कि मैं तो रघु भाई को एक रेफरेंस प्वाइंट मानता हूं। जिस तरह से '77 के बाद पूरे देश में आपातकाल की स्थिति में हम लोगों की भूमिका थी। उस समय रघु भाई और हम लोग जेलों में थे। उस समय मध्यप्रदेश में रघु भाई कितने सम्मानित थे ये उन लोगों को पता होगा जो उन दिनों लगातार अखबार देखते होंगे। उस समय रघु भाई ने मध्य प्रदेश में जनता पार्टी में रहते हुए भी हिन्दुस्तव और आरएसएस के सवालों पर जितनी स्पष्टता से लोक शिक्षण का काम किया और खुद चुनाव न लड़ते हुए तमाम लोगों को सांसद, मंत्री आदि सब बनवाया; राज्य सभा में भेजा, लोकसभा के टिकट दिलवाए। उससे पहले आपात स्थिति लगने से पहले देश का पहला लोक उम्मीदवार है उसमें इन्होंने और इनके मित्रों ने जिस तरह से मिलकर मधुलिमये जी को परसुएट किया और शरद यादव पहले लोक उम्मीदवार बने '75 में अपने लिए कभी कुछ अपने निज के लिए कभी कुछ नहीं किया क्योंकि अपने का अर्थ इन्होंने समाजवादी आंदोलन ही माना था। ये चाहते थे कि समाजवादी लोग ताकत में आएं, उसके लोग आगे बढ़ें तो ये जो संदर्भ है ये पूरे देश में बहुत कम लोगों का होता है कि जो लोग चुनाव लड़ सकते थे जैसे कि शिवानंद तिवारी बिहार में लड़ सकते थे साथ ही उनके पिता भी बड़े नेता थे लेकिन कई कारण रहे होंगे लेकिन उन्होंने भी मिला हुआ टिकट वापिस किया। तो ये लोग ऐसे रेफरेंस प्वाइंट हैं उसके बाद शिवानंद जी लालू के साथ भी रहे, नीतिश के साथ भी रहे लेकिन रघु भाई मुलायम सिंह की समाजवादी पार्टी के जब एकमात्र जनरल सेक्रेरटरी थे और जब अमरसिंह आए तो सबसे पहले इन्होंने उसके खिलाफ बयान दिया और उसके बाद आज ये अलग हैं; लोकतांत्रिक समाजवादी पार्टी के नाम पर अपनी धुनी जमा रहे हैं। ये एक इतिहास की धारा जिसको इन्होंने अपना सर्वस्व दिया उसी को अपना सर्वस्व मानते हुए एक ध्रुव तारे की तरह अपनी जगह पर खड़े हैं। अब ऐसे में मैं जो–जो करता हूं क्या

करता हूं उसे बताने का ये मौका नहीं है लेकिन उसमें रघु जी की भागीदारी नहीं होती उसके लिए मुझे पीड़ा जरूर रहती है लेकिन यदि मैं प्रयोगधर्मी हूं तो कोई भी प्रयोगधर्मी अपने आप अकेले कोई प्रयोग नहीं करना चाहता इसलिए इतने बड़े स्ट्रेचर के लोगों की भागीदारी होगी ये मेरी अपेक्षा भी नहीं रहती लेकिन एक लालच और एक लालसा को खत्म करना मुश्किल होता है। इसलिए रघु भाई मेरे बड़े भाई भी हैं हम लोग राजनैतिक सहकर्मी भी हैं। मेरी खोज जो है मैं प्रयोगधर्मी नहीं हूं क्योंकि इतने बड़े देश में सार्थक प्रयोग करने के लिए 250–300 लोगों की टीम होनी चाहिए ताकि कोई अर्थ निकल सके तो मैं तो उस टीम की तलाश कर रहा हूं और उसमें मैं लगभग नाकामियाब हुआ हूं। यहां भी बैठे हुए कई लोग हैं जिनका मैं पहले आग्रह भी था और बाद में मैं उनका वॉलिन्टियर बनने को तैयार था तो वो भी मुझे अपनी टीम में न शामिल करते हैं और न ही मुझे अपनी टीम में मानते हैं तो इसलिए उसके क्या पेंच हैं उन्हें समझने के लिए मेरी कोशिशें रहती हैं। तीसरा, मैं प्रयोगधर्मी नहीं हूं लेकिन तरह–तरह की संगत और जो आपके अर्थों में कुसंत भी हो उसमें मैं पाया जाता हूं। और वो बात मैंने अपने एक दूसरे बड़े भाई जो इनके भी मित्र हैं अरूण कुमार पानी बाबा उनसे और किशन पटनायक जो दोनों ही एक रेफरेंस प्वाइंट हैं उनमें देखी। किशन पटनायक मुझे समाजवाद के बहुत मौलिक चिंतकों में से लोहिया के बाद के लोगों में से लगते हैं जो बहुत कम उम्र में सांसद हो गए थे। लेकिन मुझे लगता है कि उनकी पूरी ऊर्जा अपनी नैतिकता बचाने में लगी थी और ये एक और दूसरा अपने विचार की शुद्धता। मेरा उनसे बहुत निजी और अंतरंग रिश्ता था उन्होंने दो–तीन बार करीब–करीब साफ कहा कि उनको एक अनिश्चित और सामूहिक नेतृत्व का हिस्सा नहीं बनना है। बड़े समूह का अनिश्चित और लीडर वो लगभग कल्ट वाली लीडरशिप में मेरे साथ 25 लोग हों वो मेरी वरीयता होगी बजाय इसके कि मेरे साथ 250 लोग हों मैं केवल पांच लोगों के साथ नेतृत्व करूं तो ये उनकी स्पष्टता थी। तो एक तो मेरी इससे मॉडल के तौर पर असहमति है। मैं वही नेतृत्व सही मानता हूं जो सहज हो जिसमें बिना आपकी उपस्थिति के भी लोगों को लगे

कि इस काम को तो किशन पटनायक ही कर सकते हैं, इस काम को तो रघु ठाकुर ही कर सकते हैं तो ये तो नेतृत्व है। अब मैनेजमेंट करके या अपने किसी भी ढंग से अपने को नेतृत्व में रखना वो मैं नेतृव नहीं मानता और कलीजियम में अगर वो नेतृत्व नहीं है, एक सामूहिकता नहीं है नेतृत्व की और उसमें आपसदारी नहीं है तो उस नेतृत्व से समाज तो नहीं बदलेगा। आप लीजेन्डरी फिगर हो सकते हैं आप कैलाश सत्यार्थी हो सकते हैं, वो अग्निवेश जी के चेले थे और दोनों में जितना भद्दा झगड़ा हुआ तो किशन जी से ये संदर्भ है नेतृत्व की अवधारणा के बारे में कि एक तो कि अकेले नेतृत्व चाहने की इच्छा और दूसरा अपनी विचार की शुद्धता और अपनी नैतिकता बचाने में उनकी पूरी ऊर्जा लगती थी। राजनैतिक इम्पयोर लोगों से और गढ़मढ़ लोगों को भी लेकर जो उनकी निजी वैचारिक स्पष्टता है उसकी ओर वो ले चलें इस तरह का कौशल न मुझे लगा कि उनमें है और न उन्होंने हम लोगों को सिखाया। लोकतांत्रिक समाजवाद में मुझे लगता है कि उस कौशल का होना अपरिहार्य है और जो लोग जैसे रघु ठाकुर जैसे लोग जो सहज ही अपनी ईमानदारी को जीते हैं उनको उसके लिए प्रयास नहीं करना पड़ता अपनी सादगी, अपनी विचारनिष्ठा तो उसको जो लोग सहज जीते हैं तो उनको जीस्स क्राइस्ट के लास्ट सफर की तरह, तरह–तरह के अपवित्र और डीवियेंट लोगों के साथ चलने का अगर वो साहस करेंगे तो हम लोगों को भी एक हौंसला आएगा तो मैं ये मानता हूं कि किसी भी बड़े परिवर्तन में नीति और नैतिकता ये दोनों आवश्यक चीजें हैं लेकिन नैतिकतावादी होना और उसमें हर बेईमानी आदमी से, डरपोक आदमी से, वैचारिक रूप से अस्पष्ट आदमी से दूरी बनाकर रखना ये जो नैतिकतावाद से निकलता है उससे मुझे परेशानी होती है। और कभी–कभी मुझे लगता है कि किशन जी की इस पहलू की परंपरा को रघु भाई भी जीते हैं और उससे उनकी मेरी बहस भी होती है। आप सब लोग यहां पर है इसलिए मैंने आज हिम्मत करके इतना स्पष्ट कहा है, शायद इस तरह से व्यक्तिगत इतना साफ–साफ शायद मैंने कभी नहीं कहा होगा। इनकी सुप्रीमो वाली शैली में इनको भरोसा था कि लोग इनकी बात मान लेंगे। मुझे इन्होंने

अपनी पार्टी का वाइस प्रेसिडेंट घोषित किया और अभी तक हटाया नहीं है। लेकिन उस दिन साथ में ये हुआ था कि मेरा जो अस्पष्ट किस्म का मंच जो मैं चलाता हूं 'सोशलिस्ट फ्रंट' उसमें ये समय देंगे और ये मेरे साथ ये भी सह–संयोजक होंगे उस वायदे को इन्होंने नहीं निभाया। उसके अलावा इनके और मेरे बीच में कोई मतभेद का मुद्दा नहीं है। मैं चाहता हूं कि ये समाजवाद को जितना जिएं हैं उस पुण्य को ये समाज में बिखेर दें बजाय इसके कि जो कि समाजवादी हैं उनके बीच उसको इनकी कसौटी से जो समाजवादी हैं उसके बाहर भी उस पुण्य का लाभ मिले ये मेरे और इनके बीच मतभेद का मुद्दा रहता है और मैं मोटी बात ये कहना चाहता हूं।

दूसरा, इस श्रृंखला के पीछे जो सोच है वो ये है कि एक तो उषा जी का जीवन जिस तरह से उन्होंने समाजवादियों के लिए और हर समाजवादी के मानसिक विकास के लिए और जो युसुफ मेहर अली और आचार्य नरेन्द्र देव और लोहिया से उन्होंने जो सीखा ये सब लोग इनके पिताजी बाबू लाल माखरिया के दोस्त थे ये पीरामल परिवार के लोग हैं तो जब '52 में अशोक मेहता ने टैक्सटाइल स्ट्राइक की तो इनके पिता ने अपने हिस्से छोड़कर समाजवादी पार्टी के साथ ही जलूसों वगैरह में शामिल रहते थे और सोशलिस्ट पार्टी की राष्ट्रीय कार्यकारिणी की बम्बई की बैठकें इन लोगों के घर में ही होती थीं। तो उनसे जो सीखा वो उन्होंने अपने टाइम तमाम समाजवादी लोगों के जो संपर्क में आती थीं उनसे उन मुद्दों पर लगातार बहस करना, संवाद करना और इनकी आर्थिक हालत उसके बाद से कभी अच्छी नहीं हुई बस बीच में कभी–कभी अच्छी हुई तो आपातकाल के दौरान इनकी आर्थिक हालत अच्छी नहीं थी तब इन्होंने अपने जेवर बेचकर भी अपने समाजवादियों के भूमिगत आंदोलन में मदद की और जॉर्ज साहब जो बड़ोदा डायनेमाइट केस में अरेस्ट हुए थे उनके भूमिगत काम में भी बहुत जोखिम लेकर इन्होंने काम किया। तो मुझे लगा कि जेपी, लोहिया इन सब के तो हम लोग आस्थावान भगत जैसे हैं तो हम लोग अपने ही बीच के जो लोग सामान्य जिनको माना जाता है उनको भी याद करें और उनके गुणों को भी याद करें तो सीरीज क्यों उषा जी

को समर्पित है इसका संदर्भ मैं बताना चाह रहा था। दूसरी बात ये है कि जो तमाम लोग सत्ता में आने से पहले जैसे जॉर्ज साहब और मुरली मनोहर जोशी की दोनों की एक संयुक्त टीम थी। डब्लूटीओ के खिलाफ बहुत जोर–शोर से बात करती की उसके बाद दोनों सत्ता में आए और डब्लूटीओ चल रहा है हम लोग उसके हिस्से हैं और बहुत सी चीजों जैसे कि दवाओं का दाम बढ़ाना पड़ेगा और पेटेंट लागू करना पड़ेगा। खेती में हम लोगों ने अपने को इंपोर्ट से बांध लिया है, उससे हमारे यहां तेल की कीमत कभी गड़बड़ हो जाती है, कभी सेब की तो कभी सब्जी की तो ये पूरी दुनिया में जागतिक स्तर पर कोई राजनीति जो है वो ग्लोबलाइजेशन की तथाकथित मजबूरी से लड़ नहीं पा रही है। तमाम रीजनल पार्टियां और कांग्रेस और भाजपा अब दो मुख्य पार्टियां बन गई हैं तो ये दोनों पार्टियां बात लोगों की आम लोगों की करती हैं लेकिन काम कॉरपोरेटस के लिए ही करती हैं। पूरा लोकतंत्र कॉरपोरेट द्वारा नियंत्रित हो गया है। जयपाल रेड्डी, मणिशंकर अय्यर क्यों हटाए गए, क्या–क्या हुआ ये सब बात तो अब पब्लिक नॉलेज की बात है तो हम लोग कोई राजनैतिक स्तर पर ग्लोबलाइजेशन और कारपोरेटीकरण लोकतंत्र के कारपोरेटीकरण को रोक नहीं पा रहे हैं; ये मेरे मन में एक सवाल के तौर पर था। दूसरा, मेरे मन में ये सवाल के तौर पर था कि आतंकवाद की कोई घटना होती है तो जो लोग मरते हैं हम उनके लिए दुख जताते हैं और आतंकवाद की निंदा करते हैं लेकिन जो आदमी अपने शरीर पर बम लगाकर आता है और मरता है तो उसका दिमाग कैसे रीत गया है कि उसको मरने में ही अपने जीवन का अर्थ लगता है। तो वो क्या सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक, आर्थिक परिस्थितियां हैं जिसमें ये संभव है ऐसे आदमी और औरत खोजना जो अपने को अपने विचार के लिए, अपनी समझदारी से या बहकाकर कैसे भी हो होम कर देते हैं। तो वो अपने को खत्म कर रहे हैं तो ये सूसाइट बम्बर कैसे पैदा होता है इसका जवाब किसी बड़ी घटना के बाद होने वाली बहस में भी देखने को नहीं मिलता है और उसके अलावा भी बातचीत में समाजशास्त्रियों में, मनोवैज्ञानिकों में बहुत आम लोगों के स्तर पर भी मुझे कोई बहस नहीं दिखती है तो ये

दूसरा सवाल था। तीसरा सवाल, छोटे दायरे से पैदा हुआ है वो ये है कि मैं आज की परिस्थिति में एक द्वेद देखता हूं। एक तो अन्ना आंदोलन उसके बाद 'आप' की पार्टी बनने की प्रक्रिया, तो नौजवानों में आदर्शवाद की कमी मुझे नहीं दिखती। दलितों में बड़ी संख्या में लोग, उन दलितों में मैं मायावती वाले दलितों की बात नहीं कर रहा जिन्हें सत्ता में हिस्सा मिलता है बल्कि जमीनी स्तर पर उन तमाम दलितों की बात कर रहा हूं जो अपना करियर छोड़कर और पूरे दलित समाज के सशक्तीकरण के लिए काम कर रहे हैं; मैं ऐसे तमाम ग्रुपस को जानता हूं। उसी तरह से अपर कास्ट, मिडिल क्लास के लोग कई–कई लाख का पैकेज छोड़कर 'आप' पार्टी बनाने के लिए आए थे तो समाज में आदर्शवाद का मुहावरा जरूर बदला है। लेकिन आदर्शवाद की कमी नहीं हुई है लेकिन समाजवादी जिन्होंने अपना सब होम किया जो भी उसके बचे हुए अवशेष हैं उनसे आप व्यक्तिगत मिलेंगे तो कुछ कहने को नहीं मिलेगा क्योंकि शब्दों में जिस तरह का उनका जीवन रहा वो कहना भी आसान नहीं है और थोड़ा भोंडा भी लगता है क्योंकि हम लोग खुद उसका हिस्सा रहे हैं लेकिन उसके बावजूद हम उस आदर्शवाद तक नहीं पहुंच पा रहे हैं। हमसे उनका आम जन के स्तर पर कनैक्शन नहीं बैठ रहा है तो हमारी सोच में कमी है, हमारे मुहावरे में कमी है, हमारे कहने और करने के तरीके में क्या कमी है या संगठन कौशल में हमने कुछ अपने आप से ऐसा कर लिया है कि हम आम जन तक पहुंच नहीं पाते हैं तो ये एक सवाल मेरे मन में था तो इन सवालों का जवाब सामूहिक सोच से कैसे निकले ये एक मेरे मन में तलाश की तरह था प्रयोग की तरह नहीं था। दूसरा क्या हुआ कि जैसे भूटान ने ग्रौस हैप्पीनेस इंडेक्स बनाया था वैसे ही बोलविया के आदिवासियों ने बोवेन विविर–अच्छा जिएं इसका एक चिंतन विकसित किया और अब उनकी अंतराष्ट्रीय पॉलिसी का ये हिस्सा है कि वो ग्लोबल डेवलेपमेंट इंडेक्स है उसकी बजाय बोवेन विविर की बात करते हैं कि 'अच्छे जीवन की' हमारी क्या कसौटियां होनी चाहिए। जो न्यू–लिबरलिज्म है, जो उदारीकरण है, जो कारपोरेटीकरण है वो एक अलग कसौटियों पर अच्छे जीवन को मानता है कि स्मार्ट फोन कौन सा फोन

है वगैरह–वगैरह और उसके सामानान्तर जो जीवन है क्या वो सिर्फ आदिवासियों में ही है? क्या धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष का संतुलन होना चाहिए वो क्या है तो हमारी तमाम धर्मों की, जैनियों की, बुद्धिस्ट की, हिन्दुओं की परंपराओं में अच्छे जीवन के बारे में क्या–क्या अवधारणाएं हैं और वो समाज में किस तरह से नीचे तक गई हैं इन चीजों के बारे में एक खोज की तरह से हमने इस श्रृंखला की शुरूआत की है। और उसमें रघु भाई जैसे लोग जिन्होंने हमारी विनम्र राय में और समझ में अर्थमय जीवन जिया है वो अगर अपनी बात उसमें से कुछ बात निजी भी हो सकती है वो इस संदर्भ में हमसे साझी करें तो इसलिए हमने इस श्रृंखला को शुरू किया है। इस वर्ष का पहला व्याख्याना गांधी शांति प्रतिष्ठान में '72 से पर्यावरण कक्ष चला रहे अनुपम मिश्रा ने किया था। वो भाषण लिखित हैं तो आप लोगों को ईमेल वगैरह जिसको भी चाहिए तो हम उसकी सॉफ्ट कॉपी आपको भेज सकते हैं। दूसरा व्याख्यान आज है तो इस सिलसिले को हम लोग आगे चलाने वाले हैं वैसे तो रजनीकांत जी को शुरू में ये भूमिका बतानी चाहिए थी लेकिन वो बता नहीं पाए और आपने कुछ व्यक्तिगत इशारे में कुछ चीजें कह दीं तो मुझे लगा कि वो भी सफाई आज दोस्तों की उपस्थिति का लाभ उठाकर आपसे कहूं। धन्यवाद।

रवि भाटिया : मैं दिल्ली विश्वविद्यालय में गांधी भवन के कामों से जुड़ा हूं। तो आपने गांधी जी के बारे में और थोड़ा पर्यावरण के बारे में भी बोला कुछ बोला तो मैं उसके बारे में एक–दो बातें और रखना चाहूंगा।

एक बात जो रघु जी ने कही थी वो ये थी कि गांधी जी का मानना था कि 'सत्य ही ईश्वर है'। लेकिन ये बात उन्होंने शुरूआत में कही थी। बाद में उन्होंने इसको उल्टा करके कहा कि 'ईश्वर ही सत्य है'। उसका क्या कारण था वो मैं दो लाइनों में बोलना चाहूंगा क्योंकि हम जानते हैं कि ईश्वर का अर्थ हमारे समाज में अलग–अलग धर्मों से है जिसमें हिन्दू है, इस्लाम है, बौद्ध है, क्रिश्चियनिटी है। यदि उन्होंने कहा कि सत्य ही ईश्वर है तो इसका मतलब सत्य अलग–अलग है क्योंकि ईश्वर तो अलग–अलग हैं तो

इसका मतलब कि सत्य भी अलग–अलग हैं। उन्होंने बाद में सोचा और कहा कि नहीं सत्य तो एक ही चीज है फिर आप चाहे जिस भी दिशा से जाएं सत्य का जो मार्ग है वो अलग–अलग हो सकता है लेकिन सत्य का लक्ष्य एक ही है। और फिर उन्होंने कहा कि ईश्वर ही सत्य है। फिर चाहे आप हिन्दू हैं या इस्लाम से जुड़े हैं।

आपने एक दूसरी बात पर्यावरण के बारे में कही तो पर्यावरण के विषय में आज हमें बड़ा आश्चर्य लगता है गांधी जी ने अलग–अलग चीजों पर बात रखी जो आज भी प्रासंगिक हैं। उन्होंने धर्म के बारे में कहा, सत्य के बारे में कहा, अहिंसा के बारे में कहा। उन्होंने सिर्फ अपने विचारों में ही नहीं बल्कि उनका जो तौर–तरीका था उससे भी पर्यावरण को कैसे सुरक्षित रख सकते हैं, हम अपनी धरती को कैसे सुरक्षित रख सकते हैं, ये उन्होंने कई दफा कहा भी और उसी तरह से किया भी। उनका एक है देयर इज इनफ फॉर पीपुल्स नीड बट नॉट इनफ फॉर पीपुल्स ग्रीड (लोगों की जरूरतों को पूरा करने के लिए पर्याप्त है लेकिन लालच को पूरा करने के लिए पर्याप्त नहीं है)। उन्होंने ये भी कहा जिसका मतलब ये था वो लाइन जो भी हो कि हम पृथ्वी का इतना भी भोग न करें कि हम अपनी आने वाली पीढ़ियों के लिए कुछ भी न छोड़ें। ये उन्होंने 60–70–80 साल पहले कहा जो मुझे बड़ा विचित्र लगता है जबकि उस समय इस तरह का कोई भी संकट नहीं था और आज तो ये बहुत बड़ी गंभीर समस्या हो गई है मैं उसपर ज्यादा बात नहीं कर सकता और न करना चाहता हूं। हमारा पर्यावरण उसमें हमारी नदियां, हमारी हवा भी, हमारी धरती भी बहुत–बहुत दूषित है तो ये बात उन्होंने कही थी जिसके बारे में हमें आज थोड़ा सा इसपर ध्यान रखना चाहिए। उसमें एक है सादगी तो यदि हम सादगी से रह पाएं तो वो भी एक बड़ी बात है। उसी तरह से वो समय के भी बड़े पाबंद थे। पर्यावरण के बारे में वो जो स्वराज भवन और आनंद भवन–इलाहाबाद में जमुना के नजदीक हैं वहां पर भी जाया करते थे और आज भी यदि आप उन भवनों में जाएं तो वहां पर उनका एक कमरा जहां पर गांधी जी रहते थे वो अभी भी आपको नजर आएगा। तो वहां पर उस समय तो जो गंगा–जमुना नदी जाती

थी। उस समय वहां पानी की कोई कमी नहीं थी तो उनका कहा गया था कि आप जितना मर्जी पानी इस्तेमाल कर सकते हैं। पर वो कहते थे मैं केवल एक ही बाल्टी इस्तेमाल करूंगा क्योंकि हमें पानी को भी बर्बाद नहीं करना चाहिए। तो ये तो उनकी सोच उस समय की थी और आज तो हमारी नदियां कितनी अपवित्र हो गई हैं ये हम सब जानते हैं।

रघु ठाकुर : हमारे मित्र भाटिया जी ने जो अभी बातें कहीं उसमें उन्होंने एक संदर्भ में गांधी जी का उल्लेख किया वो थोड़ी सी व्याख्या के लिए बहुत जरूरी है। गांधी जी ने आरंभिक दौर में कहा कि सत्य ही ईश्वर है, बाद में ये भी कहा कि ईश्वर ही सत्य है। अब जब उन्होंने ईश्वर ही सत्य कहा तब की राष्ट्रीय जरूरतें क्या थीं और सत्य ही ईश्वर जब कहा तो उसका उद्देश्य क्या था। इन दोनों में बहुत ही बारीक फर्क भी है। जहां तक ईश्वर ही सत्य है ये बहुत चलता है। जब किसी की मृत्यु होती है तो कहते हैं 'राम नाम सत्य है'। तो जब राम नाम कहते हैं तो राम का मतलब कोई नाम से नहीं लेता है बल्कि ईश्वर की कल्पना से लेता है। तो जब गांधी जी ने जब दूसरी बार कहा कि ईश्वर ही सत्य है वो देश में जो साम्प्रदायिक मानस का विभाजन शुरू हुआ था जो ईश्वर के नाम पर झगड़ा शुरू हुआ था उस संकीर्णता को साम्प्रदायिकता को मिटाने के लिए राजनैतिक प्रयोग था। पर जो गांधी की मूल अवधारणा थी कि सत्य ही ईश्वर है वो एक समाज के लिए बड़े आदर्श कर्म के रूप में हुआ। वो एक प्रकार का दायित्व पैदा करता है यदि सत्य ही ईश्वर है तो फिर हमें सत्य का पालन करना चाहिए और सत्य का पालन करना आदमी के लिए बहुत ही कठिन काम है। इस प्रकार से समाजवाद की बात कहना और समाजवाद में जीना कठिन काम है। .....तो कहा ही था कि इक्विटी को जीना बड़ा कठिन काम है। क्योंकि ये कहना तो आसान है तो अपने जीवन में हर क्षण सत्य के साथ जीना और सत्य को उद्घाटित करना अपने अपराधों को अपनी गलतियों को बराबर कहना मेरे ख्याल से पहले वो जो पहली अवधारणा थी वो समाज के लिए ज्यादा व्यापक थी। दूसरी उस समाज के जिस समाज में वो कठिनाइयां पैदा

हुई थीं विभाजन के समय की उसमें भी जरूरी थी। तो आज हमको दोनों की परिभाषाओं को लेकर चलना होगा।

विजय भाई ने कुछ बेहतर सवाल और कुछ बेहतर चीजें भी रखीं और कुछ समाजवादी कार्यकर्ताओं और समाजवादी साथियों के लिए भी कुछ सवाल उसमें हैं। वैसे उनके मन में एक अच्छी धारणा है कि वो तलाश कर रहे हैं और प्रयोग और तलाश में मेरे ख्याल से बहुत ज्यादा फर्क नहीं है। भई प्रयोग भी तो तलाश ही है और प्रयोगधर्मी होना कोई बुरी बात नहीं है तो हम उनको तलाशधर्मी कहें या फिर प्रयोगधर्मी कहें बात तो एक ही है। पर एक जो बात उन्होंने कही वो सही है कि समाजवादी आंदोलन के समय में वो व्यापक नेतृत्व के लिए दिखे। और किशन जी का संदर्भ लेकर उन्होंने कहा कि किसी दूसरे ऐसे व्यक्ति के साथ काम करना उनके लिए कठिन था जो व्यक्ति नीति के आधार पर रहे। हम उनसे सवाल पूछना चाहते थे कि मधुलिमये क्या मधुलिमये के जीवन में कोई नीति और नैतिकता में फर्क था जितना मैंने मधुलिमये जी को बारीकी से देखा है मुझे इतनी उच्च नैतिकता का व्यक्ति अपने जीवनकाल में शायद और कोई मिला हो। परंतु मधुलिमये जी के साथ भी किशन जी काम नहीं कर पाए। हमने प्रयास भी किया तब भी नहीं कर पाए। मैं बहुत नैतिक हूं तो ये घमंड जैसा हो जाएगा। पर इतना तो कह सकता हूं कि मैं अनैतिक नहीं हूं। और विजय जी ने प्रयास किया कि हम और किशन जी साथ में काम कर पाएं लेकिन ये नहीं करा पाए। तो जो आपने संदर्भ लिया है आपका वो संदर्भ सटीक नहीं है। अगर कोई व्यक्ति नैतिक–अनैतिकता के आधार पर, नीति–अनीति के आधार पर कोई रेखा खींचता है तो हो सकता है कोई बुराई की बात नहीं है परंतु अगर कोई व्यक्ति ये सोच कर चलता है कि क्यों मैं ही नैतिकता में रहूं तो फिर ये एक प्रकार से नैतिकतावादी तानाशाही जैसा हो जाएगा। तो ये फर्क है जो किशन जी और कुछ लोगों के बीच में रहा। हमने जब मधुलिमये से किशन जी के साथ काम करने के लिए कहा तो उन्होंने स्वेच्छा से कहा कि ठीक है। और फिर हमें पटना भेजा बाकी घटनाओं के आप भी मेरे साथ गवाह हैं। दूसरी बात क्या है कि

आज के दौर में और पहले भी क्या किसी व्यवस्था की संस्था का नेतृत्व आप कमजोर व्यक्ति को दे सकते हैं। इसपर सोचाना चाहिए। आपने एक उदाहरण दिया मुलायम सिंह की पार्टी का तो वो ठीक बात है। मुलायम सिंह की पार्टी में हम लोग साथ–साथ काम कर रहे थे। मतभेद खड़े हुए हमने उन्हें बोला और रोकने का प्रयास भी किया जब उन्होंने सबसे पहले एक कारपोरेटी का प्रस्ताव लेने का सोचा तो उनको हमने रोका और कार्यकारणी की मीटिंग में हमारी बात हुई, बाकायदा बहस हुई, प्रस्ताव हुआ और वोटिंग की स्थिति आई। फिर वो समझ गए थे। मुलायम सिंह राजनैतिक चातुर्य में कम नहीं हैं। तो समझ गए कि वोट में रघु ठाकुर हार जाएंगे लेकिन मैदान में हम हार जाएंगे। तो पहली बार हुआ कि उन्होंने अपना प्रस्ताव वापिस लिया। और उन्होंने अपना प्रस्ताव वापिस लिया मतलब कि उस दिन भी हमने समझ लिया कि अब हमारे बंटवारे की लाइन खिंच गई है। अब मामला होने वाला है कि जो व्यक्ति इसे अपनी जागीरदारी मानता है उसमें अब हमारा सम्मान नहीं। खैर मैं जो चर्चा कर रहा था क्या उस प्रार्टी में जाकर आप प्रगति कर सकते हैं। तो इस भ्रम को कुछ लोगों ने जिया है और कुछ लोगों ने फैलाया है। जॉर्न फर्नांडिस हमारे समय के आदमी थे, साथी थे और जिनके जीवन का 30–40 साल का संघर्ष कोई मामूली संघर्ष नहीं था। क्योंकि हम लोगों ने कई सालों तक लगातार दौरे किए हैं। किस कठिनाइयों ने उन्होंने काम किया है एक समाजवादी के रूप में ये एक अकल्पनीय घटना है। यानि जो हिन्दुस्तान का केन्द्र का मंत्री रहने के बाद जब हारे और 80 में केवल एमपी रह गए और 84 में मध्यप्रदेश से चुनाव हारे। तो उसके बाद में जॉर्ज फर्नांडिस को रेल में एक बर्थ नहीं मिली जबकि वो आरएएफ के चेयरमैन थे और कंडक्टर पैसे लेकर बर्थ दे रहा है और उनको नहीं मिली उसके बाद उन्होंने किस तरह से रातभर यात्रा की और किसी तरह से हम पानी में रहे वो एक अलग बात है मैं उसमें ज्यादा नहीं जाऊंगा लेकिन जॉर्ज फर्नांडिस के मन में भी सोच थी कि हम मिलजुलकर भाजपा को साथ लेकर सबको लेकर चलेंगे। तो संभव हो पाएगा तो ये कल्पना करना ही कठिन है, कल्पना करना मेरे ख्याल से सही नहीं है कि

आप किसी संस्था के एक पुर्ज बनकर आप उसे बदल सकते हैं। और कांग्रेस का भी गांधी से जोड़ दिया, गांधी उसके नैतिक नेता हो गए। तो अंतिम दौर में व्यवधान तो तब आया जब गांधी नेता तो थे पर भौतिक नेता नहीं थे। तो जब प्रस्ताव आए तो कितने लोग गांधी के पक्ष में खड़े हुए तो अगर गांधी भी उस संस्था को अपने नियंत्रण में नहीं रख पाए तो अभी मैं अपने आपको गांधी से छोटा मानता हूं विजय भाई भी अपने को छोटा ही मानते होंगे। तो मेरे कहने का तात्पर्य है कि संतुलन कैसे हो, कैसे चीजें बढ़ें ये हम सब चाहते हैं। अपने साथी हैं कुछ साथियों के साथ काम करने में क्रुटि हो सकती है लेकिन एक बात तो है कि आप हमसे कहें कि ये दूध में हमने मक्खी डाली आप इसे पी लीजिए तो ये कैसे हो सकता है। कुछ लोगों के बारे में आपके जीवन के अनुभव हैं तो कुछ लोगों के बारे में मेरे भी अनुभव हैं और मैं जो लगातार देख अपने 30 साल के अनुभव से देख रहा हूं कि कुछ लोगों के जीवन में सोने के अलावा कुछ काम ही नहीं है। अब आप हमसे कहें कि इनको भी अपने साथ ले लें, उनको भी अपने साथ ले लें और इनको भी अपने विश्वसनीय कर लीजिए। तो मुझे आंदोलन की छवि बचानी है, व्यक्ति का कोई सवाल नहीं है। आपको पता है कि हमने अपनी पार्टी की अध्यक्षता को बला छोड़ा है। कोई तैयार नहीं था हमारे साथी लेकिन हमने कहा कि नहीं आप करो। हम अपना काम कर रहे हैं जितना पहले करते थे उससे भी ज्यादा कर रहे हैं। तो अगर समाजवादियों के पास में कौन सी पूंजी सबसे अधिक होगी इसके आधार पर आप चल सकते हैं। यदि आप पैसे की राजनीति को नकारते हैं तो फिर आपकी सबसे बड़ी पूंजी आपकी साख की.....ही तो है यदि आप इसको चोट पहुंचाकर कोई फैसला करते हैं या फिर कोई रणनीति बनाते हैं तो फिर मेरे ख्याल से आपकी नीयत तो अच्छी है, भावना तो अच्छी है लेकिन कुल मिलाकर वो बात पक्ष में नहीं जाएगी। दूसरा हमारे यहां लोगों की अलग–अलग प्रकार से विभाजन की बहुत मानसिकता है। विजय भाई ने सोशलिस्ट फ्रंट का जिक्र किया हम उसके लिए तैयार थे। परंतु जब प्रश्न ये आया कि मेंबरशिप सोशलिस्ट फ्रंट की भी होनी चाहिए तो हमारे नेता थे स्वर्गीय सुरेन्द्र मोहन जी, विजय

भाई पता नहीं उस समय थे कि नहीं थे, भाई वैध जी थे तो उस समय हमने चर्चा में पूछा कि हम लोग लड़ते रहे अधूरी सत्ता के खिलाफ तो आप फ्रंट बना रहे हो कि पार्टी बना रहे हो। आपका उद्देश्य क्या है? यदि आप फ्रंट बना रहे हो तो चार पार्टियों का फ्रंट बनाओ परंतु यदि आप कहें कि इसकी एक मेंबरश्पि हो। तो फ्रंट में मेंबरशिप तो पार्टियों की होगी; कि ये पार्टी उसकी मेंबर है। फेडरेशन है, ऑल इंडिया रेडियो इसकी फेडरेशन है। या एचएमएस है हिन्द मजूदर सभा की जो मेंबरशिप है उसमें जो ..... हैं वो उसके मेंबर होते हैं। और अगर हर व्यक्ति मेंबर होगा तो फिर बेकार मे झगड़ा हो जाएगा तो यदि आप फ्रंट बनाना चाहते हैं तो फ्रंट बनाइए और अगर पार्टी बनाना चाहते हैं तो साफ–साफ कहिए कि पार्टी बनानी है तो उसका भी बात करेंगे। और जब वो सोशलिस्ट पार्टी ऑफ इंडिया बनाने के लिए निकले और हमारे पास आए तो बोले कि हम समाजवादियों को एकत्र करना चाहते हैं। तो हमने कहा कि इक्टठा कर लेते हैं तो फिर बांट क्यों रहे हो। तो उनके साथ स्वर्ण जी थे, और स्वर्ण जी और हम दोनों लोग थे, विजय प्रताप जी भी बम्बई के पास तले गांव में थे। उस जमाने में हमने पार्टी का काम शुरू किया था और हमने उनसे अनुरोध किया था कि समाजवादियों को इक्टठा होना है तो हमने उनसे अनुरोध किया कि आप जनपरिषद में आ जाइए तो हमने कहा कि इसपर ही विचार कर लेते हैं तो बाद में वो स्वर्ण जी ने जनपरिषद से इस्तीफा भी नहीं दिया और वो जाकर दूसरी पार्टी में शामिल हो गए। तो भई! आप समाजवादियों को इक्टठा करना चाहते हैं तो नई पार्टी क्यों बना रहे हैं। भई जो पार्टी बनी हुई हैं और जिनको आप अच्छी पार्टियां कहते हैं। तो उसमें आप कहें कि अजीत भाई हमारे साथ आएं, रघु भाई हमारे साथ आएं तो भई आप उस पार्टी में मुखिया बनिए और उसे चलाइए। कोई बात नहीं है। हमने ये भी कहा कि आप पार्टी बनाएं और उसमें ये तय कर लें कि उसमें कोई 60 साल से ऊपर वाला कोई उसका अध्यक्ष नहीं बनेगा उसके लिए भी तैयार हैं। उसके बाद हमने कहा कि एक आदमी दो बार से अधिक बार अध्यक्ष नहीं बनेगा। हमने ये भी कहा कि इसे हम विधान में देख लें कि जो व्यक्ति दो बार विधायक बन जाएगा

उसे तीसरी बार टिकट नहीं दिया जाएगा क्योंकि व्यक्ति के दिमाग में जो सत्ता की विकृतियां पैदा हो रही हैं फिर वो चाहे छोटी सत्ता हो या फिर बड़ी सत्ता हो इसकी विकृतियों को रोकने के लिए कुछ न कुछ उपाय खोजने चाहिए। यदि ये लोकतंत्र नए सामंतवाद में बदल रहा है तो क्यों बदल रहा है। यदि ये कहा जाए कि मुलायम जी को पता है कि हमारी स्थायी पार्टी है, कांग्रेस को पता है कि स्थायी है और किसी और को पता हो कि हमारी है। यदि ये चीज सीमित हो तो फिर नया नेतृत्व तो आएगा, नया खून भी आयेगा। पर इन बातों की बजाय फिर एक नई पार्टी बन गई तो मैं आपकी हर तलाश में आपका सहयोगी रहूंगा और हूं। सिर्फ इतनी ही साहब कि जितना बचा है वो न बिखर जाए। ये अगर .1 प्रतिशत भी हो तो उसमें भी हम आपके साथ हैं। धन्यवाद।

श्याम सुंदर पसरीजा : जब मैंने इस मीटिंग का विषय देखा तो देखा कि विषय बड़ा रोचक है और जब देखा कि इसमें रघु ठाकुर जी का मुख्य व्याख्यान होगा तो मुझे लगा कि मेरे विचारों से सहमति भी होगी। जहां तक मैं अभी जो जीवन का अर्थ के बारे में समझता हूं और मैं समाजवादी होने के नाते मैं समाजवाद से पढ़कर, सीखकर आया हूं। क्योंकि मैंने 67 में जयप्रकाश नारायण जी के साथ बिहार में समाजवाद का अध्ययन 1967 में शुरू किया था। उसके बाद मैं लगातार जो पढ़ पाया और जो मैं समझ पाया वही मुझे जीवन का अर्थ लगा। आज आप किसी भी पार्टी का संविधान उठा लो, उसका ब्रोशर निकाल लो, उसके द्वारा लोगों में फैलाने के लिए कोई पर्चा निकाल लो और समाजवाद का असली अर्थ ये है कि इस धरती पर हर मनुष्य जो है उसका समान चरित्र, समान अधिकार, समान रहने की व्यवस्था, समान क्षमतानुसार कमाने का तरीका और आवश्यकतानुसार उपभोग। ये सारी समाजवाद की जो परिभाषाएं हैं वो सब के संविधान और सब पार्टियों के प्रचार में मिलती हैं। आप किसी भी पुरानी धार्मिक पुस्तक को उठा लें, जो पुराने धार्मिक ग्रंथ बने हैं उसमें भी सबका अर्थ एक ही है। असली जीवन का अर्थ वहीं पर है। जहां पर बात आई सोशलिस्ट फ्रंट बनाने की इसके लिए मैं भी उन दिनों काफी सक्रिय था। बड़ा प्रयास किया, खुराना जी को भी काफी समझाने

की कोशिश भी की। सुरेन्द्र मोहन के साथ बैठकर बात भी की कि आप ये सब क्या कर रहे हैं कि सब मिलाकर हम एक पार्टी बना लेंगे। तो हमें ये समझ में नहीं आया कि ये जो छोटी–छोटी धाराएं पहाड़ों में से निकलेंगी नदियां, नाले यदि ये एक ऐसी झील में पड़ गए तो इसका पानी तो मीठा होगा लेकिन यदि अगर वो बहकर समुद्र में मिल गई तो पानी खारा हो जाएगा। हम सारे मिलकर जा कहां रहे हैं, पहले उसके लिए कोई रास्ता तैयार करो। क्या हम किसी मीठे पानी की झील में अपने आपको डाइवर्ट कर रहे हैं या फिर उसे खुला छोड़ रहे हैं और फिर वो नदियों के रास्ते जाकर खारे पानी में मिल जाता है जो पीने के काबिल तो नहीं हैं उसमें फिर चाहे पूंजीपतियों के समुद्री जहाज चला लो। गरीबों की नाव तो ये डुबो ही देते हैं जरा सा पानी का दबाव आया और संभालना ही मुश्किल हो जाता है तो ऐसी परिस्थिति में जीने के अर्थ को समझना जरूरी है। मैं जयप्रकाश नारायण के साथ रहा बाद में उनकी संपूर्ण क्रांति नाम की छोटी सी पुस्तिका मैंने पढ़ी, '74 में और 75 में जेल भी गया। तो उसमें ये बात थी कि हम वर्तमान समाज और देश के अंदर जो घटनाएं और परिस्थितियां हैं इसका अध्ययन करें। इनकी समस्याओं को समझने के लिए अपने विवेक का प्रयोग करें। और जो अपने से सीनियर हैं उनसे उस पर विवेकपूर्ण निर्णय लेने के लिए अपने आपको बनाएं और फिर उसपर कार्य करें और फिर उन्हें घर में अपनी बीबी को बताने का ही नहीं बल्कि बच्चों तक भी बताने का प्रयास करें तो तभी देश आगे बढ़ेगा। तो मैं ये कहूंगा कि इस सब की अभी भी देश में जरूरत है। तो आज देश के अंदर एक करपट और गुंडा राज आ गया और करप्ट और ठगों का राज आ गया। गुंडे से लड़ना आसान था पर ठगों से लड़ना मुश्किल है क्योंकि ठग तो तब तक भाग चुका होता है जब तक हम लुट चुके होते हैं। ऐसे ठगों से आपको संभलना 1977 में भी जब ये ड्यूल मेंबरशिप की बात आई तो इन्होंने कितना नुकसान पहुंचाया, इन्होंने मिलकर कितने बड़े संघर्ष का सत्यानाश किया। और उसके बाद आज जब वो देश के अंदर आ गए तो मैंने अभी एक आरएसएस के विचारक और जो प्रिंसिपल रह चुके हैं तो मैंने उनसे कहा कि जब मैं ट्रेन में जाता हूं

क्योंकि मैं तो छोटा मजदूर हूं तो वहां पर लोग बात कर रहे होते हैं कि हमारा रोजगार बंद हो गया, हमारी फैक्ट्ररी बंद हो गई, हमारी तो दुकान पर ग्राहक ही नहीं आता। तो ये डेढ़–दो साल से जो हो रहा है कि उसका कारण क्या है? तो मैंने मजाक में कह दिया कि आजकल हम चाइनीज सामान मंगा रहे हैं और इस्तेमाल कर रहे हैं। खाओ–पीओ जो धन पड़ा है वो लुटाए जाओ। तो वो बोले कि नहीं यहां पर मनी सकुर्लेशन खत्म हो गया है। वो बहुत कम हो गया है। तो मैंने कहा कि आप तो अर्थशास्त्री हैं तो मैंने कहा कि मनी सकुर्लेशन का कारण क्या है तो वो कहता है कि आरएसएस के अंदर जो हमारे उसमें विवेचना हुई तो वो कहते हैं कि करप्शन खत्म हो गई है इसलिए मनी सकुर्लेशन खत्म हो गया। तो मैंने कहा कि आपने रिपब्लिक डे पर तगमे बांटे हैं और मुझे उसमें नहीं बुलाया जबकि मैं जय प्रकाश नारायण के साथ रहा हूं। इमरजेंसी में जितने ज्यादा लोगों को तगमे देने के लिए बुलाया जा रहा था उनमें सबसे ज्यादा सजा याफ्ता थे। वहीं मैंने सबसे बड़ा आंदोलन किया था पर आपने मुझे इसलिए नहीं बुलाया कि मैं आरएसएस का मेंबर नहीं था। और वहीं आज मैं 500 रूपए डिप्टी कमिशनर के घर पर देकर आऊं तो वो तमगा कल मेरे घर पर आ जाएगा। ये आपकी वैल्यू है। करप्शन कहां खत्म हुआ। मनी सकुर्लेशन खत्म होने का एक कारण है कि मोदी जी की एक नीति आई कि मैं बैंकों के अंदर यदि गरीब के पास 1000 रुपया पड़ा है तो वो भी जमा करवा लो कि मैं आपका जीवन सुरक्षित करूंगा लोगों के सामने डींग मारूंगा कि मैंने इतने लोगों के खाते खुलवाए और उसके पैसे इक्ट्ठा करके अडानी को अमेरिका में फैक्ट्ररी लगाने के लिए लोन दे दूंगा। मनी सकुर्लेशन के ऐसे कई निर्णय हैं ये एक उदाहरण है जिसकी वजह से सब खत्म हुआ है। आज आप लोन दे रहे हैं ये कारपोरेट हाउसेस में बच्चों को 35–40 हजार में नौकरी लगाया है। आप इनको घर दे देते हैं लोन पर, स्कूटर दे देते हैं। इनको कार लोन पर दे देते हैं और फिर इनसे उगाहने का तरीका निकालते हैं और फिर वो कारपोरेट हाउस का गुलाम बन जाते हैं। और मनी सकुर्लेशन तो हुआ नहीं तो आप इन सारे कारणों पर क्यों नहीं

जाते। तो वो बोला कि बात तो आप सही कह रहे हैं पर अब मैं इसपर आपसे चर्चा करूंगा। तो ऐसी परिस्थिति में जीवन के अंदर समस्याओं को समझना और उनका समाधान विवेकपूर्ण तरीके से करना अपने अब तक उपलब्ध ज्ञान को प्रयोग करना और अपने से बड़े ज्ञान का संकलन और उनकी दिशा लेकर सामूहिक समन्वय बनाकर एक दिशा में बढ़ना और ऐसे देश और प्रदेश में हम सबका सुधार होगा वो असली जीवन का अर्थ है। तो इसको समझने के लिए मैंने समय मांगा आपने दे दिया उसके लिए धन्यवाद। मेरे मन में जो बात थी वो रख दी। विजय प्रताप जी सोशलिस्ट फ्रंट के संयोजक रहे हैं और आज भी उनकी इच्छा तो है पर अब किसी न किसी रूप में हम सबको जुड़ने का कोई प्लेटफार्म दे दो मैं आपसे निवेदन करता हूं।

अजीत झा : आज का वक्तव्य जो रघु भाई ने रखा पहली बार और फिर दूसरी बार भी। उसके बाद हम थोड़ा उसपर मनन करें और आत्मसाध करें वही ठीक होगा। वो कुछ इस तरह का वक्तव्य नहीं था जिसपर बहुत चर्चा की गुंजाइश हो लेकिन बैठे हैं कुछ चर्चा करनी है तो एक–दो बातें आपके सामने रखना चाहता हूं। एक तो ये बहस फिर से शुरू हो रही है जीवन का अर्थ या अर्थपूर्ण जीवन इसकी बहस समाज में हर समय नहीं होती है। अक्सर समाज में 100–200–500 साल तक एक आम राय रहती है कि जीवन का अर्थ क्या है और अर्थमय जीवन क्या है। अब उसको लोग जी पा रहे हैं या नहीं जी पा रहे हैं इसपर बहस होती है अब बहुत ज्यादा बहस नहीं होती है इसीलिए आदमी खुद का भी आकलन कर पाता है और दूसरे का भी आकलन कर पाता है और आदमी को दिक्कत नहीं होती कुछ को सामान्य समझने में और किसी को असामान्य समझने में क्योंकि पैमाने एक ही होते हैं। पर आज जिस दौर से हम गुजर रहे हैं उसमें जो हमारे पैमाने थे, जो आम राय थी वो खत्म हो चुकी है। आम राय खत्म होने का अर्थ कोई अराजकता नहीं होती है। इसका मतलब होता है जो नया अर्थ है वो कहीं न कहीं अपनी पकड़ बना रहा है। ऐसा कोई समय होता नहीं जब जीवन का कोई अर्थ समझा न जाता हो। लेकिन अभी जो जीवन का अर्थ समझा जा रहा है वो कई मायने में बहुत भयावह है

इसलिए इस बहस में पड़ना बहुत जरूरी है। रघु भाई अपनी बात कह रहे थे कि हम किन लोगों को याद करते हैं। मैं इस बात से असहमत हूं। ये ठीक है कि इतिहास की पुस्तकों में हम अभी भी उन लोगों की बात करते हैं जिनका जिक्र अभी रघु भाई कर रहे थे। पर 20 साल के बाद 25 साल के बाद जो इतिहास की पुस्तकें होंगी तो उसमें उन लोगों का नाम होगा ये संदेह का विषय है यदि जैसी चीजें आज चल रही हैं वैसी ही चलती जाएंगी जैसे जिस दिन जयप्रकाश का जन्म होता है उसी दिन अमिताभ बच्चन का भी जन्मदिन होता है और जब जयप्रकाश का शताब्दी वर्ष भी था तो उस समय भी उसी साल अमिताभ बच्चन का 60 वां जन्मदिन था। लेकिन उस समय तो शताब्दी वर्ष था तो कुछ–कुछ हो गया। यदि आप इस साल के अखबारों को देखें तो उस दिन केवल अमिताभ बच्चन का ही जन्म होता है जयप्रकाश का नहीं होता है। और धीरू भाई अंबानी से लेकर तमाम तरह के लोगों के बारे में जबसे हमने होश संभाला था तो हम सुनते आए थे कि कि उनके बारे में हंसी–मजाक चलता था, चोरों की बेईमानों की लिस्ट में उनका नाम आता था और हम देख रहे हैं कि पिछले दस साल से वो एक महानायक के तौर पर देश के युवाओं के सामने हैं। कोई आश्चर्य न हो कि यदि आज के नौजवानों से उनके जीवन का सपना पूछा जाए तो शायद उस लिस्ट में धीरूभाई अंबानी का नाम सबसे ऊपर होगा। उस मायने में ये बहस बहुत जरूरी है और इस बहस को बहुत गंभीरता से करने की जरूरत है।

दूसरा आज की बहस अच्छी चर्चा है लेकिन बहुत हद तक ये हमारी आपसी चर्चा है। इस चर्चा को काफी खुला करना पड़ेगा। ऐसे लोगों के साथ भी करना होगा जिन्होंने शायद समाजवाद शब्द भी न सुना हो जो समाजवादी आंदोलन से वाक़िफ भी न हों और उनके साथ जब हम संवाद करेंगे तो कैसे संवाद करेंगे? क्या बात करेंगे? ये एक सवाल। इस सीरीज में समाजवादी पृष्ठभूमि के जो साथी आएंगे। कई पृष्ठभूमि के साथी आएंगे शायद केवल गांधी, लोहिया की परंपरा के साथी इस सीरीज में आएंगे ये जरूरी नहीं है। पर जो गांधी परंपरा के साथी आएंगे उनमें से ज्यादातर से हमारा परिचय होगा

उनमें से कुछ से हमारी बातचीत हो सकती है। उस संदर्भ में मैं सिर्फ दो बातें कह रहा हूं कि जो गांधी जी का और लोहिया का जिक्र हुआ यहां जीवन के अर्थ के बारे में और अर्थवान जीवन के बारे में तो लोहिया की एक पुस्तक है इतिहास चक्र (व्हील ऑफ हिस्ट्री) और इतिहास चक्र में जो उसका पहला ही अध्याय है उसमें वो उद्देश्य और इतिहास के बारे में बात कर रहे हैं। आदमी का मकसद क्या होता है, आदमी मकसद कैसे तय करता है इसकी चर्चा वो उसके पहले अध्याय में करता है और दूसरी जो एक अनूठी बात है उस पुस्तक की कि वो ये है कि उस पुस्तक में वो कहीं भी समाजवाद की चर्चा नहीं करता। वो कहीं भी न तो मानव का उद्देश्य, न तो इतिहास का उद्देश्य, न अपना उद्देश्य की बात नहीं करता उसमें समाजवाद कहीं नहीं आता बस कहीं एक–दो जगह पर आता भी है तो वो उसी ढंग से आता है जैसे वो उदारवाद को समझाने के लिए आइडिलिज्म को समझाने के लिए जब कुछ जिक्र करना हो तो। तथा यदि कुछ समाज के बारे में बतलाना होता है उस मायने में उसमें समाजवाद एक ट्रम की तरह आता है। जो पूरी पुस्तक है वो मानव को संबोधित है। एक इंसान के नाते वो इंसान को उस पुस्तक में संबोधित कर रहे हैं। इंसानों से बात कर रहे हैं। सारी दुनिया के इंसानों से बात कर रहे हैं और एक इंसान के नाते बात कर रहे हैं। तो वो इस मायने में एक अनूठी पुस्तक है क्योंकि वहां पर वो मुख्यतः समाजवादियों से बात नहीं कर रहे वो सभी लोगों से बात करने की कोशिश कर रहे हैं। और जो मीनिंग ऑफ लाइफ है, मीनिंगफुल लाइफ है जिसका जिक्र रघु भाई ने किया ही तो गांधी जी की पूरी एक अवधारणा है जिसे वो ब्रेड लेबर की अवधारणा कहते हैं। हर आदमी का ये दायित्व है कि वो श्रम करे और ये केवल कोई नैतिक या आध्यात्मिक दायित्व नहीं है बल्कि एक इंसान के इंसान होने की जरूरत भी है जब वो ब्रेड लेबर की बात करते हैं और जो शिक्षा के बारे में उन्होंने प्रयोग किए और दर्शन दिया उसमें हमारे बहुत सारे साथी आज भी ये समझते हैं कि बुनियादी तालीम का मतलब या गांधीवादी शिक्षा का मतलब है कि लोगों को चरखा चलाना सिखाया जाए, या कारपेंटरी सिखाई जाए, या खेती सिखाई जाए तो ये तो

सिखाई ही जाए ये तो गांधी जी ही चाहते थे लेकिन उनकी शिक्षा की ये अवधारणा नहीं कि ये सिखाई जाए, उनकी शिक्षा की अवधारणा थी कि जो आप ज्ञान अर्जित करते हैं, जो शिक्षा अर्जित करते हैं वो आप हुनर के द्वारा अर्जित करिए। आपको इतिहास का ज्ञान अर्जित करना है तो इतिहास का ज्ञान आप चरखा चलाते हुए, चरखे की बात करते हुए और उसमें जो सूत इस्तेमाल होता है उसके बारे में जानं। जब आप सूत का इतिहास जानेंगे तो आप बहुत सारा इतिहास जान जाएंगे। तो एजूकेशन थ्रू वोकेशन। वोकेशनल एजुकेशन ये गांधीयन एजुकेशन का आर्दश नहीं है जिसे हम कई बार गांधीयिन एजुकेशन का मतलब वोकेशनल एजुकेशन समझते हैं। ऐसा नहीं है। एजुकेशन थ्रू वोकेशन। अब ये जो एजुकेशन थ्रू वोकेशन है या ब्रेड लेबर है ये जो गांधी जी की अवधारणाएं हैं ये मनुष्यता को हासिल करने की अवधारणाएं हैं ये एक्सटर्नल अवधारणाएं नहीं हैं। तो अगर इन चर्चाओं को जो आज के समय में जीवन के अर्थ को लेकर बहस है यदि हम उस बहस में जाएंगे तो क्योंकि आज से 20–30 साल पहले सुविधा ये थी कि इस बहस में जाना नहीं पड़ता था। ये बहुत बतलाना नहीं पड़ता था कि जीवन का अर्थ और अर्थवान जीवन क्या है ये पिछले 100–150 सालों से सैटल्ड डिबेट थी, मानदंड कॉमन थे लेकिन आज वो नहीं हैं। तो आज हमें इसे गांधी से, लोहिया से और तमाम और परंपराओं से रिकवर करना पड़ेगा जहां मनुष्यता के मतलब और मनुष्य होने का मतलब और ये केवल एक्सटरनल मतलब नहीं आपके अपने जीवन को आप जब जीते हैं तो जीवन को जीने के क्रम में आपके अनुभव में ये बातें आनी चाहिए। सामान्य आदमी के अनुभव में ये बात आनी चाहिए कि यदि मैं ऐसा नहीं करता हूं तो मेरा जीवन तकलीफमय हो जाता है, मैं ऐसा करता हूं तो मेरा जीवन अच्छा हो जाता है इसलिए नहीं कि किसी महापुरूष ने कहा है इसलिए कि आप उसे प्रयोग करके अपने जीवन में देख सकते हैं। तो थोड़ा सा इसकी जो हमारे समय की महत्ता है, हमारे जीवन में जीवन के अर्थ को लेकर जो खतरा है तो ये खतरे के बारे में कुछ लोगों ने 100 साल पहले भी इस संभावना की ओर आगाह किया था जो वर्तमान सभ्यता की और व्यवस्था की

अमानवीयता है। इसका जिक्र और इसकी संभावना जो प्रेमचंद की कहानी है 'कफन' उसमें जिस किस्म की अमानवीयता की संभावना का जिक्र है। वो काल्पनिक है, मुझे नहीं लगता है कि वो प्रेमचंद के समय में असलियत थी या फिर प्रेमचंद ऐसे किसी व्यक्ति से वाकिफ रहे होंगे जिनका उन्होंने कहानी में जिक्र किया है लेकिन व्यवस्था की अमानवीयता किस तरफ जा रही है इसकी ओर उन्होंने इशारा किया। बहुत सारे अन्य विद्वानों ने, मनुष्यों ने उसका इशारा किया था मगर वो व्यवस्था हमारे सामने आ चुकी है वो मूल्यबोध के तौर पर आज विचारधारा के रूप में हमारे सामने आ चुकी है। हमें उस चुनौती को स्वीकार करना चाहिए। धन्यवाद।

राजनाथ सिंह : विजय भाई ने मेरा नाम आज की बैठक के अध्यक्ष के लिए प्रस्तावित किया, वो मेरे राजनैतिक साथी थे इसलिए मुझे उनके प्रस्ताव को स्वीकार करना पड़ा। यहां दिल्ली विश्वविद्यालय के प्रोफेसर और बड़े–बड़े लोग बैठे थे। उसमें जो कोई व्यक्ति बेहतर क्षमता का होता उसे अध्यक्षता करनी चाहिए थी लेकिन उन्होंने मुझे कहा भी जो क्षमता का होता तो उसे अध्यक्षता करनी चाहिए थी। मैं समाजवादी आंदोलन से लगभग 55 वर्ष से जुड़ा हुआ हूं। मेरे आदर्श गांधी, लोहिया, मधुलिमये और उसके बाद रघु भाई। वो इस सभा के मुख्य अतिथि थे। ये बहुत गंभीर विषय है जीवन का अर्थ और गिरती हुई मानवता और आदर्शमूल्य इस चीज पर विचार के लिए सभा बुलाई गई। मेरे एक दोस्त हैं सैयद्द सबीर अहमद, वो मुझसे बहुत बड़े हैं। उन्होंने मुझसे कहा था कि डॉ लोहिया की मौत से इस देश में एक बड़ा भयानक भूचाल आ गया। मैंने पूछा कि क्या हुआ तो वो बोले कि यदि वो आदमी जिंदा होता तो अंग्रेजी स्कूल, अंग्रेजियत, क्रिकेट और नेहरू परिवार के अवगुणों की चर्चा बहुत तेजी से होती। जब समाजवादी आंदोलन या किसी देश की संस्कृति के बदलने की चर्चा होगी तो उसमें सबसे पहला नाम डॉ लोहिया का होगा। उन्होंने सारी व्यवस्था से अकेले टक्कर लिया। हिन्दी के सवाल पर जब लोकसभा में उनसे पहले जब तक वो लोकसभा के सदस्य नहीं हुए थे। भारतीय संस्कृति के दावेदार कोई भी आदमी हिन्दी में नहीं बोलता था और जो सदस्य हिन्दी

नहीं बोलता था वो बिना बोले 5 साल काट देता था। डाक्टर लोहिया एक ऐसे आदमी हुए जब वो लोकसभा में पहुंचे तो मधुलिमये से लेकर मद्रास के एक हमारे साथी थे जो उत्तर प्रदेश से गोडमहारी तक सबको हिन्दी मे बोलना पड़ा। डॉक्टर लोहिया ने सुप्रीम कोर्ट में भी कहा कि उन्होंने सार्वजनिक जीवन में हिन्दी के प्रयोग की शपथ ली है लेकिन बंदी का कोई अपना स्वाभिमान नहीं होता इसलिए मैं आपके कहने से अंग्रेजी भाषा का विरोध कर रहा हूं। गांधीजी पर बहुत सी बहस हुई मैं भी थोड़ा–बहुत काम गांधी जी पर करता हूं कि जब राजाजी ने हिन्दी के समर्थन में एक वक्तव्य दिया तो गांधी जी से लोगों से पूछा कि अब तो राजा भी हिन्दी के पक्ष में बोल दिए हैं तो गांधी जी ने कहा कि राजा जी बहुत गहरे राजनैतिक व्यक्ति हैं, किन परिस्थितियों, किन कारणों से उन्होंने हिन्दी का समर्थन किया वो मुझे नहीं मालूम लेकिन मुझे लगता है कि पूरी मानसिकता से उन्होंने इसका समर्थन नहीं किया। तो सबसे बड़ी चीज ये है कि जब आज हम लोग यहां पर आए, कुछ मौलिक परिवर्तन के लिए इक्ट्ठा हुए हैं खासतौर से रघु भाई तो दिल्ली में रहते हैं, पूरे देश में समाजवाद की चर्चा में उनका योगदान है और विजय प्रताप जी जो उनके साथी हैं वो भी अपने क्षेत्र में और समाजवाद के लिए काम कर रहे हैं। आप जो बड़े–बड़े विद्वान लोग हैं मैं उनका आभारी हूं। और यहां पर चन्द्रशेखर भवन के एक तरह से संचालक हैं। मेरा उनसे अनुरोध है कि वो यहां पर आएं और सब लोगों को धन्यवाद दें तो समाज के मौलिक परिवर्तन के लिए इस उम्र में, इस सर्दी में और इस कठिन सर्दी में वो यहां आए और उन्होंने अपना मूल्यवान समय दिया इसके लिए उनका धन्यवाद।

एच.एन. शर्मा : साथियों आपने हमारे भवन में अपनी इस महत्वपूर्ण बैठक का आयोजन किया जिसके लिए मैं आपका बहुत आभारी हूं। चन्द्रशेखर जी जब कांग्रेस में थे और जब जयप्रकाश जी का आंदोलन शुरू हुआ तो वो अक्सर हमें कहा करते थे कि आप जरा प्रबंध कर दीजिए। तो मैंने एक बार उनसे प्रश्न किया कि वो तो कांग्रेस के खिलाफ ही हैं लेकिन उन्होंने कहा कि आप जाइए तो हम पटना मैं पटना में उनकी

पहली बैठक का आयोजन करने गया तो वहां 7 आदमी थे। तो मैंने कुछ लोगों को कहा कि आप जाइए जो कांग्रेस में लोग थे या फिर और लोग थे तो चन्द्रशेखर जी नहीं गए लेकिन जब जयप्रकाश जी की रात की मीटिंग हुई तो उसमें करीब 80–85 आदमी थे। तो मैंने उनसे पूछा कि आप क्यों नहीं गए। तो मैंने उनसे पूछा कि आप रात में क्यों गए तो वो बोले कि जो बात रात में की जाती है वो दिन में नहीं की जाती। मैंने फिर फोन करके चन्द्रशेखर जी को बताया कि वहां तो केवल सात ही आदमी हैं तो उन्होंने कहा कि लोग शाम को आएंगे, आप चिंता मत कीजिए। तो आप लोग आज ये मत समझिए कि इतने कम लोग क्यों आए, आज इसकी जरूरत है या मैं आपको बता देना चाहता हूं। और चन्द्रशेखर जी से लोग मिलने आते थे तो वो मुझे और गौतम जी को बता दिया करते थे। वो हम लोगों को बता देते थे कि कौन क्या है। जैसे शर्मा जी के बारे में बता देते थे, रघु जी के बारे में बात देते थे। ताकि उसी हिसाब से चाहे चन्द्रशेखर जी कितना भी व्यस्त रहें लेकिन कभी–कभी वो प्रश्न कर दिया करते थे कि आपने इनको क्यों रोका तो इसलिए वो बता दिया करते थे। इसलिए हम लोगों के इतिहास में था कि किसी जाने देना है, किसे रोकना है जैसे कि राजवंश सिंह जो शर्मा जी के विपरीत के थे तो राजवंश सिंह अगर बैठे हों तो कैसे किया जाए तो हम लोगों को निर्देश था कि कैसे करना है। तो इसी संदर्भ में मुझे और गौतम को चन्द्रशेखर जी बताते थे कि जितने सोशलिस्ट लोग थे तो एक रामविचार पांडे थे वो चन्द्रशेखर के खिलाफ लड़ रहे थे तो उन्होंने कहा कि इनको दस हजार रूपया देना है, वो समाजवादी सोशलिस्ट पार्टी से लड़ रहे थे और उन्होंने मुझे 10 हजार रूपया दिया। तो मुझे वहां उनके घर जाना था पर संकोच हो रहा था मैंने उनसे पूछा कि सर मैं वहां कैसे जाऊं वहां तो बहुत लोग होंगे तो मामला ठीक नहीं है। तो वो बोले कि काशी नाथ मिश्रा से पूछो वो पहुंचा देंगे। तो वो बोले कि जैसे ही वो मीटिंग करके निकलेगा उससे एक मिनट चाय के लिए मिल लेना तो मैं बहुत कोशिश करके उनसे मिला तो जैसे ही चुनाव खत्म हुआ तो वो मेरे ही

पास आकर 7000 रुपया वो हमें दे गए और बोले कि शर्मा जी सात हजार रूपए बचे हैं तो मैंने कहा कि क्यों तो वो बोले कि केवल 3000 रूपए ही खर्च हुए हैं।

मैं विजय प्रताप जी के बारे में ज्यादा नहीं जानता था लेकिन चन्द्रशेखर जी जानते थे और उनकी लिस्ट में इनका नाम था और आज भी अगर उनकी पुरानी डायरी होगी तो उसमें होगा। एक बार हम प्रभाष जोशी के यहां पर खाने के लिए गए। तो विजय प्रताप जी का बाई चांस टेलीफोन आ गया तो मैंने उनसे काफी लंबी बात की तो मैंने पूछा कि ये कौन हैं इनके बारे में चन्द्रशेखर जी बात करते हैं तो इनका 25–30 मिनट तक वो विजय प्रताप जी के बारे में पूरी कहानी बताई। उसके बाद हमारा ध्येय बदल गया और जीवन में कभी किसी बड़े लीडर की हाथ की चाय बनाई हुई पी है तो वो एक ही बार पी है और वो हैं मधुलिमये जी के हाथ से। चन्द्रशेखर जी का एक ड्राफ्ट था और उन्होंने कहा कि मधुलिमये जी को दिखा लो तो मैं जब दिखाने के लिए गया तो वो ड्राफ्ट में सुधार कर रहे थे तो वो अंदर गए और चाय का गिलास उठाकर लाए और जब मैं चाय का गिलास उठाया तो वो बोले कि नहीं तुम यहां रखो मैं ही तुम्हारे लिए चाय बनाऊंगा। तो जो लोग उन दिनों संसद में समाजवाद के लिए बोला करते थे लेकिन जो पार्टी इस समय है वो तो नहीं बोलेगी जो कुछ नहीं बोलना था। लेकिन वहां पर मधुलिमये कितने थे, जॉर्ज फर्नांडिस कितने थे, मधु दंडवते कितने थे। ये लोग बोलते तो थे लेकिन जो लोग हैं जो खुद को समाजवादी कहते हैं उनका आप संसद में योगदान देखिए कि वो संसद में किन शब्दों का प्रयोग करते हैं। देखिए आज के जमाने में तो कम्प्यूटर हो गया है, आपको सभी डाटा मिल जाता है, आप देखिए जब बिरला पर बोलना होगा तो चन्द्रशेखर को बोलना हुआ तो मैं, डॉ. एस. के. गोयल, आर.सी. मिश्रा स्कूल में चन्द्रशेखर जी 11–12 बजे रात में भी बैठे रहते थे और उसका दूसरे दिन नोट बनाएं तो संसद में जो लोग समाजवाद का नारा लगाते थे वहां पर अब बहुत सूना दिखाई दे रहा है। न तो उसमें मधुलिमये हैं, न कृष्णकांत आदि। आपने यहां से काम शुरू किया है। जयप्रकाश, लोहिया या हमारे मधुलिमये, मधु दंडवते, गोखले इन सब

लोगों की रघु ठाकुर जैसे समाजवादियों से उम्मीद रखे हुए हैं कि आप अर्थपूर्ण जीवन जिए और आगे भी जिएं और समाजवादियों का मार्गदर्शन भी करते रहें। धन्यवाद।

स्व. श्रीमती उषा परिख की स्मृति में : बुवेन विविर श्रृंखला–2016

(Dedicated to the Memory of Usha Parikh Buven Vivir Series 2016)

"जीवन का अर्थ तथा अर्थपूर्ण जीवन" :

व्याख्यान–सामदोंग रिंपोचे

तिथि : 20 फरवरी 2016

स्थान : इंडिया इंटरनेशनल सेंटर

20 फरवरी 2016 को सेडेड ने दिल्ली के इंडिया इंटरनेशल सेंटर में बुवेन विविर श्रृंखला के तहत स्वर्गीय श्रीमती उषा पारीख की स्मृति में 'जीवन का अर्थ और अर्थमय जीवन' विषय पर एक विचार गोष्ठी का आयोजन किया जिसमें मुख्य व्याख्यान सामदोंग रिंपोचे जी ने दिया। बैठक की शुरूआत करते हुए विजय प्रताप ने कहा :

विजय प्रताप : आज सामदोंग रिंपोचे जी अस्वस्थ्य थे लेकिन आप सबके लिए उनके मन में जो प्रेम है, उसके कारण आज वो आपके सामने हैं। आज उनका शरीर इसकी इजाजत नहीं देता था वो केवल अपने मन की स्थिति के कारण आपके बीच आए हैं। अभी पवन जी उनका परिचय देंगे लेकिन आज उनका जितना मन होगा उतना ही कहेंगे और मन ज्यादा करे तो भी वो कम कहें। मेरी उनके सचिव से बात हुई। उनका कहना है कि जब भी रिंनपोचे जी की स्वस्थ स्थिति होगी तो वो हमें ज्यादा समय दे पाएंगे और हम इस विषय पर उन्हें ज्यादा देर तक सुन पाएंगे।

मैं स्व. श्रीमती उषा परिख के बारे में चंद लाइनें कहना चाहता हूं। हमारी कुल श्रृंखला उषा जी को समर्पित है। वो एक समाजवादी परिवार में पैदा हुई थीं। ये ऐसा परिवार था जहां राष्ट्रीय आंदोलन में जो भी समाजवादी विचार के लोग थे, उनकी बैठकें इनके यहां होती थीं। 1942 में जब डॉ. उषा मेहता और उनके साथी लोग आजाद हिंद रेडियो चलाते थे तो वो रेडियो भी उनके घर से ही चलता था। उषा परिख को आचार्य नरेन्द्र देव, यूसुफ मेहर अली आदि का सानिध्य मिलता था लेकिन वो पूर्णकालिक

राजनैतिक कार्यकर्ता नहीं थीं। राजनीति के बारे में उनकी बहुत पैनी दृष्टि थी। जब आपात स्थिति लगी तब उनकी आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं थी, इस कारण उन्होंने अपने गहने आदि बेचकर और अपनी निजी संपत्ति में से आपात स्थिति के खिलाफ श्री जार्ज फर्नांडीस के नेतृत्व में चल रहे भूमिगत आंदोलन में मदद की। उन्होंने केवल पैसे से ही नहीं बल्कि खुद जोखिम लेकर लोकतंत्र वापिसी के आंदोलन में सक्रिय भागीदारी की थी। वो समाजवादी विचारधारा को एक राजनैतिक विचारधारा भर के तौर पर नहीं देखती थीं, बल्कि एक समग्र दर्शन और एक जीवन शैली के तौर पर देखती थीं। इसलिए इस वर्ष जीवन का अर्थ और अर्थमय जीवन की इस श्रृंखला का प्रथम व्याख्यान अनुपम मिश्र ने दिया था। मैं इस सीरीज के बारे में चंद वाक्यों में ही कहूंगा ताकि मैं आपके और रिंपोचे जी के बीच में दीवार न बनूं।

1980 में दुनिया में एकतरफा जागतिकरण का जो कार्यक्रम शुरू हुआ। भारत में 1991 से इसमें ज्यादा तेजी आयी। उसके बाद से भौतिकवादी पागल दौड़ में गुणात्मक तेज़ी आई है। भौतिकवाद तो मानव स्वभाव का सदा से एक हिस्सा रहा है। लेकिन आधुनिकतावादी भौतिकवाद को पागल दौड़ के अतिरिक्त कोई संज्ञा नहीं दी जा सकती। इसमें पैसा कमाना और जुटाना ही जीवन का मुख्य लक्ष्य हो गया है। उस पैसे के बल पर अन्धा उपभोग। अन्धा इस मायने में कि इसका हमारे समाज, परिवार, परिवेश और प्रकृति पर क्या असर पड़ रहा है, इस पर सोचने का वक्त नहीं। समाज, परिवार और भविष्य की पीढ़ियों पर इसका क्या प्रभाव हो रहा है, इस पर विचार की न 'फुरसत' और न 'जरूरत'। पागल दौड़ की संस्कृति में जो सफल नहीं हैं वो कुछ नहीं है। और सफलता के लिए नैतिक होना जरूरी नहीं है। इस तरह से मर्यादाएं भंग हो रही हैं, जिसमें परिवार, संस्कृतियां और समुदाय आदि सभी में लोगों में अपने आप में भेद हो रहे हैं। हमारे चारों तरफ एक अजीब तरह का वातावरण पैदा हो रहा है, हमारे जीवन से अर्थ इस हद तक रीत गया है कि हम में से कुछ लोग जीवन का अर्थ पाने के लिए अपने शरीर पर बम्ब लगाकर कुछ और लोगों को साथ में लेकर मर जाना बेहतर

समझते हैं बजाए इसके कि जिंदा रहते हुए अपने जीवन के संघर्ष को जारी रखा जाए। इस व्याख्यान श्रृंखला को चलाने के पीछे इसी तरह का संदर्भ है। आज हमने श्री आरिफ मोहम्मद खान तथा आशीष नंदी जी से भी आग्रह किया कि वो भी उपस्थित होकर हमारा मार्गदर्शन करें; उन्होंने हमारे आग्रह को स्वीकार किया तथा वो भी हमारे बीच में मौजूद हैं। अंत में दोनों ही अध्यक्षीय टिप्पणियां करेंगे। आरिफ भाई इस विषय पर पिछले वर्ष बोल चुके हैं।

पवन गुप्ता : नमस्कार दोस्तों। रिंपोचे जी का परिचय देना मेरे लिए सौभाग्य की बात भी है और मुश्किल भी है। साथ ही मैं रिंपोचे जी का परिचय देने में खुद को बहुत छोटा भी महसूस कर रहा हूं। मैं उनको लगभग बीस साल से जानता हूं। हम लोग पहली बार बनारस में लोक विद्या अधिवेशन की पूर्व तैयारी में मिले थे और उस समय रिंपोचे जी वहां पर तिब्बती संस्था के डायरेक्टर थे और बाद में युनिवर्सिटी बनने के बाद वाइस चांसलर रहे। उन्होंने वहां आकर 'मॉर्डन साइंस' पर एक भाषण दिया था। मैं इन्हें पहली बार सुन रहा था। इसके पहले मैंने केवल धर्मपाल जी से इनके बारे में बातें सुनी थीं। धर्मपाल जी अलग–अलग संदर्भों में अक्सर एक किस्सा सुनाया करते थे कि बनारस में एजुकेशन या शिक्षा पर कोई बैठक हुई थी जिसमें रिंपोचे जी बात कर रहे थे और धर्मपाल जी वहां पहुंच गए। धर्मपाल जी के शब्दों में कहें तो वहां रिंपोचे जी ने कहा कि "एजुकेशन तो मैं जानता नहीं हूं लेकिन शिक्षा को थोड़ा–बहुत समझता हूं और हमारी परंपरा में शिक्षा को शील, समाधि और प्रज्ञा कहा जाता है।" धर्मपाल जी इस बात को आगे बढ़ाते हुए बोले कि यदि ऐसा है तो भारतवर्ष शायद दूसरे देशों से कम शिक्षित तो नहीं ही होगा। तो रिंपोचे जी का ये परिचय मुझे धर्मपाल जी से मिला था। मैं यह जानता था कि उन्होंने रिंपोचे जी को कभी साफ–साफ कहा नहीं पर वो उन्हें बहुत ऊंचा मानते थे। जब मैंने 1996–97 में रिंपोचे जी का वो 'आधुनिक विज्ञान' पर दिया भाषण सुना तो रोंगटे खड़े होने वाला मुहावरा कहना शायद अतिश्योक्ति होगी लेकिन मेरा अनुभव कुछ–कुछ वैसा ही रहा। क्योंकि उससे पहले मैंने इस तरह की बातें इतने

सहज ढंग से कही, कभी सुनी नहीं थीं। मैंने तुरंत इनके पास जाकर इनसे अनुरोध किया कि हम लोग देहरादून, मसूरी में एक गोष्ठी करेंगे on the politics and philosphy of modern science (ऑन द पोलिटिक्स एंड फिलोसफी ऑफ मॉडर्न साइंस एडं टैक्नोलॉजी) और मैंने निवेदन किया कि रिंपोचे जी उसमें आएं और उसका उद्घाटन भी उन्हीं के मार्फत हो। मैं रिंपोचे जी को तब उतना जानता नहीं था लेकिन उन्होंने कहा कि मैं तुम्हें 10–15 दिन के बाद बताऊंगा। और मैंने ये सोचा कि जिस तरह से मेरा अधिकतर जिन भी विद्वान जनों से संपर्क हुआ तो वो भी ऐसा ही कहते थे कि बाद में बताऊंगा और फिर मुझे खुद ही उन्हें फोन करके पूछना होता था। तो शायद इस बार भी मुझे ऐसा ही करना होगा। लेकिन इस बार ऐसा नहीं हुआ। हफ्ते या दस दिन में रिंपोचे जी का मेरे पास खुद फोन आया और इन्होंने कहा कि मैं आऊंगा। फिर 10–15 दिन बाद उनका फिर से फोन आया और इन्होंने कहा कि मैं फलां तारीख को आऊंगा। तो उस समय मान लो कि हमारी कार्यशाला 21 को शुरू हो रही है तो इन्होंने कहा कि मैं 20 तारीख को ही आ जाऊंगा तो मुझे लगा कि इतने व्यस्त आदमी हैं, ऐसा कैसे संभव है कि वो एक दिन पहले ही आ जाएंगे। मुझे लगा कि शायद उनसे तारीख सुनने में भूल हो गई हो। इसलिए मैंने कहा कि रिंपोचे जी वो कार्यशाला 20 को नहीं 21 को शुरू हो रही है। इसपर उन्होंने कहा कि हां मैं जानता हूं लेकिन आप तो मुझसे शुभारंभ करवाना चाहते हैं और यदि ट्रेन लेट हो गई तो आपके कार्यक्रम में व्यवधान आएगा इसीलिए मैं एक दिन पहले ही आ रहा हूं। मैंने ऐसी बातें कभी किसी से सुनी नहीं थीं।

मैं आपको एक और घटना बताना चाहता हूं जो शायद 2004 की है। मैंने एक बार इनसे हफ्ते भर का समय देने के लिए आग्रह किया था। उस समय मैं मध्यस्थ दर्शन नाम की एक फिलोसफी है जिसके हमारे यहां सिद्ध में हफ्ते भर के शिविर होते थे जिसमें उस दर्शन का प्रस्ताव रखा जाता था। मैं चाहता था कि रिंपोचे जी उसको जांचें, उसका मूल्यांकन करें। मैंने इनको बहुत झिझकते हुए कहा क्योंकि उस समय ये तिब्बती

सरकार के प्रधानमंत्री के पद पर भी थे। ऐसे में उनके पास समय का अभाव रहता होगा लेकिन फिर भी मैंने इनके सामने वो प्रस्ताव रखा तो इन्होंने कहा कि अच्छा कभी बात करेंगे। फिर इनका एक दिन देहरादून से फोन आया और इन्होंने कहा कि मेरे पास शाम को कुछ वक्त है, तुम तब आकर मुझसे बात कर सकते हो। तुम आकर मुझे बताओ फिर मैं निर्णय लूंगा। फिर हमारी एक–डेढ़ घंटे तक बात हुई और ये बोले कि ठीक है मैं आऊंगा। ये 2004 में उस शिविर में आए और आने के एक दिन बाद ही इनके पास अमेरिका से एक फोन आया। तिब्बती सरकार के जो प्रतिनिधि वाशिंगटन में रहते हैं उनका फोन था। उनका कहना था कि उनके पास भारतीय दूतावास से फोन आया है और उन्होंने कहा है कि हमारे प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह जी अमेरिका आ रहे हैं और उनको यानि मनमोहन सिंह जी को तिब्बतीय पक्ष बता देना चाहिए इससे पहले कि वे अमेरिकी राष्ट्रपति से मिलें। तो इस संदर्भ में तिब्बती सरकार के प्रतिनिधि का रिंपोचे जी के पास फोन आया कि इस बात को आपसे ज्यादा अच्छी तरह कोई नहीं बता पाएगा इसलिए आप अमेरिका आकर मनमोहन सिंह को अपना पक्ष बता दीजिए। इन्होंने कहा कि मैं सरकार से एक हफ्ते की छुट्टी लेकर आया हूं और मैं यहां इधर एक हफ्ते रहने के लिए कटिबद्ध हूं। मैं कहीं नहीं जाने वाला। आपको अगर लगता है कि आपको मुझसे बात करना जरूरी है तो आप हिन्दुस्तान आ जाइए। मुझसे मिल लीजिए। तो वो अमेरिका से दिल्ली आए और दिल्ली से मसूरी के पास एक छोटी सी जगह है कैंपटी वहां आए। रिंपोचे जी उनसे डेढ़ से तीन बजे के बीच मिले, उनके साथ खाना खाया। डेढ़ से तीन बजे के बीच में इसलिए मिले क्योंकि उस समय गोष्ठी में खाना खाने के लिए छुट्टी होती थी। उसके बाद उन्हें तीन बजे विदा किया और ये आकर कक्ष में तीन बजे बैठ गए। मैंने इस तरह की कटिबद्धता, इस तरह का सेंस ऑफ कमिटमेंट और जिम्मेदारी की भावना कहीं और नहीं देखी। मेरा इनसे 20 साल का जो संपर्क रहा है, उसमें मुझे बहुत कुछ मिला है। इनका परिचय मैं क्या दूं? इन छोटी–छोटी घटनाओं से आपको शायद कुछ मिले।

एक और बात मैं आपको कहना चाहूंगा कि मैंने रिंपोचे जी को कम से कम दो–तीन बार अपना परिचय देते हुए सुना है और वो मैं आपके सामने रखना चाहूंगा। एक से ज्यादा बार मैंने उन्हें यह कहते सुना है कि "I am a savage man and I am proud to be one". (आई एम ए सेवेज मैन एडं आई एम प्राउड टू बि वन।) दूसरा परिचय वो देते हैं कि "I live in the seventh century and I like to live in the Seventh Century" (आई लिव इन द सेवेन्थ सेन्चुरी एडं आई लाइक टू लिव इन सेवन्थ सेन्चुरी)। तो रिंपोचे जी यदि अपना परिचय दें तो शायद ऐसे ही दें। बाकी मैं समझता हूं कि सब जानते होंगे कि इन्होंने सारनाथ में तिब्बती संस्थान है, जो युनिवर्सिटी है, उसको इन्होंने सच में ही एक–एक ईंट जोड़कर खड़ा किया है। सिर्फ इमारत नहीं, पर उसको पूरा बनाने में, उसकी पूरी सरंचना में, उसे एक दिशा देने में रिंपोचे जी का हाथ रहा है। उनकी पूरी समझ, सोच और मेहनत उसमें गई है। आशीष दा यहां बैठे हैं, इनकी मैंने एक किताब पढ़ी थी the hegemony of modern science (दि हैजेमनी ऑफ मॉर्डन साइंस) और वो किताब उन्होंने तीन लोगों – धर्मपाल, मलेशिया में रहने वाले इदरिस मोहम्मद तथा ए.के. शरण को समर्पित की। तो मैं ए. के. शरण के बारे में बहुत उत्सुक था और फिर मैंने पहली बार रिंपोचे जी से उनके बारे में जाना और फिर दो–तीन बार उनसे मिला तो मैं ये कहना चाहता हूं कि शरण साहब बहुत मुश्किल आदमी थे। ये मैं रिंपोचे जी के शब्दों में बता रहा हूं। क्योंकि वो कोई समझौता नहीं करते थे। रिंपोचे जी उनको मना पाए–ये अपने आप में बड़ी बात है – कि उनका लिखा पूरा साहित्य, तिब्बती संस्था के जरिए छपवाने के लिए। शायद अभी तक 10 खंड छपे हैं और उनको पढ़ना बहुत मुश्किल है। मैं पढ़ने की कोशिश करता हूं, पूरी बात समझ में नहीं आती है लेकिन ये समझ में जरूर आता है कि ये आदमी कहीं और से लिख रहा है। ये आदमी सिर्फ बुद्धि से नहीं लिख रहा है पर उस बुद्धि के साथ–साथ कुछ और भी है, जिसे हम शायद विज़डम या रेवेलेशन कहते हैं या अंदर से कुछ एहसास, कुछ आपको रिवील हुआ है, तो वहां से वो लिख रहे हैं। तो उनसे परिचय

और उनके इस काम को छापना और उनको मनवा लेना ये एक बहुत बड़ा काम रिंपोचे जी के जरिए हुआ। रिंपोचे जी ने प्रयास किया कि भारत में बसे मनीषियों को पहचानें और उनके संपर्क में आएं और इसमें ये सफल हुए। जे. कृष्णमूर्ति, रोमेन पानिकर और सरन साहब कुछ ऐसे नाम हैं जिन्हें मैं लेना चाहूंगा। जिनके साथ रिंपोचे जी के घनिष्ठ संबंध बने।

मैं 20 साल से इनको अपना मार्गदर्शक मानता हूं तो उसके पीछे जो इनकी समझ हमें मिली है–आधुनिकता के बारे में, महात्मा गांधी के बारे में। मुझे महात्मा गांधी की समझ सबसे पहले धर्मपाल जी से मिली, उन्होंने मुझे प्रेरित किया गांधी जी को पढ़ने के लिए और वो बताते रहते थे कि इस तारीख का वो पढ़ लो, उस तारीख की स्पीच पढ़ लो, लेकिन रिंपोचे जी से अनेक गोष्ठियों और चर्चाओं में गांधीजी की जो समझ मिली है और जो आधुनिकता की समझ मिली है और परंपराओं की समझ मिली है वो कहीं और से आती है। वो सिर्फ किताबी नहीं है। वो ज्ञान बहुत गहन चिंतन, मनन से आया है। इस चिंतन–मनन की बात से मुझे एक और घटना याद आती है।

कोई 2004 की बात है, हफ्ते भर की कार्यशाला थी और मैं बहुत हिचकिचा रहा था कि मैंने इन्हें हफ्ते भर के लिए बुला लिया था। इन्होंने प्रधानमंत्री का पद संभाल रखा है और मैंने उन्हें यहां बुला लिया। मैंने इन्हें बुलाकर कहीं कोई गलती तो नहीं की? मैं इनसे तीसरे दिन मिलने गया और मैंने इनसे पूछा कि रिंपोचे जी सब ठीक तो चल रहा है ना? तो उन्होंने कहा कि सब ठीक चल रहा है लेकिन आपकी शिक्षा ने ये क्या कर दिया? तो मैंने बोला कि हमारी शिक्षा ने क्या किया वो मैं समझा नहीं। तो इन्होंने कहा कि ये जो शिविर में प्रतिभागी बैठे हैं इनको बोलिए कि ये इतने प्रश्न न करें। तो मैं बोला रिंपोचे जी मैं आपकी बात को समझ रहा हूं क्योंकि आज की शिक्षा में तो प्रश्न करना बहुत बड़ी बात मानी जाती है। तो इन्होंने कहा कि इनको बोलिए कि इतने प्रश्न न करें। हमारी परंपरा में हम पहले सुनते हैं, फिर उसपर चिंतन–मनन करते

हैं और फिर जब वो पच जाता है तब हम प्रश्न करते हैं। तो ये छोटे–छोटे कुछ किस्से आपके सामने रखे। मेरे लिए तो ये गुरू से भी बढ़कर हैं एक तरह से और इनकी कृपा हमारे ऊपर बीस साल से रही है, जिसे मैं पूर्व जन्म का कुछ पुण्य मानता हूं। इनका औपचारिक परिचय ये है, जिसे रिंपोचे जी पसंद नहीं करेंगे लेकिन मध्यप्रदेश में एक नई युनिवसिर्टी सांची युनिवर्सिटी ऑफ इंडिक एडं बुद्धिस्ट स्टडीज खुली है। रिंपोचे जी उसके चांसलर हैं। ये दस साल तक तिब्बती सरकार के पहले चयनित प्रधानमंत्री थे। उसके पहले ये अपनी पार्लियामेंट के स्पीकर रहे। और उसके पहले तिब्बती संस्था के वाइस चांसलर थे तो ये तो छोटा परिचय है और अब आपके सामने रिंपोचे जी। ये एशोसिएशन ऑफ इंडियन यूनिवर्सिटीज के अध्यक्ष पद पर भी रहे।

विजय प्रताप : श्रृंखला का परिचय बताते समय मैं एक बात भूल गया। इसमें सांस्कृतिक और आध्यात्मिक शिक्षा के साथ–साथ एक समानांतर राजनेता जो अपनी जमीन पर खड़े होकर आज भी उन मूल्यों के लिए कर रहे हैं और इस पागल दौड़ के हिस्से नहीं हैं। इसमें रघु ठाकुर का वक्तव्य हो गया है और हमारी उपेक्षा है, आपकी उपस्थिति तो यदि कोई आपकी राय में हो सकते हैं जिनसे हम इस विषय पर सुनें तो आपके सुझाव आमंत्रित हैं।

सामदोंग रिंपोचे : श्रद्धेय आशीष नंदी जी, और प्रिय मित्रो। मेरी आवाज कमजोर है और कभी–कभी उसके साथ उच्चारण भी अस्पष्ट हो जाता है, इसलिए इस समय इस विद्वत मंडल के समक्ष बोलना उचित तो नहीं था लेकिन फिर भी मित्रों के आग्रह से मैंने इस कार्य को स्वीकार किया है। बहुत लंबा परिचय मेरे विषय में पवन जी ने दिया है। पवन जी इस प्रकार की बहुत सारी गलतफहमियां पाले रहते हैं तो बाकी लोग भी गलतफहमी में न पड़ें, इसकी मैं चेतावनी पहले ही देना चाहता हूँ। आज का विषय बहुत गंभीर है और इसके दोहरे अर्थ भी हैं 'जीवन का अर्थ और अर्थमय जीवन'। इसको देखने की अनेक दृष्टियां हो सकती हैं। राजनैतिक दृष्टि से भी जीवन को देखा जाता है,

सामाजिक दृष्टि से भी, दार्शनिक दृष्टि से भी और धार्मिक या आध्यात्मिक दृष्टि से भी जीवन के अर्थ अलग–अलग किए जा सकते हैं। जीवन का अर्थ अलग–अलग करने के अतिरिक्त जो व्यक्ति जीवन जी रहे हैं वो भी अपने जीवन के अर्थ के विषय में या तो कभी सोचते नहीं हैं कि जीवन का अर्थ क्या है? इसपर उनका प्रश्न नहीं होता है। प्रश्न आते हैं तो वो अपनी–अपनी व्यक्तिगत समस्याओं या आकांक्षाओं के संदर्भ में जीवन के अर्थ को देखते हैं। ये सब मैं इसलिए कह रहा हूं कि इसके कारण जीवन के अर्थ को देखने की जो प्रेरणा मन में आती है या उसकी चेष्टा करते हैं, उससे कभी–कभी ऐसा भटकाव हो जाता है। एक प्रचलित कहानी है कि 5–6 लोगों ने हाथी को टटोला और हर व्यक्ति ने हाथी के अलग–अलग चित्र प्रस्तुत किए उस तरह से जो जिस दृष्टि से या जिस संदर्भ से या जिस अभिलाषा से जीवन के अर्थ को ढूंढ़ते हैं उसी संदर्भ में और उसी हिसाब से जीवन के अर्थ का अपना–अपना व्याख्यान कर लेते हैं या बैठा लेते हैं और उसमें जीना सरल लगता है; बहुत अटपटा नहीं लगता।

सचमुच जीवन के अर्थ को कोई समझता हो या उसका आभास हो जाए तो उनको जीने में असुविधा अनुभव होने लगती है। जीने में असुविधा इसलिए होती है कि जीवन का अर्थ असल में स्वाधीन या स्वराज ही होना चाहिए और है भी परंतु बहुत गिने–चुने लोग ही ऐसे मिलते हैं जो स्वराज के अर्थ में अपने जीवन को जीते हैं।

चारों तरफ हवाएं बह रही हैं। उनकी अपनी–अपनी शक्तियां हैं। लोगों के ऊपर इनके जो दबाव हैं, इस खींचातानी के अंदर स्वाधीनता को, स्व–पहचान को या स्वराज को हम खो देते हैं और दूसरों की इच्छानुसार या दूसरे शब्दों में कहें तो गुलामी या दासता का जीवन जीते हैं। आज जिस प्रकार की आधुनिक प्रथा, जिसको सभ्यता कहने में भी थोड़ा संकोच होता है – यदि हम आधुनिक असभ्यता कहें तो ज्यादा ठीक है – उसमें कोई व्यक्ति अपनी समग्र अस्मिता को लेकर जी नहीं पाता है। हम केवल उपभोग मात्र करने वाले एक दास हैं, हमें रोज अधिक से अधिक उत्पादनों का उपभोग करना

होता है। उपभोग का अर्थ यह है कि उसको एकदम समाप्त कर दिया जाना। अंग्रेजी में दो शब्द हैं उपयोग और उपभोग (यूटिलाइजेशन और कंजम्पशन)। हम किसी भी चीज को उपयोग करने की स्थिति में नहीं हैं। हमको उपभोग करना है और खत्म करते चले जाना है फिर चाहे वो जो भी संसाधन हों, विशेषरूप से प्राकृतिक संसाधन। प्रकृति के साथ हमारा सहज रूप से जीना संभव नहीं रह गया है। आज तो हम सहज रूप से सारे संसाधनों को खपाते हुए, समाप्त करते हुए और अधिक से अधिक बाजार से सामग्री खरीदने का प्रयास करते हैं या इसकी क्षमता रखते हैं। ये उपभोगिता, कंज्यूमरिज़्म और इसकी निरंतरता दूर से नियंत्रित होती है, जिसे अंग्रेजी में रिमोट कंट्रोल कहते हैं; यानि हमें स्पष्टता से ज्ञात नहीं होता है कि हम नियंत्रित हैं और पर–संचालित हैं। तो इसलिए हम स्वतंत्र होकर जीवन नहीं जी रहे हैं।

हम जीवन को मात्र खर्च कर रहे हैं, व्यय कर रहे हैं, समाप्त कर रहे हैं, उसका उपभोग कर रहे हैं। तो इस हिसाब से जीवन के अर्थ को समझना या जीवन का अर्थ खोजना या जीवन का अर्थ खोजने के लिए शोधकर्ता होने के लिए भी जो थोड़ी बहुत योग्यता चाहिए, उस योग्यता को भी हमने लगभग समाप्त कर दिया है। तो ऐसी परिस्थिति में मैं बहुत असुविधा महसूस कर रहा हूं कि हम सब सामूहिक रूप से जीवन के अर्थ को कैसे खोजें और उसको समझने के लिए कैसे प्रयास किए जाएं? जीवन और मरण ये दो घटनाएं हैं, जो व्यक्ति के संदर्भ में घटती हैं। हम जन्म लेते हैं, जीते हैं और फिर मर जाते हैं और ये एक यात्रा या एक काल–अवधि के बीच में व्यक्ति का एक विवशता में जीते चले जाना, ये दिखाई दे रहा है। इसे जीवन तो कहना ही पड़ेगा। जन्म और मृत्यु के मध्य में जो कालावधि है और जिसमें हम अपने को घसीटते चले जाते हैं, मरे हुए जैसे, फिर भी हमें घसीटना पड़ता है और इसे हम जीवन की संज्ञा देते हैं।

जीवन यथार्थ में एक कार्यशीलता होनी चाहिए, व्यक्ति एक संरचना है, उस सरंचना में तीन अवयव या घटक हैं। वो तीन घटक इक्ट्ठे होते हैं और उसका समन्वय और उसकी समता ठीक से, संतुलन से चलती हैं तो उसको जीवन कहते हैं। ये तीन घटक हैं काया, वाक् और चित्त। काया का अर्थ है देह, शरीर। वाक् माने वाणी, आवाज, बोली, भाषा। चित्त का अर्थ जानने की, सोचने की और परिकल्पना करने की शक्ति। धार्मिक दृष्टि से देखा जाए तो जो संतति पूर्व जन्म से आकर इस जन्म में और अगले जन्म में भी चलती जाती है। और जन्म–जन्मान्तर नहीं मानने वालों में भी जो मन की संतति है, चित्त संतति है, जन्म से लेकर मृत्यु तक उसकी निरंतरता रहती है। जन्मजन्मान्तर को न मानने वालों को यह मालूम नहीं है कि शरीर की मृत्यु होती है तो चित्त संतति का क्या होता है? कहां जाती है? साइंसदा लोगों के पास कोई प्रमाणिक दृष्टि नहीं है कि वह भी (संतति) समाप्त होती है या समाप्त नहीं होती।

जब ये तीन घटक इक्ट्ठे होते हैं और ये एक–दूसरे पर परस्पर आश्रित हैं। इन तीनों के बीच का परस्पर संबद्ध, समय की दृष्टि से, समय के रूप में जब संतुलित होता है तब मनुष्य जीवित माना जाता है। शरीर और वाक् के साथ, चित्त संबंध विच्छिन्न हो जाता है तो उसे मृत्यु कहते हैं। मृत्यु इसलिए कि वो तीनों का संगठन विघटित होता है तो क्रियाशीलता यानि कुछ करने के योग्य हम नहीं रहते हैं, अभिव्यक्त करने के योग्य नहीं रहते हैं। आजाद जैसे हो जाते हैं, अक्रियाशील जैसे हो जाते हैं तो उसे मृत्यु कहते हैं। जब ये तीनों समूह एक–दूसरे पर अच्छे प्रकार आश्रित होते हुए एक–दूसरे के साथ सहयोग करते हुए रहते हैं तब हम कार्य संपादन कर सकते हैं।

कार्य संपादन करने में चित्त प्रधान है। और यह माना जाता है कि चित्त – मूल स्वभाव में – वो किसी के आधीन नहीं है, वो स्वाधीन है, स्वतंत्र है। वो स्वतंत्र जब तक रहता है तब तक वाचिक और कायिक कार्य चित्त की इच्छानुसार या निर्देशानुसार चलते हैं। जो मनुष्य को पशु जगत से पृथक करने वाली एकमात्र चीज है, वह हमारा विवेक

और परिकल्पना की क्षमता है। विवेक का जो स्थान है विशेष रूप से मानव समाज में, मनुष्य के संदर्भ में, वह अ–कार्य और कार्य के बीच में भेद करता है। कर्त्तव्य क्या है, अकर्त्तव्य क्या है, कुशल कार्य क्या है अकुशल कार्य क्या है? इसका भेद विवेक करता है। विवेक के लिए, जो विवेक करने वाले कर्त्ता, चित्त है वो अपने सहज रूप में, स्व के रूप में स्थित होना आवश्यक है। लेकिन हमने उसके स्वतंत्र रूप को, उसकी स्वाधीनता को अनेक माध्यमों से संचालित करने का काम किया है। इसमें तथाकथित सभ्यता, समाज, वांग्मय और आधुनिक एजुकेशन ने अपनी–अपनी भूमिका निभाई है। शिक्षा तो समाप्त हो गई, केवल एजूकेशन रह गई है; एजुकेशन का अर्थ हो गया है – एक प्रकार से इनडोक्ट्रीनेशन या ब्रेन वाशिंग। एजुकेशन का काम है कि सुव्यवस्थित रूप से 15–20 साल तक मनुष्य को एक ढर्रे पर चलाते रहें। विशेष रूप से यहां पर मैकाले की बहुत सोच–समझकर बनाई हुई पद्धति है, जिससे हम लोगों का बहुत अच्छी तरह से इनडोक्ट्रीनेशन हो जाता है और ब्रेन वाशिंग भी हो जाता है, जिसके कारण हमने स्व को खो दिया है। स्व को खोने के कारण हमारे जीवन का अर्थ नकल करना ही रह गया है; जितना अच्छा नक्ल करेंगे उतना अच्छा हम जी रहे हैं या उतना अच्छा हम जीवन का अर्थ समझ रहे हैं। नकल करने में थोड़ा पिछड़ जाते हैं या ठीक–ठीक ढंग से नहीं कर पाते उसको अविकसित, पिछड़ा और अशिक्षित समझ लिया जाता है।

इन दोनों के बीच में मूल भेद मात्र यर्थाथ को देखने की दृष्टि भेद है। अपने चारों तरफ जो घटनाएं घट रही हैं उसके यर्थाथ को समझे बिना हम एक प्रकार से उसको घुमा–फिराकर जैसे रंग वाले चश्मे के माध्यम से किसी चीज को देखते हैं तो उसका रंग बदल जाता है तो हम उसी तरह से देखने के आधीन हो गए हैं। इस संदर्भ में मैं बहुत बार कहता हूं कि यह जो 'सैवेज' का शब्द है वो उस मनुष्य के लिए जिसका इनडोक्ट्रीनेशन नहीं हुआ है, ऐसे मनुष्य के लिए वो शब्द बना है। मैंने इस शब्द को चीफ सियाटल के पत्र से लिया है, जिसके बारे में कहा जाता है कि वो अमेरिका के मुखिया को लिखा गया। अब वो पत्र लिखा गया कि नहीं लिखा गया उसपर विवाद है।

तो वो एक पत्र उपलब्ध है। उसमें वो बार–बार कहते हैं कि I am a savage therefore do not understand. तो वो शब्द बहुत अच्छा लगता है। वो कहते हैं कि I am a savage. I do not understand how we can sell or purchase the mother land, the nature, the forest. तो एक संतुलित दिमाग वाले को ये समझ में नहीं आएगा कि प्रकृति के ऊपर मानव का स्वामित्व कैसे हो सकता है, हो सकता है कि नहीं हो सकता है। अब जो एजुकेटेड हैं, जिनका ब्रेन वॉश हो चुका है, वो सबसे पहले ये देखेंगे कि हर चीज पर व्यक्ति का स्वामित्व होना चाहिए, उसका मालिकाना होना चाहिए। प्रकृति की स्वाधीनता है ही नहीं। तो इस प्रकार से जब हम देखते हैं तो अशिक्षित होना एक प्रकार से अनिवार्य लगता है। इसलिए हमें जीवन के अर्थ को समझने में कठिनाई अनुभव होती है कि जीवन को एक स्वैच्छिक कार्यशीलता कहना सही होगा या नकलची दासता के रूप में जीवन को खपाना। तो ये दो बिल्कुल पृथक दृष्टिकोण हैं। जीवन का अर्थ इस विषय पर मैं इतना ही निवेदन करना चाहता हूं।

अब दूसरा जो भाग है अर्थमय जीवन, तो, मुझे वो ज्यादा सुविधाजनक लगता है। यदि इसे 'अर्थमय' की जगह 'अर्थपूर्ण' कहा जाए तो ज्यादा ठीक है; वैसे ज्यादा अंतर तो नहीं है पर यदि ऐसा कहा जाए तो शायद बातचीत में ज्यादा सरलता होगी। जीवन को अर्थपूर्ण कैसे किया जाए? भारतीय परंपरा में जीवन के अर्थ का व्याख्यान करते हुए लगभग सभी दार्शनिक परंपराओं का एकमत है। चतुष् पुरुषार्थ में पुरुष जिस अर्थ में प्रयोग किया गया है यहां पर पुरूष शब्द स्त्री–पुरुष के संदर्भ में नहीं कहा गया है, व्यक्ति मात्र या पुरुष मात्र के लिए मनुष्य शब्द का इस्तेमाल किया गया है और इस पुरुष के शब्द का अर्थ होता है क्षमतावान। जिसके पास कार्य संपादन करने की क्षमता और योग्यता या शक्ति विद्यमान है उसे पुरूष कहा जाता है। मनुष्य के अतिरिक्त जो जीव–जन्तु हैं उन्हें पुरुष नहीं कहते क्योंकि वो केवल जीवन यापन के लिए कार्य कर सकते हैं। पेट भरने के लिए, भोजन खोजने और बाहय चुनौतियों से, खतरे से अपने को सुरक्षित रखने, रहने के लिए जगह की व्यवस्था, संतान उत्पन्न करना और उसका पालन

करने की, इतनी क्षमता पशु जगत में भी विद्यमान है। उसके अतिरिक्त पशु जगत में विवेक नहीं है और जीवन को विकसित करने की क्षमता नहीं है। ऐहिक जीवन और पारलौकिक जीवन दोनों के हित को समझने की और उसको साधने की क्षमता उसमें नहीं है इसलिए उसको पुरुष नहीं कहा जाता। मनुष्य को पुरुष इसलिए कहा जाता है कि मनुष्य में क्षमता है वो सोच सकते हैं, बहुत दूर तक सोच सकते हैं। तो सोच–विचार करने योग्य जो मनुष्य हैं उसके जीवन का साध्य – यहां साध्य के मायने वो क्या साधना चाहते हैं – क्या हैं? उसे क्या उपलब्ध करने का प्रयास करना चाहिए। तो उसके लिए चार वस्तुओं का निर्धारण किया गया है। ऐहिक जीवन के कल्याण के लिए दो और पारलौकिक जीवन के कल्याण के लिए दो। ऐहिक जीवन के लिए काम, काम का अर्थ इस जीवन की सुख–सुविधाओं को ठीक तरह से उपयोग करना। और उसके (काम) साधन के लिए अर्थ – संसाधन, संपत्ति, पैसा। इन दो चीजों को ऐहिक जीवन के पुरुषार्थ में गिना गया है। ऐहिक जीवन लघु है, जितना भी जीएंगे 100 साल के आसपास ही जीएंगे। बहुत हुआ तो 105–110 साल तक जी लेंगे। उसमें भी बचपन के 10–12 साल ऐहिक जीवन के सुख को उपयोग करने के योग्य नहीं होते। वृद्धावस्था में 80 से ऊपर तो उपयोग करने की क्षमता नहीं ही होती है। तो इस बीच 50–60 वर्ष की ही आयु है और क्योंकि लघु जीवन है वह व्यवस्थित रूप से रहे और संसाधनों का उपयोग करे और संसाधनों का उपयोग करते हुए अपने को स्वस्थ रखे, भूखा न रहे, नंगे न रहे और आवास का आभाव न हो और अपने परिवार का अच्छी तरह से पोषण करने के लिए संसाधन उपलब्ध किए जा सके। ऐहिक जीवन के सुखों को काम का शब्द दिया है क्योंकि जिस जगत में हम रहते हैं उसे काम जगत कहते हैं। भारतीय दर्शन में काम, रूप, अ–रूप तीन जगत की कल्पना है। उनमें से हम काम जगत में रहते हैं। इस जगत में रूप, गंध, स्पर्श, रस इनको हम अच्छी तरह से उपयोग कर सकते हैं और इसका आनंद उठा सकते हैं जिसके लिए संसाधन चाहिए। तो ये दो पुरूषार्थ ऐहिक जीवन के लिए हुए। क्योंकि जीवन लघु है, क्षणभंगुर है, अनित्य है तो इसलिए इस लघु

जीवन के अंदर बहुत बड़ा अर्थ साधने की संभावना नहीं है। और जिसको भी हम सुख समझते हैं वो यथार्थ में सुख नहीं है क्योंकि वो स्थायी नहीं है। किसी न किसी समय में जाकर तो वो छूट ही जाता है या विघटित होता है या नष्ट होता है। तो जब नष्ट होता है तो उससे दुख होता है, इसलिए स्थायी सुख या स्थायी शांति; सुख–दुख से ऊपर उठकर स्थायी सुख की कामना तो हम रखते ही हैं। सभी व्यक्ति स्थायी सुख चाहते हैं और कोई भी दुख नहीं चाहता। तो इसका एकमात्र उपाय यही है कि इस सांसारिक जगत के बंधन से मुक्त हो जाएं, स्वाधीन हो जाएं। कर्म और क्लेश के अधीन होकर बार–बार इस जगत में जन्म न लेना पड़े, इसको मोक्ष का नाम दिया है। उस प्रकार के मोक्ष को प्राप्त करने के लिए उसका हेतु या साधन कर्म करना, धर्म का पालन करना यही कहा गया है। तो भारतीय पद्धति में जो चतुष पुरुषार्थ गिना गया है, जिसमें तात्कालिक और दीर्घकालिक दोनों इस जीवन से साध्य हैं जो इस जीवन से प्राप्त किया जा सकता है। उनको इन चार वर्गों में दर्शाया गया है और जिसको यथार्थ में पुरुषार्थ माना जाना चाहिए। इन चारों पुरुषार्थ को साधने के लिए अनिवार्य है स्वस्थ शरीर और स्वस्थ चित्त। दोनों हम खो बैठेंगे तो न तो काम का उपयोग कर पाएंगे न ही मोक्ष की साधना कर पाएंगे। इसलिए ये भी एक पुरुषार्थ के रूप में या उसके साधन के रूप में रख सकते हैं – स्वस्थ शरीर और स्वस्थ चित्त। स्वस्थ शरीर भी आधुनिक समय में जहां पर पीने के लिए अप्रदूषित जल भी न मिलता हो, सांस लेने के लिए अदूषित हवा भी न मिले वैसी परिस्थिति में शरीर को स्वस्थ रखना कोई सरल काम नहीं है। शरीर को स्वस्थ रखने का कार्य भी, व्यापार हो गया है। आज यदि हम कोई भी काम करेंगे, हिलेंगे–डुलेंगे भी तो व्यापार के बिना कोई भी काम नहीं चलता है तो इसको भी स्वास्थ्य उद्योग का नाम दिया है। तो उस उद्योग में हमको जाना पड़ेगा।

जब शरीर स्वस्थ नहीं रहेगा तो चित्त या मन स्वस्थ कैसे रहेंगे? मन के बारे में यदि जे.कृष्णामूर्ति के शब्दों में कहा जाए तो 'कंडीशनिंग'। हजारों प्रकार के दबाव हैं जो कंडीशनिंग हैं। हमारा मन चारों तरफ बाहरी शक्तियों के दबाव में कंडीशण्ड हो गया है।

और हमारे पास अननुकूलित कोई चीज रह नहीं गई है। ये चार पुरुषार्थ को साधने की क्षमता हमारे पास संभवतः मनुष्य होते हुए भी आज के दिन उपलब्ध नहीं है। ऐसा लगने लगता है। जो सोचने का विषय है। यदि कोई व्यक्ति चाहे कि हम उसे उपलब्ध करेंगे और इस बाहरी दबाव में नहीं रहेंगे, अपनी स्वाधीनता को, अपने स्वराज को पुनः स्थापित करेंगे, अगर ऐसी किसी के पास इच्छा हो तो संभावना तो है लेकिन इच्छा उत्पन्न न हो इसकी व्यवस्था इस बाजार व्यवस्था ने पूरी तरह कर रखी है। सारे संतुलन को बिगाड़कर जिस असभ्यता में हमें अभी घसीटा जा रहा है उसमें अभी सोचने की, करने की संभावना और अवकाश दोनों बहुत कम लगने लगा है। प्रस्तावना में कहा गया है कि अपने शरीर में बम्ब लगाकर आत्महत्या करने वाले लोगों को क्या समझें तो वे भी अपनी दृष्टि से, अपने विचार से, अपने पुरुषार्थ को साध रहे हैं ऐसा ही विचार करके वो ऐसा करते हैं अन्यथा इतना बड़ा काम वो नहीं कर सकते। अपने प्राण को अपने हाथ से समाप्त करने की जो मूखर्ता है वो जब तक हमारा मन बहुत गहराई से प्रदूषित नहीं किया गया हो, अनुकूलित नहीं किया गया हो, संभव नहीं है।

इस प्रकार जीवन के अर्थ को भूल जाना और अर्थमय जीवन जीने से भटक जाना इन दोनों के कारण हमने चित्त की स्वाधीनता को विभिन्न माध्यमों से समाप्त कर दिए जाने के कारण खो दिया है ऐसा मुझे प्रतीत हो रहा है। बहुत लोग इससे असहमत हो सकते हैं पर मैं अपने जो विचार हैं या शास्त्रों के वांग्मय से जो विचार आते हैं वो आपके सामने रख रहा हूं। चतुष्पुरुषार्थ का संक्षेप विवरण देने के बाद अतिशा की 'त्रि' पुरूषों के वेद का थोड़ा सा जिक्र करके मैं अपनी वाणी को विराम दूंगा। पुरुषार्थ को साधने के लिए जो ऐहिक जीवन का काम और अर्थ है वो तो सब लोग साधते ही हैं अतिशा ने उसको पुरुषार्थ में नहीं गिना। उनका कहना है कि ऐहिक जीवन की सुख–सुविधाएं जुटाना मनुष्य की विशेषता नहीं हैं पशु जगत में भी उसकी क्षमता है। मनुष्य की विशेषता तो पारलौकिक जीवन को सुधारने के कार्य करने में है। उन्होंने तीन पुरुषों की कल्पना की – अधम पुरुष, मध्यम पुरुष और महापुरुष। अधम पुरुष उसको

रखा गया जो ऐहिक जीवन की सुख–सुविधा के साधन जुटाने के बाद पारलौकिक जीवन की चिंता करते हैं। ये लोग पारलौकिक जीवन को सुधारने और अभ्युद्य के आश्वासन पाने के लिए कुशल कार्य करने वाले होते हैं। अभ्युद्य माने अगले जन्म में, अच्छे जगत में, मनुष्य के रूप में या देवता के रूप में जन्म लेने की जो चेष्टा करते हैं, इसके लिए कुशल कार्य संपादन करते हैं उनको अधम पुरुष कहा गया है। मध्यम पुरुष उसको कहा गया है जो अपने मोक्ष को साधने के लिए कार्य करते हैं – शील, समाधि, प्रज्ञा की साधना करते हैं। बौद्ध पारिभाषिक शब्द में अरिहंत पद या प्रत्येक बुद्ध पद को प्राप्त करने की, मात्र स्वंय इस जगत के बंधन से मुक्त होने की साधना करते हैं उनको मध्यम पुरुष कहते हैं। और महापुरुष उसको कहा गया है जो समस्त जगत के लिए संपूर्ण जीवधारियों के हित के लिए बुद्धत्व प्राप्त करने की इच्छा रखते हैं वह महापुरुष हैं। उन्हें महापुरुष कहा गया है। या उसको आध्यात्मिक शब्दों से हटा करके साधारण बोलचाल में कहें तो एक और दूसरा दृष्टिकोण हो सकता है। एक अहिंसक जीवन खुद भी जिएं और दूसरों को भी जीने के लिए प्रेरित करें, जिसमें हिंसा न हो। दूसरों का शोषण करके उनकी कीमत पर अपने जीवन को साधना इसको तो पुरुष नहीं कहेंगे, उसको अर्थरहित जीवन जैसा माना जा सकता है। और संपूर्णतः दूसरों की सेवा के लिए, परहित के लिए जीता है, वो अर्थमय जीवन कहा जा सकता है। त्रिपुरुष के लक्षण जो आतिशा ने दिए हैं, उस हिसाब से अधम, मध्यम और महापुरुष उन तीनों का जीवन अर्थमय कहने में कोई आपत्ति नहीं होगी या साधारण शब्द में कहा जाए तो स्व पर समता की दृष्टि से कोई जीवन जीता है तो वह अर्थमय है और परहित मात्र के लिए जीवन जीता है तो वह महाअर्थपूर्ण जीवन है ऐसा कहने में कोई आपत्ति नहीं होगी। इन शब्दों के साथ मैं अपनी वाणी को विराम देता हूं।

ऐसे शैक्षिणिक कार्यों के लिए विचारों को लिखित रूप में रखना चाहिए था, मेरे पास समय भी नहीं था, यात्रा–यात्रा से श्रृंखला में आते हुए यहां पहुंच गए और कोई सुव्यविस्थति विचार भी नहीं थे। वांग्मय में अंतरम दर्शन में जो कुछ हमने देखा है

उसको संक्षिप्त रूप में आपके सामने निवेदन किया है और इसपर आपकी प्रतिक्रिया, टिप्पणी या कुछ प्रश्न हो तो अध्यक्ष की अनुमति से आगे चलेगा। आपके ध्यान के लिए मैं आभारी हूं। जय जगत!

Ashish Nandy: I feel very inadequate in expressing my thoughts but I will like to as free as possible give you a glimpse into the way in which I think one can live a healthy life. Healthy life does not mean a normal life but it means a life in touch with other lives. I am delighted with this story Pawan told at the beginning about Samdhong Rinpochey's believe that he like to live in seventh century by his own choice that reminds me a story which I am sure you will enjoy. He had a sympathetic soul in the world I don't know whether the other person is living still or not. This story was told to some of us by Ravi Mathei a Pioneering educationist in the domain of management. A discipline which is a direct product of our times that discipline is exists earlier. I consider this shoudo discipline but we don't have go to that part of story but he told me a lesson ones he learned that he learned in the 1980's. While the director the Indian Institute of Management that Ahmadabad, He has set up a NGO in a village of leather workers, village of *chamars* an untouchable village, people by from untouchable cast. There were all into leather work in some form or other. And to them Ravi Mathai's group brought new technology, new designs, expert advice about market conditions of the world, trying to pull them into a better life. Now he heard after a couple of years that while everybody in the village was very enthusiastic in it and already had made enormous games from their work at taken to new technology like fished water a new ideas and by trying to been touch with the

modern markets. One old crafts person just would not changed. He was absolutely obstinate and refused to take to their ways; though he was very polite. The team working with Ravi Mathai told ravi that we would like you to talk to him may be you shall be able to teach him better than we haven't be able to do and change his opinion. So this Ravi telling us that he went to this old man and said what is this I am hearing about your rejecting modern technology, modern designs, and information about our modern market conditions and so on? So this old leather worker said, look I produce the sandals and *chappals* that I know off and which I like to do. I sell them and people like them too and they pay me for it. I am happy, why should I change? Ravi Said but you can earn much more and you can do good to others. Look at your brother he has adopted the new technology and gone in for a modernization for his business so he has become quiet wealthy. What is wrong with it? He said well there is nothing really wrong but I do not see him very happy. His responsibility has increased now he cannot live with the money which he could live and his family could live and they were living well. They are more luxurious but he has to earn more for that luxury and I find him quiet tensed. So Ravi said that he thought he will take another track. He said look, what is wrong with the technology? Everybody here is saying that you were living in the 19th century, whiles others have move to the 20th century. He said what you could have said he said I choose in bricks century and I want to live. Ravi said I learned something there, something which my equitant with management never taught me. My life acquired a different meaning. Hearing that old uneducated man some where he had more autonomy than I had. That was a chinwag sprit you would have enjoy in the

meeting, I am sure. I have found that basically three nodal issues which one has to face; if one is in the world of knowledge, weather you are in the knowledge industry or knowledge sector. I like to call myself as in the knowledge sector does mean that I am in the knowledge industry. I call myself as intellectual street fighter because I am not a good person like Samdhong Rinpochey. I retain the right to get angry and provoke that also constitutionally given right. The first of this is this is a beautiful formula which I picked up from *Bustavaistava* a slogan which he gives to the Japasthisus and I am sure in one world social forum which were associated you will find resonates of that. He said the Japasthisus slogan is "You must learn how to host the otherness of others". If you are living in the world of living human beings and animal and nature you must learn how to host, how to play host to the otherness of others. So in other words you do not come to like them because they resemble you. You do not celebrate the sameness' of others. You do not say that I need a perfectly compatible with such and such community because they are very much like us. You must have that capacity to celebrate the fact that the other is others. And they have different priorities and you must enjoy that part of the story because that gives you, that gives you a new confrontation between you and the world and that encounter enriches you and perhaps if you can celebrate the otherness it can enrich the others too. I think it is a lovely brief aphoristic cell and I think there is much support for this even in my discipline the science of psychology; basically I come from a clinically psychological background. I also want to give you examples of my long interaction for many years with studies of creativity in the 1960's and 70's there was much interest in creativity. Lots of

psychologist work in the area who becomes creative and why? Why the famous professors in the well known universities of the world highly respected everybody, the students worshipped them but they are not creative, they are great scholars but not creative. Whereas those scientists, there are scientist who are highly creative. What are the differences between the two groups' works makes you creative what does not? We found this interesting and some of you find this strange. I will give you few examples just to give flavor of this work that they found for instance that amongst the most brilliant scholars, but the less creative scholars are non creative brilliant scholars there was one clear difference the creative scholars, scientists mainly. If they are men they at a much higher degree of femininity as measured by psychological test by the non creative ones and if they were women they were had more masculine than the comparable women who are less creative or non creative. They also found which is also interesting that the creative scientist and this seems against common scenes did not really know the details of their knowledge and disciplinary areas as well as the non creative ones. The non creative' ones their burden by their knowledge they were excellent bibliographic, but the creative ones there were brought big gaps in the bibliographic. They are not read the most relevant works in their field also the creative people are much more disorganized in their work they are not systematic they are not moving step by step towards the solution of the problem. They can live with the kayos for the much longer time than the non creative ones. Non creative ones quickly close and want to arrive at a solution the creative ones and not seeking quick solutions. They often allow the kayos to persist within them as well as in their work and after a while certainly

comes a absolutely new solution which is cannot be fitted within the frame and their effort is highly creative. This one study done with nobelureks all the same ground. Also if you give those complex graphics and simple graphics the creative ones always choose as an aesthetic choice artistic choice through preference for the more complex stimulate. There is not highly confusing but the non creative ones will choose the simple graphics state forward ones that part also story. So I give these examples it is while working on the problems of creativities and human proselytes in the Indian context that I decided to formulated and generalized it furthers how to have a simple simpler model within which it could be understood and I am not making any get claim but my formulation is very simple. It has something to do with the first thing which I told the Japasthistha slogan. it is this that great creativity involves an ability to host psychological ability to host not only the self which you recognized but your entire self that you do not recognized not only your concept of me who I am? But also your concept of I am not me and that is why diversity and differences are crucial because the other is always posing a challenge to you. the other me not me not want to recognized that part of yourself is always finding in the others weather they are enemies or friends particularly with the enemies that they are simultaneously they are remind you of your dissolve self which you don't want to acknowledge and also represent a temptation to be like them. And also a fear that you might become like the others. In last fifteen years I am studying genocides even their besides quiet better most horundus the goriest genocides are found of the last fifteen years are the ones where the two parties are not strangers but very close to each other in tattooing because that intertoning ones you planted a

doubt ones you began through propaganda and other means to acknowledge to create the division immediately those parts of your itself which you see personified in the other become a danger to you because you think that you are contempirent in it. Other may not know but you are contemprant, you know your other self that I attempt your contemporant and you want to disown that part and therefore then struggle the battle between the two sites become almost like a exorcism as if you are exercising a ghost with a new. And I would purpose to you this also on the other hand is a source of great creativity because ultimately when you acknowledge that and that in the peace in another self. You have brought in a dimension which you did not know and you are allow interplay between that other and you are not me and me then it through up a new open a new world with new possibilities ---------- but you did not peruse that. But anyway I wanted to give three things also because when I talk not being others I also want to acknowledge that the concept of a witness in traditional text of India is not that of a witness with the juridical sense not a witness who stands against you or for you in the court concept of witness in a number of Vedic test this fitness of a person within your own which is a standing witness to you against yourself and that is the source of your education yourself because before other know you know that you are being judge you know that what you are. the various of sin I told Plato is to say this that is the kind of person who become the various of sin is not imprisonment various of sin is not suffering in the hands of the police. Various of the sin ultimately very low allowed freedom is that you have fallen in originate you have become what you are that is the real fun in the study of partition which I have done fifteen years after they went partition

violence . We did run across a few murderess killers I can tell you with some confidence that I am yet to meet a happy killer. Fifteen years after the event they have all the justifications ready, I was fought fighting for my community, I was fighting for my country, I was fighting for against partition. I was taking revenge I was reading running self esteem of after all these arguments were heard but after the argument this argument are given in first one or two days. We had gone this life story you gradually emerge a different person still burden with guilt discomfort, sometimes psychosomatic illness of all kinds which also expression of that guilt, wages of sin can be the kind of person you are. Pretonimic judgment stands. Thank you very much.

आरिफ मोहम्मद खान : जीवन का अर्थ और अर्थपूर्ण या अर्थमय जीवन, जब से इंसान सभ्य हुआ है या सभ्यता की सीढ़ी पर चढ़ना शुरू हुआ है तो वो इसी की तो तलाश कर रहा है लेकिन जिन्होंने जो हमारा अभी रिंपोचे जी ने भारतीय दर्शन के मुताबिक कहा। भारतीय दर्शन में ये चीज सिर्फ अनुभव से संभव है, किताबों से और ज्ञान पर संभव नहीं है और अनुभव के आधार पर जिन्होंने बहुत किताबें लिखी हैं उन्होंने कहा कि *सर्वशास्त्रपुराणेसु व्यासद्यं वचनं ध्रुवम। परोपकारस्तु पुण्यय्, पापाय, परपीणनम्।* सारे शास्त्रों का निचोड़ ये है कि जो अभी रिंपोचे जी ने कहा कि क्या हम सिर्फ अपने लिए जी रहे हैं या फिर हमारे जीवन का कोई और भी उद्देश्य है। आदमी के जीवन की सिर्फ जीवन चक्र क्या है? पैदा हुए, पले–बढ़े, शादी की, बच्चे पैदा हुए, बच्चों को बढ़ने में मदद की और मर गए। ये साधारणतः ये नियम है लेकिन कुछ लोग हैं जो इससे आगे बढ़कर जीवन का क्या अर्थ है उसे जानने की कोशिश करते हैं और दूसरी जगह शायद उसी को कहा गया है। *सर्वशास्त्र प्रयोजनम् आत्मज्ञानम* the purpose of all studises, all science, all knowledges to know I self. In Islamic tradition it has been said *"मन अरफतो नफ्सु, मन अरफता नफ्सोहु फक्त, मन अरफा नफओहु फकत अरफा रब्बो।"*

One who has come to know the self who knows the self he will knows his lot. तो ये खुद (सेल्फ) को जानने की जो कोशिश है और इसमें मौलाना आजाद ने अपनी किताब 'तस्करा' में एक बड़ा खूबसूरत फ़ारसी का शेर कोट किया है। मैं समझता हूं वो इससे बहुत संबंधित है। उसमें ये कहा गया *"माज़ा आग़ाज़ो अंजाम जहां बेखबरे इत!।"* कहा कि ये जो जिंदगी की किताब है जीवन की पुस्तक है ये ऐसी पुस्तक है जिसका पहला पृष्ठ और आखरी पृष्ठ खोया हुआ है (मिसिंग) *"अब्वलो, आखिर ई कोहना किताब उफतादस्त"* तो ये जिंदगी की पूरी किताब हमारे पास है लेकिन इसका पहला पृष्ठ और आखरी पृष्ठ गायब है। मेरे ख्याल से जितने भी बाकी चीजों को छोड़ दें तो जो अनुभव भी हैं, जो तपस्या है वो यही जानने की कोशिश है कि पहला पृष्ठ क्या है और आखरी पृष्ठ क्या है। न ये पता कि आने से पहले क्या थे और न ये पता कि जाने के बाद क्या होगा। उसको जानने की कोशिश और जिस तरह से आशीष जी ने wages of sin (वेजेज ऑफ सिन) की बात की है। मैं समझता हूं कि जीवन का मेरा अर्थ आपके लिए प्रासंगिक है, ये जरूरी नहीं है। मैं किस चीज में जीवन का अर्थ देखता हूं वो मेरा और आपका अलग–अलग हो सकता है। best judge is one's own consciousness अपना अंतकरण और मैं इसका सबसे अच्छा समझता हूं जो मैंने महसूस भी किया कि इन्हीं सर्दियों की रातों में या कभी भी मानिए कि किसी ऐसे व्यक्ति को जो भूखा हो, जो ठंड से परेशान हो जरा आप अपनी गाड़ी से उतरकर उससे प्यार से बात कर लीजिए बाकी आप क्या करेंगे और मैं क्या करूंगा वो अलग बात है लेकिन यदि आप उससे थोड़ा प्यार से बात कर लीजिए तो आपको उस रात को नींद बड़ी अच्छी आती है। तो यही मुझे लगता है कि शायद इसी से जीवन में कुछ अर्थपूर्ण हो सकता है और शायद यही जीवन का अर्थ है। धन्यवाद।

रजनीकांत : आनंद का पर्यायवाची क्या है? आनंद क्या है और उसे कैसे महसूस करें।

सैमदोंग रिंपोचे : क्षमा करें इसका उत्तर मेरे पास भी नहीं है, ये तो शब्दकोष में ढूंढ़ना पड़ेगा। 'नंद' शब्द ज्यादातर साधारण सुख से अतिरिक्त एक आंतरिक संतोष होता है, उसको इंगित करते हैं। और नंद के साथ 'आ' लगा दें तो 'अखिल नंद' जैसे हो जाते हैं तो अर्थ तो यही हुआ। अब इसका पर्यायवाची दूसरे शब्दों में या दूसरी भाषाओं में शब्द गढ़े जा सकते हैं या फिर शब्द न भी गढ़ें तो सुख आनंद की पर्यायवाची में शत–प्रतिशत नहीं बैठेगा ये तो सभी लोग मानते हैं। लेकिन आनंद की जो अपने भाषा में आन्नद शब्द, सुख शब्द से, तृप्ति शब्द से वो अलग है लेकिन उसका दूसरा पर्यायवाची क्या होगा वो मुझे नहीं मालूम।

आरिफ मोहम्मद खान : अगर हम ये कहें ये बात सही है कि पार्यायवाची नहीं है तो इसका एक ही मतलब हुआ कि ये ऐसी स्थिति है जिसे महसूस किया जा सकता है, शब्दों में बयान नहीं किया जा सकता।

आशीष नंदी : before you answer that I would like to add something this is very important question because I think in my there is much more loaded concept of *Anand* it is different from *Ananda* which is commonly used. The Chinese many of the scholars supporting the Chinese government one of them told this that one of the criticism they have is this now the Dalai Lama has forgotten his larger mission. He is winding happiness. I said first of all the *Anand* which he is talking about and which is a crucial part of Buddhist metaphysics is cannot be translated by happiness. Whatever else it can be done. It is a concept of bliss of different that bliss or grace gives a different kind of weight age and different kind of meaning. And I will like you to give us an idea that of that distinction between happiness and bliss as it is in my view.

सैमदोंग रिंपोचेः बुद्धिस्ट दार्शनिक के संदर्भ में साधारण सुख या जो संकलिष्ट सुख अर्थात जो सुख क्लेषों से जुड़े हुए हैं या फिर उससे प्रदूषित हैं वह देखने में सुख के वर्ग में देखते हैं यर्थात में वो दुख होता है। "दुख–दुख परिणम दुख, संसका दुख"। दुख के वर्ग में तीन अलग जो विभाजन हैं उसमें परिणम दुख उसको कहते हैं जो तात्कालिक रूप से सुख जैसी अनुभूति होते हुए भी उसका वर्णित होता है या उसके भी क्षय होता है। उसकी क्षय में दुख निहित है। जब वो क्षय होता है तो उससे दुख अनिवार्य रूप से आते हैं। कोई भी जागतिक या सांसारिक वस्तु जिसका हम उपभोग करते हैं तो वो एक सीमा तक सुख प्रदान करते हैं और एक सीमा से आगे बढ़ जाए तो वो दुख का स्रोत हो जाता है। आनंद उससे अलग रखते हैं, आनंद से जो क्षय है उससे कोई दुख का कारण नहीं बनना चाहिए। अगर दुख का कारण बनते हैं तो वो सुख मात्र हो सकता है, परिणम दुख हो सकता है वो आनंद नहीं हो सकता है। नंद और आनंद भी शब्द ऐसा शब्द हो अर्थ से सीधे जुड़ा हुआ नहीं होता है। शब्द–अर्थ दोनों मनुष्य की परिकल्पना से एक संबंध बनाए रखते हैं लेकिन जब पारिभाषिक शब्द हो जाता है तो उसका एक अर्थ दिमाग में बैठ जाता है तो उसका एक अपना अर्थ बैठ जाता है। तो उस संदर्भ में जो आनंद है वह किस तत्कालिक दुख को हटाकर करके सुख प्राप्त करने वाला भी नहीं है और जो स्वंय में अंत होता है या क्षय होता है वो भी दुख का कारण नहीं बनते हैं। यह सुख संवेदना के वर्ग में नहीं आते परन्तु चित को एक तृप्ति की अनुभूति देते हैं यदि तृप्ति स्थायी होता है तो उसे अधिकांशतः आनंद कहते हैं। मैं नहीं समझता कि इसकी कोई और परिभाषा होगी।

वक्ता : मुझे लगता है डिटेचमैंट फोरम रिलेशनस, वर्ल्डली थिंगस, मैन मेड थिंगस से आनंद की अनुभूति होती है तभी ऋषि–मुनि जंगलों में चले जाते हैं लेकिन वहां प्रकृति में रहकर भी वो भगवान की चीजों से जुड़े रहते हैं तो मुझे डिटेचमैंट का समझ नहीं आया कि वो केवल सांसारिक चीजों से है या फिर या भगवान की बनाई चीजों से विरक्ति कहां तक हो कि आनंद की अनुभूति हो।

सैंमदोग रिंपोचे : डिटैचमेंट का अर्थ विराग के अर्थ में आते हैं तो किसी के साथ भी जुड़ाव होना वो चित शुद्धि के वर्ग में नहीं आते हैं। जो आध्यात्मिक चीजें हैं या प्रकृति की चीजें हैं उनके साथ एक मौन भाव और एकांत भाव अनुभूति कर सकते हैं लेकिन उस राग हो जाएंगे, अटैच हो जाएंगे तो किसी भी चीज से अटैच होगा वो एक ही जैसा होगा attachement itself is a no vertue emotions तो जो आपने कहा कि भगवान की बनाई चीजों के साथ अटैचमेंट हो पाएगा ऐसा मुझे नहीं लगता। अगर कोई भी ज्वाइंड चीज का अनुभूति होगा तो उसके साथ श्रद्धा हो सकता है अटैचमेंट नहीं हो सकता है।

रघुवंश प्रसाद सिंह : गोष्ठी के अध्यक्ष पवन जी और आदरणीय रिंपोचे साहब और सभी विद्वावनजनों हमें कभी–कभी ही ऐसा सौभाग्य मिलता है जब हमें विद्वान जनों के बीच आकर सीखने, जानने, समझने का अवसर मिलता है। कई बार कुछ चीजें समझ में नहीं आती हैं लेकिन फिर भी सुनने और धैर्य रखकर सुनने का मौका कभी–कभी ही मिलता है। राजनैतिक कर्मी लोग दिन–रात लोगों के दुख से दुखी होते रहते हैं। कभी किसी को वृद्धावस्था पेंशन नहीं मिल रही, कहीं बिजली की समस्या है, कहीं आधार कार्ड नहीं मिल रहे, कहीं अनाज नहीं मिल रहा, कहीं कोई घूंस मांग रहा है तो कहीं किसी का घर गिर गया और कोई पूछने वाला नहीं है आदि बहुत सी समस्याओं को सुनते–सुनते आदमी दुखी हो जाता है तो ऐसे में हमें विजय प्रताप, आरिफ मोहम्मद, रिंपोचे जैसे बड़े विद्वानों के बीच बैठने का मौका कम ही मिलता है। सुनीलम जी हमारे पास पहुंच गए और कहने लगे कि इंटरनैशनल सेंटर में बहुत सारे विद्वानों का जुटान है उसमें आयुर्वेद पर पाठक जी का लोक स्वास्थ्य परंपरा–गांवों मे अभी भी जड़ी–बूटी से इलाज करते हैं उस विषय पर व्याख्यान देंगे। लेकिन आज वैद्य कहां हैं, डाक्टर लोहिया कलेजा पीटते मर गए कि "हजारों लोगों के लिए एक डाक्टर नहीं और एक के लिए इतने सारे डाक्टर"। लेकिन आज भी लोग लोक स्वास्थ्य परंपरा में कुछ न कुछ कर ही रहे हैं। आज की बैठक का विषय रखा गया 'जीवन का अर्थ और अर्थमय जीवन'। जीवन के अर्थ से जो हम लोगों को जो मोटा–मोटी समझ में आता है कि जो महापुरूष ज्ञानी लोग

हैं, हमारे यहां राजा जनक थे वो राजा भी थे और आध्यात्मिक भी थे और आज के वक्ता रिंपोचे साहब प्रधानमंत्री भी रहे, आध्यात्मिक जगत में भी प्रसिद्ध हैं। भगवान बुद्ध, 'बुद्ध' बनने से पहले एक राजकुमार थे उन्होंनें अपनी जवानी में चार दुख देखे उसमें सबसे पहले उन्होंने एक बूढ़े आदमी को तकलीफ में देखा, एक बीमार आदमी को देखा, एक मृतक को देखा और एक साधु को देखा। तो इन चारों को देखकर उनका मन विचलित हो गया और वो अपना घर छोड़कर निकल गए ध्यान की खोज में। तो वो हमारे यहां आए थे लारकलान उनके प्रथम गुरू थे उन्होंने बुद्ध को सात विषयों की जानकारी दी गई लेकिन बुद्ध को वहां दस महीने रहने के बाद भी ज्ञान नहीं हुआ। उसके बाद वो उत्तराकराम पुत्र के पास गए जो कि आठ विद्या जानते थे। उसके बाद वो बौद्ध गया में आए तब जाकर उन्हें ज्ञान प्राप्त हुआ। तो खैर वो तो अलग विषय है तो इसलिए जीवन के अर्थ वाले विषय में हमने जो सुना, समझा है उसका निचोड़ मैं इस तरह से करता हूं कि जीवन के अर्थ और अर्थपूर्ण जीवन के लिए यदि हम चार शब्दों अर्थ, अनर्थ, निस्वार्थ, परमार्थ पर विचार करें तो स्पष्ट हो जाएगा। जीवन के अर्थ के चार भेद हैं एक अर्थ, एक अनर्थ, एक परमार्थ, एक निस्वार्थ यदि चारों पर विचार किया जाए तो जो आरिफ साहब ने कहा कि *अष्टादश पुराने पुरानेसु ग्यासस्दस वचनम दोयम परोपराकायः पुण्यायः पापाया परपीणम।* रामचरितमानस में उसी को *परहिस सरस धर्म नहीं भाई, पर पीड़ा सबने अतिमाई*। रिंपोचे साहब ने भी वही कहा। परमार्थी लोग कुछ ही हो सकते हैं। कोई परमार्थी दुनिया में नहीं हो सकता, केवल स्वार्थ, परमार्थ, हम जीना जीने के लिए कुछ खाएंगे कि नहीं खाएंगे तो वो स्वार्थ नहीं हुआ। लेकिन जो आदमी परमार्थ को आगे रखता है और स्वार्थ को पीछे रखता है वो महापुरुष होता है वहीं जब स्वार्थ को आगे रख दिया तो वो साधारण मनुष्य हो गया। साधारण मनुष्य वो है जो सबको खत्म करके और खाली स्वार्थम मूल मंत्र का पालन करे तो उसके जीवन का अर्थ नहीं अनर्थ हो जाता है। अंत में आरिफ साहब कहते हैं कि nothing is good, nothing is bad it depends our personal point of view. क्या अच्छा है और क्या बुरा

ये प्रत्येक व्यक्ति पर निर्भर करता है। एक अंग्रेजी राइटर थे उनके पास एक टोप था। एक बार वो अपना टोप पहनकर कहीं जा रहे थे कि अचानक तेज हवा आई और उनका टोप उड़ गया वो उसके पीछे भागने लगे; लोग उनको देखकर हंस दिए, यदि मोटा आदमी इस तरह से दौड़ेगा तो उसे देखकर कोई भी हंस ही देता है तो उस घटना के बाद ही लिखा गया कि on running after ones hat. एक खेल में एक गेंद के पीछे 22 खिलाड़ी दौड़ते हैं लेकिन उन्हें देखकर कोई नहीं हंसता। अपनी पत्नी के पीछे दुनिया पागल है, कोई नहीं हंसता, सब दौड़ते रहते हैं। घर में नवजात शिशु का आगमन होता है तो जिनके नवजात शिशु पैदा होता है तो उनकी तकलीफ देखकर उनका पति भी दुखी रहता है और घर–भर के लोग खुशी मनाते हैं कि नवजात शिशु का आगमन हुआ, तो भोज–भात मिलेगा। एक ही घटना है लेकिन उस घटना से एक जगह भारी तकलीफ है, इतनी तकलीफ के लोग उस समय कसमें भी खा लेते हैं और उनको देखकर अन्य लोग दुखी हैं। घर–भर के लोग, टोला–महोल्ला के लोग कि किसी का लड़का घर में पैदा हुआ। दुनिया में कोई भी चीज पूरी तरह से खराब नहीं है और न ही कोई अच्छी चीज है ये तो अपने ऊपर निर्भर करता है कि उसमें एक मनुष्य का माइनस इनफिनिटी से प्लस इनफिनिटी तक का डाइवर्सन है (Minus infinity to plus infinity diverstion), मनुष्य जाति में जानवर से भी बद्तर सोचने वाले, करने वाले लोग मौजूद हैं और उसके बाद देवता से भी अच्छा सोचने वाले, करने वाले लोग मौजूद हैं। मात्रा भेद का है कि *सिहन की, लालो की ना बुढ़िया साधु न चले जमात।* तो ये अच्छी चीज कम होगी। सोना कम होगा लेकिन लोहा और कोयला बहुत होगा और हीरा कम होगा। तो अच्छे लोग एवं महापुरूष कम होंगे लेकिन फिर *महाजनोजे न गतस्य पंथा गजे।* नकलची खराब है लेकिन फिर कहा कि जो महापुरूष लोग जिस रास्ते पर गए हैं वही प्रशस्त मार्ग है। *सिरतियोर विभिन्नास, मृत्युरोर विभिन्ना, नईकोर मुनिरजस्य मतियोर विभिन्ना। धर्मस्य तत्वम मतियो गुहायाम, महाजनो न गतस्य पंथ।* ये जब ये कि महापुरूष लोग जो बता गए कि भिन्न–भिन्न मत हैं। अब देख लीजिए कि दुनिया में

भिन्न–भिन्न मत हैं कि नहीं है। दुनिया में भिन्न–भिन्न धाराऐं चली हैं। अपने यहां एकाहारी हैं, निराहारी हैं, फलाहारी हैं, दुविधाहारी हैं, सर्वेहारी हैं, गेरूआ वस्त्र हैं, काला वस्त्र है, पीला वस्त्र है, हरे वस्त्र हैं और बिना कपड़े वाले भी हैं जैसे कि दिगम्बर जैन लोगेां को देखें तो वो कपड़ा ही नहीं पहनते हैं, हिन्दुस्तान में 500 मुनि हैं। उनका अलग सत्य अहिंसा महाव्रत है। तो इसीलिए दुनिया में सभी तरह के लोग हैं लेकिन हमें तो यही समझ में आता है कि जो परमार्थ को आगे रखें और स्वार्थ को पीछे तो वो रास्ता ही महापुरूषों का रास्ता है। बाकी हम लोग इस लोक के मौजूद चिंतकों, ज्ञानी–ध्यानी लोगों से कुछ न कुछ सीखने–समझने की कोशिश करते हैं। लेकिन हम लोग तो वही हैं कि दिन गए, बरस गए, यातना गई नहीं, रोटियां गरीब की, प्राथर्ना बनी रही। जिसको रोटी नहीं मिलेगी वो भगवान को खोजेगा या फिर अर्थ–अनर्थ समझेगा। श्याम की बंसी बजी, राम का धनुष चढ़ा, बुद्ध का भी ज्ञान बढ़ा, निर्धनता गई। सब लोग उसी में सभी लोग ज्ञानी–महापुरूष आए। गरीबी में लोग लगे हुए हैं उसी में लगे हैं कि गरीब का कैसे कल्याण हो तो वो अपने ऊपर निर्भर करता है कि जिनको जहां जो चले, बने, करे और राजनीति तो हम लोग बुराई से लड़ना, बुराई की निंदा करना राजनीति है। धर्म का अर्थ अच्छाई करना और अच्छाई की प्रशंसा करना। यही परिभाषा के रूप में चलते हैं कि जहां यथा संभव, यथा शक्ति कोशिश की जानी चाहिए बुराई से लड़ने की और परमार्थ पर चलने की। *एक ओ घड़ी, या दो घड़ी यादों में पुनियात, तुलसी संगत साधु की, हरे कोटि अपराध, इतने शब्दों के बाद सभी लोगों का धन्यवाद।* विद्वान लोगों को सुनने से हमारा भी ज्ञान वर्धन हुआ लेकिन हम राजनैतिक लोग तो अन्य लोगों की पीड़ी से पीड़ित हैं नेपाल में नया संविधान लाया गया। वहां मदेशी के अधिकार ही खत्म कर दिए गए हैं। गिरजा प्रसाद कोइराला के समय में जो आठ सूत्री, बाईस सूत्री समझौते हुए थे और ईस्ट इंडिया कंपनी ने नेपाल को 1816 ईस्वीं में सुगोली संधि में सौंपा था। उसमें कहा गया था कि मदेशियों के साथ भेद–भाव नहीं होगा लेकिन आज उन्हें दोयम दर्जे के नागरिक बना दिया, कोई उनका पूछता ही नहीं। वहां 6–7 महीने से आंदोलन

चल रहा है, 64 लोग शहीद हो गए हैं वो लोग अपनी समस्याएं बताने यहां आए हैं तो ऐसे में ओली साहब बोलते हैं कि हम कमेटी बनाकर आए हैं, अध्यक्ष कमल थापा उप प्रधानमंत्री ने हमें अध्यक्ष चुन दिया लेकिन उसके सदस्य ही गायब हैं। समझ नहीं आ रहा कि उन लोगों ने प्रांत कैसे प्रस्तावित कर दिया जिसके विरोध में लोग संविधान को ही जला रहे हैं तो इसलिए हम लोग उस दुख से दुखी हैं क्योंकि नेपाल तो सदियों से हमारा पड़ोसी रहा है उसके साथ हमारा पौराणिक, ऐतिहासिक, सांस्कृतिक रिश्ता है। पशुपति नाथ का पुजारी हिन्दुस्तानी और काशी विश्वनाथ का पुजारी नेपाली है तो इस दोनों का इस तरह का नजदीकी रिश्ता है। हम दोनों की 24 लाख बेटे–बेटियों की शादी आपस में हुई है, नेपाल में कोलाहल मचा हुआ है वहीं भारत सरकार को कोई खबर ही नहीं है।

विजय प्रताप जी ने अभी शुरू में आयुर्वेद का, जड़ी–बूटियों से इलाज करने का, सिद्धा आदि के बारे में बात की। पहाड़ी एरिया में भगवान बुद्ध के जीवक वैद्य जीवक थे। वो अस्वस्थ हो जाते थे, वहीं स्वामी विवेकानंद 17 बीमारियों से पीड़ित थे 39 वर्ष में ही मर गए तो जब बीमारी जोगी–महात्मा को बीमारी नहीं छोड़ती तो अदना–आदमी को क्या छोड़ेगी। मुझे लगता है यथासंभव उसमें वही *सर्वे श्याम रोगानाम्, निदानम् कुपिता मला,* शरीर से मल का विसर्जन साफ से करा दिया जाए यदि वो मल कुपित हो गया, वो रह गया तो सभी रोगों की जड़ में वही है। यह चरक वाक्य है। तो वही आयुर्वेद में उनका भी सुना दक्षिण में सिद्धा हो गया और यहां सोया जिरपा। पहाड़ी इलाके में भगवान बुद्ध के समय में सोया जिरपा यही जड़ी–बूटी वाला और दक्षिण में सिद्धा, अपने यहां आयुर्वेद हुआ। इसलिए सभी लोगों का बहुत धन्यवाद।

रवीन्द्र कुमार पाठक : रिंपोचे जी की कुछ सीमाएं हैं हम लोग तो गृहस्थ आदमी हैं और गृहस्थ जीवन में रहते हुए, छोटे आनंद से बड़े आन्नद की ओर कैसे पहुंचा जाए उसी के बारे में सोचते हैं और उसके बहुत से मार्ग हैं।

विजय प्रताप : जैसा शुरू में कहा था कि रिंपोचे जी अपने नाजुक स्वास्थ्य के बावजूद हम लोगों के बीच आए तो मैं सब साथियों की ओर से हृदय से आभारी हूं और आगे भी इस तरह की श्रृंखला में उनके आर्शी वचन हमको सुनने को मिलेंगे। इसी अपेक्षा के साथ आपका बहुत–बहुत धन्यवाद।

स्व. श्रीमती उषा परिख की स्मृति में : बुवेन विविर श्रृंखला–2016

(Dedicated to the Memory of Usha Parikh Buven Vivir Series 2016)

Subject: Meaning of Life-Meaningful life-in the light of Quran

"कुरान की रोशनी में जीवन का अर्थ तथा अर्थपूर्ण जीवन"

व्याख्यान : आरिफ मोहम्मद खान

तिथि : 17 मार्च 2016

स्थान : इंडिया इंटरनेशनल सेंटर

17 मार्च 2016 को सेडेड ने दिल्ली के इंडिया इंटरनैशल सेंटर में बुवेन विविर श्रृंखला के तहत स्वर्गीय श्रीमती उषा पारीख की स्मृति में 'कुरान की रोशनी में जीवन का अर्थ और अर्थमय जीवन' विषय पर एक विचार गोष्ठी का आयोजन किया; जिसमें आरिफ मोहम्मद खान ने अपना विशेष व्याख्यान दिया। बैठक का आरंभ करते हुए विजय प्रताप ने अपने विचार रखते हुए गोष्ठी की शुरूआत की :

Vijay Pratap : Today We requested Arif Bhai to Speak in English so will it have the since it is being we are attempting that it is web cast and also later on it is on U-tube so please forgive us that the Meeting in Delhi and It is on English So may we start of the introduction. I am Vijay Pratap I am Part of the World Social forum since the process started in India in 2002 January otherwise I am associated with Democracy movement we call it moving from corporate democracy to Swaraj under the rubric of Vasudhaiva Kutaumbakam so this juncture we are focusing on Human Nature relationship oriented issues and interface in that and in Hindi we call it Harit Swaraj and Ecological Democracy. Our democracy movement has all these dimensions social democracy, cultural democracy, economic democracy, gender democracy even about possibility of space to pursue on spiritual spaces so far that the institution setting and the cultural atmosphere should be such so the cultural democracy should provide should ensure that each one of us have the

freedom and not only freedom even excess if you don't sort of economic democracy then even spiritual persuades won't be easy for the society as a whole the kind of compromises and degradations sometimes one needs to go for the physical survival but in English language it would be difficult to convey all these dimensions of life could be conveyed with the idea of swaraj but we are not so confident of the kind of polity we have and the kind of language, Gandhi's language which has been co-opted we are not sure whether internationally if we just used Swaraj it will be understood so we call it comprehensive democracy with all these dimensions these are not discrete entities social, cultural, gender, spiritual, economic democracy so these are just dimensions and we are in compass till in our understanding in the idea of Swaraj but for audience which is outside the context of Gandhi and India for them we use the idea of comprehensive democracy and the slogan and the banner which we use is Vasudhaiva Kutumbakam. V.K. is also a registered organization not in India but elsewhere and through that organization we are also part of international council of word social forum so this is the brief introduction I went to maybe we start from there from introduction just two three line about your work and your interest of work specially the public dimension of your work.

Rajan Anand : I am a spiritual healer,

Avdesh Kumar: From Bihar, Sine 40-50 years I am working as social worker and now in PUCL

Sahid Kamal: From Bihar and working for social political issues especially in the field of alternative politics and NAPM

Rajni Kant Mudgal: I am basically from Trade Union; I am retired from Hindustan Times. Along with this I am working with Un-organized sectors,

presently working with SADED and and Assisting Pravasi Jan Manch, Rita Kumari.

Lal Baba: I am living Vrindavan, Mathura, Uttar Pradesh being involved in the Sant Life I am also working for society and nation. We are doing last rights of unidentified dead bodies according to Indian tradition.

Sonu Grover: We have Himgiri charitable trust in Gurgaon. We are working for women empowerment and teaching childerens of weaker secation.

Narendra Grover : We have himgiri charitable trust in Gurgaon.

Asit : I am researcher in SADED

Vikas Arora : I am working with SADED

Subhash Lomte: Working with Unorganized and rural worker since 35-40 years. I am associated with WSF when it was in India and also associated with National Campaign for Rural Workers in the Majdur Sabha, SADED and so far.

Rita Kumari: Bihar, I am working with migrant peoples and teach them and inform them about government policies made for them.

Taj Pal Sharma: I am a writer, wrote some 5 books.

Asif Nawaz : I am student of Arbic Language and kuranic studies, currently I am pursuing M.Phil from Jamia Milia Islamia my topic is concept of social justice in Islamic and western thoughts.

Dev Kumari Grover: I have been teaching since 29 years in Kadhmandu, and my specialization in military migration from Nepal. I am studying in women trafficking, environment, geography, cultural geography issues and also associated with SADED- Nepal. I attend meetings in Bangladesh, WSF

Vijay Laxmi : SADED

A.K. Awasthy : Advocate

Hussain wahid: I am from Aligarh

C. Das: SADED

Vibhor Juyal : attached with WSF movement from 2004

Indira Adhikari : I represent here for SADED-Nepal. I am visiting fellow in Kathmandu University. I attended several programs in WSF. I participated in SASF. I also participated in Tunis for Nepal political development.

Ravindra Pathak : I am from Gaya, Bihar, India. I belong for pluralist sanatani tradition. I am engaged in teaching Buddhisum. Socially I support my social activity; I support different traditional knowledge system in India Specially concerned with health and water. We have farmer's organization using traditional irrigation system and conservation organization name is Magadh, Jal, Jamaat. We are active specially in South Bihar. I always in mood to learn the Pluralist and affectation specially in our nation India. Thanks.

Arif Mohammad Khan : Associated with Vijay Ji and his organization.

Kalmind Krorin : I live in Kanada and I am one of the general coordinator of world social forum that going to be occur in Montreal this year and hope you will be able to be about this initiative that we have taking with our hearts and hopefully you will be able to put your hearts into it.

Ravindra Pathak: Now no need to speak more our learned elder brother is here and I request him to enlighten us to this topic Holy Quran and the subject matter is decided today.

Arif Mohamad Khan: Thank you very much. I must also express my graditute to Vijay Bhai and his associates who has giving me this opportunity to share my thoughts on this subject. They have organized a series of lectures on meaning of life and meaningful life and today he ask me to speak on this subject and I would like to welcome our guest Miss Karmind Macroance who has come from all the way from Kanada. I wish her pleasant stay in India and I hope her visit will enthuse all those who are associated with world social forum. I come to the topic and one question universally chases, every thinking person at one stage or another of her life is what is the meaning of life, purpose of life and how one can live a meaningful life. In fact this desire or curiosity to know what is the meaning of life this is something which distinguishes human beings from other sainsent beings and this question undoubtedly has engaged the attention of the learned and the common man alike since the dawn of civilization. Again it is the same question the desire to know the meaning of life has given birth to another question what after this life? Is there anything after this life? And people who I would say not efforts, people who strophe made great efforts to find an answer this question they devoted their lives and they had explained the answer variously. It is uniform answer which has come from all those in our own tradition. We have this great number of *Rishi's* who spend their lives in the forests; we have great Buddha who attained *Nirvana* we have Bhgwan Mahavir but they all the answer which they give is not the question is very interested the question is same universal question the answer is not uniform. If there is any uniformity in the answer it is and before I making these remarks before I come to the main subject "meaning of life and meaningful of life

in the light of Quran" before that I would like to refer to Socrates from the western tradition, Mahatma Buddh and arthva Vedha in fifth century the notice philosopher Socrates he asserted the "unexamined life is not worth living". He himself was a great philosopher, great thinking person, and great teacher. If he is telling others that an unexamined life is not worth living he surely must have examined his life he could have given the answer but he stopped there. The un- examined life is not worth living and Bhagwan Buddha on the last day of his life said to his disciple Anand and this is a very very poignant sentence you must be your own lamb and refuse, take refuse in nothing outside yourself, hold firm to the truth as a lamb and refuse and do not look for anything as refuse besides yourself. So ultimately and before I come to that I would also like to refer to *Shrotra of Atharva Ved* from *Sanatan* tradition which says do not be led by others awaken your own mind ms your own experience and decide for yourself your own path. So ultimately the buck stops at the door of each and every individual the thinking person to find the meaning of life in fact the Teacher can show the way they cannot take you to the destination. The destination is one's own responsibility. Now we can also what is the meaning of life possibly we can try to find the answer. We can try to find the answer in our hidden desires in feelings that emanates from our sub-conscious. When we greet each other we wish, when we wish our near and dear ones, we wish them happy life; we wish them peace in Jesuit tradition shalom in Muslim tradition salaam walekum, in Christian tradition good to you, good day, good morning. In *Sanatan* tradition I bow before the divinity which exists in me recognizes the divinity which exists in you and this divinity bow before, because the divinity is the same they are not different, our bodies may be different अहम ब्रहमासमी तत्वम् असि। It is the same supreme which duals which permits every being in and recognizing that somebody ask this question the another person is like you why you bow before him. I do not bow before that person I recognized the divinity and to that divinity I

salute. So basically we wish each other the hidden desires as I said those not many times we are not giving any great thought to it but we wish each other. So basically we want to live happy life, peaceful lives and we wish our near and dear ones to live happy and peaceful lives. But the basic question is that what is it that makes the life happy and peaceful? Peace, health, security, material well-being, education, knowledge, wealth, marriage, office friends, political power, influence. Again there is no uniform answer. Different things may appeal to different people one may find peace in one factor; the other may find peace in another factor so again that is the uniform answer. After making these remarks I come to the subject and I feel that Quran according to my understanding follows the same line of argument and exhausts the man to reflect in the signs of court, this is important I don't want to leave it just like there because if you read Quran carefully everything that is in the Universe, known things generally mentioned there and they have been described a signs of court and very important that the sentences of Quran the word which has been used for the sentences of Quran *Aayat* it is the same word we fortunately an Arabic scholar sitting here if I say something which because I am not a scholar I am merely a student then he can correct me. Everything visible the known subjects Quran each one of them is described in Quran as *Aayat,* that is the sign of court, animals there is the sings of god, signs of god reflect on them अफलायजरून इबलेका फरू.....Have you ever given thought how we have made the camel इललजिबा कैफलि..... how we have set up these heavy mountains इले समा..... how we had erected the heavens, skies. These are all described as signs of god and man is obliged to think about them, to reflect about them and to learn wisdom from them. Knowledge and then wisdom so not just that; In fact I can't give you the exact numbers but more than twice Quran says while discussing these signs of god वफीहल फुसीहन..... and even in your own souls the signs of god the human being

and not just the human system, signs of god the different colors of your skin their signs of god. The different languages that you speak their signs of god and we are obliged to study them to reflect about them and I must again make it clear I am not a scholar of Quran and certainly not a defender of any faith or particular line of thinking. I am merely a student religion fascinates me, every religion fascinates me and the study of the religion is one of my favorite subjects. So according to the Quran the whole pattern is creation is highly diversified not only in terms of different specifies but in terms of human nature, disposition and attitudes. Quran says कुल कुलुनया ..... each one does according to the disposition on which we created up and him is including in her, that is the right kind of language. The literal translation would be him but I am not taking the risk so I am making to use politically correct language. So each one does according to the disposition and whenever I say her please include him in that HER. Each one does according to his own disposition. So now each one of us going to act according to our own disposition we may take different paths. So in the next part of the sentences that position has been made clear. फरबकुम्म आलम.....Only your lord knows who is on the right path. This right is not being given to any human being to sit in judgment about the other human being. Only lord god knows who is in the right path. But each one acts according to one's own disposition and there is another word which generally is not made subject of discussion but I find it fascinating because it is speaks volumes about the human nature. Many a times I am not referring to Quran but I am referring to Semitic traditions, I am not referring to books of the religion *tora* and Bible, Quran no, but Semitic traditions. Many a times we develop traditions which are totally different from the teaching of the scripture. Hinduism or I would say *sanatan* vedantic religion prescribes total spiritual equality. शिवम आत्मानि पश्यन्ति the supreme dwells in everybody but the earlier lines which I quoted

अहम ब्रहमास्मि तत्वम असि Yet we develop a system where in large part of humanity there were treated as untouchables in fact the Swami Vivekananda has made a powerful statement on this and I am not going to refer to that right now. So life wise I am only referring to the traditions, I am not referring to the books because my understanding is that this tradition has nothing to do with the books and the tradition was this is the only way to salvish. If you follow any what we say in India एकम सत् विप्रा बहुदा वदंति the truth is one sages describes it variously. In Semitic tradition I am quoting from Veda and here I am referring to a practice, a tradition. I am comparing with the book. the Semitic tradition insistence was that is only one way to salvish. There is no other way to salvish but Quran here says वला तसु लज़ा..... everything else is false gods. This is the only way to salvations and all other ways are false. But here Quran says वला तसु लज़ा..... never revive, criticize, say bad things about those whom they worshiped other than god. फैहा सुब्बुलाह अद..... because if you will abuse the object of worship of another person, he will abuse the god whom you worship, But the line which I am going to highlight is the next we says कजालिका जैये..... thus we had made beautiful to each people its own doings. Whatever I am doing I am used to, I am habitual of this whole concept of 'I and other'. It comes from there because I feel that whatever I am doing is perfect. Whatever I am doing is beautiful, and if it is beautiful it is found to be fair and reasonable. And the problems comes when I say that this is the only fairly and reasonable way. So this is the "only" so only is the problem So this is the only way then if this is the only way then all other ways they become wrong, they become unfair. They become unreasonable, so here Quran is talking when god says we did this. If you look it clearly it is talking of human nature. So human nature is such that everything that I do I think that is the best. Now read it with the lines which I earlier quoted कुल कुलनिया.....each one does according to the disposition

which we have created and then whatever he does he think this is most beautiful thing. But Quran makes it clear not only फरब्बुकुम आलमू वि..... among you who have adopted different ways there may be right, there may be wrong while it is not for you to decide who is right and wrong it only god alone can decide. Who is right and who is wrong. Now two things are clear first actions are controlled by inner disposition, nature of a person and secondly each person her own actions are beautiful. Now to understand this is the basic human nature. Under this paradigm he tries to find meaning of life and then tries to live meaningful life if one wants to. So I have chosen two verses of Quran which deals with the story of the creation with the story of life and death here it says अल लजीज खला.... he has created death and life and this is very to my mind is very meaningful, why he has created life and death? that why he has created death and life that he may try you which of you best indeed. अयैकुम आस..... he has given you life so that he may test you so many lives. Now he wants to test you which one of you is best indeed. कौन सतकर्म करता है ये देखने के लिए तुम्हें पैदा किया गया है और इसके बाद तुम्हें मौत आनी है। I am merely relying on what others have written and not even what others have written I am relying mainly on the bare translation of the versus. So here referring to life and death it is made clear we have created you so that we may test you as to who is best indeed and then in another verse it says again same story of the creation he created अलकसा..... as it is mention in bible in six days and his thrown over water and next sentence is लियत लुवक्कुम ..... the whole purpose of this creation is so that you may be tested as Socrates says elsewhere 'a life unexamined is not worth living' here it's says लियत लुवक्कुम ..... so that you may be tested as to who is best indeed. Now the question will come what are the best deed, you bound to arise, If you have to live you are going to be tested as to who does best deed. सतकर्म कौन करता है फिर सतकर्म क्या हैं then here are the Quran says लिकुला अ.....

..... normally we hear so much about Muslim law the uniformity of Muslim law of being divine origin etc etc. but the divine book saying divine book according to believers लिकुली ज....to each among you each not each community to each individual. We have prescribed a law and in open way. In fact this it contradicts whole premise in which the structure of the law is based. It says law differs the rules of life, rules governing the life they differ from individual to individual as *Parmhans* has said 'यत मत तत पत' In fact there is a tradition of the holy prophet to the almost to the same effect. There are as many views as there are souls. So it's says लिकुलीज अललाम to each individual to each among you we have prescribe a law and an open way वलउशा .... if we had willed after we all believed to whatever religious traditions we have subscribe or even if we do not subscribe then even then we acknowledge that cosmic process even then we acknowledge that some supreme sprite which is greater than that of Einstein. even then we recognized if we don't want to call it by any name which the people of religion had given then even then we recognized and we recognized that force that god is omnipotent, problem is that we so used to use in the masculine term with reference to god then even though I do not want to use it but it is coming to my tongue. So we all recognized that god is omnipotent has controlled over everything; Quran quoted the word ख़ल्लाक the greatest creator master creator. So what the master creator is saying वलओ शाह .अल्लाह..... If we had willed, if god had willed we would have made you all subscribe to one view point. We would have made you all to be of one religious faith. God does not will so. The divine scheme is based on diversity. Even we can come to the conclusion that if we all were alike that it would be very dull scene, hardly any interest there, it will be poor society. If we had only one kind of food to eat then we won't be looking for these various outlets where type food is given. In fact diversity enriches the human society, today we can look all

around the world more a society is diverse, more prosperous the society is. more advanced the society is and fortunately in India the society unlike west where the society has become pluralistic during last 250-400 years. India has been pluralistic since time immemorial since recorded history, we have been because the *sutra* which I referred to एकम सदविप्रा बहुदा वदतिं this is undated. We do not exactly know whether it is 3500 years old or it is 5500 years old. it says वलउ शाह अल्लाह.. .. If we had willed, we would have made you all subscribe to one faith and then the next line is again is important वला किन लीय ..... same as I had refer to earlier two verses . Why we have not made you one? so that we can test you in what we have given you. It makes absolutely clear I will be questioned about what I have been given you will be question about what you have given the questioning will not be the same. If you are going on the road there is an accident, a common man if he does not stop there his fault would be, if he had stopped there and would have help this man to carry him to the hospital or given him a glass of water then possibly it would he failed in doing his duty but if there is a doctor and he does not stopped there his responsibilities and obligation will be much larger because the county, the society has spend money on him to save lives and here he was seeing somebody dying and he does not stopped so his responsibility and obligation would be much bigger than that of a common man. वला कुल लिएबलकुम फीमा .... earlier it was said who among you does the best deed here it does not say best deal. Here it says, so that we may test you in what, what we have given you. It may be your health, it may be your education, it may be your wealth, and it may be anything which you possess. Your capability to give happiness to others, your capability to bring a smile on the face of the poor everything is accountable same as you know the theory of *karma*. Everything you do returns to you. And the next thing what said फस्ताबिखुल..... now you don't bother about this thing who holds what views. But

compete with each other in doing good compete with a first तबिकुलखैईरात compete with each other in doing good. If there is a completion say for a worldly position for the post of chief secretary. For selection to work as a minister then there is always rivalry, jealously if I know much before the appointment if I know these two-three persons in line and I am one of them, then I will try to do everything to eliminate the other two. But when there is a competition in doing good, you are helping somebody who is poor, who is ill, somebody who is unwell, somebody who is suffers from many privations and someone else also comes there and helps that person you won't feel jealously, you would rather welcome that. So here competition is prescribed for doing good and then said इल अल्लाहि म..... and then all of you will return to us and then we shall decide about things on which you used to differ. We have no business to decide, we have no business to sit in judgment as human beings that right belongs to god and god alone and that decision will be in the hereafter not in this world. I have no right to run down any other tradition, I have no right to run down any other people, and I have no right to claim supremacy or to say this is the only way to the ultimate. This I am saying to understand what according to Quran is the meaning of life is.

Now I have read few papers on the purpose of life according to Islam. The line which is most frequently quoted from the Quran वमा खलतुल जिन्ना .... we have created, you know always remember when we read Quran that the first addresses of the Quran were the people who were totally illiterate. The historical accounts tell us that there were only 18 persons in *Makaah* including three women who recognized the letters alphabets and 11 in *Madina* in total 29. That's why the Quran uses the term *Ummi. Ummi* is used in two senses people who were without divine guidance because in the case of some josses they are described this people of poke is still some of them described as *Ummi.* Why? They had the book but they

do not follow it. And Arabs all of them despite the presence of these 29 persons, all of they described by Quran as *Ummis.* People who no neither reading nor writing. So we have to be careful. So here Jinn, generally it is translated. I have only created jinn's and men that they may serve me. Then Jinn it may be some creation we do not know. Jinn it may be the physical process of the nature. Because elsewhere Quran says that whatever is there. समाबातु सब्बो ..... each and everything it does not says Muslims alone it says each and every sansunt, non sansent being they are all engaged in the worship of one god. The interesting part of that verse is वईन मीन शहीन .... there is not one thing which is not engaged in this. वल्ला किल्ला.... but you do not know their mode of worship. I do not know. Ices scorpion is created by the god with poison. His worship is that if it is spring somebody that person must be affected that is the person why that has been created. But Quran tells us I am not going to be indulging in that kite flying, Quran says वला किल ला त..... each one is engaged in the worship of god but you do not know how, who they worship, you do not know their mode of worship. So again I would come to this who I am to pass the judgment about anybody, what do I know about this great scheme of nature. What do I know how they are doing, what they are obliged to do which accordingly. But here the world which has been used *Yaabudun*. *Yaabudun* most of the time it is referred to by the classic scholars so that it gives the impression that it means that human beings and jinnes have been created to perform prayers all the time. No! This is the classical view point, serve me, means serving the poor is serving god, serving the leper is serving the god. Serving the way fairer is serving the god. I am not giving my opinion this is what the Quran says. Serving the underclass is serving the god. Spending in charity, I am not sending money to the bank balance to the bank account of the god. I am somebody giving money to a needy person that has been described as *karjey-hasna*

beautiful loan. This is a beautiful loan which you are giving to god. So serving here has a very comprehensive meaning not just confined to service in the church or service in the temple. I have taken help of these verses of the holy Quran to understand what according to Quran the meaning of life is. Now we come to meaningful life.

Because only if we understand what is the meaning of life then possibly than can help us to live meaningful lives. I would like to refer to saying of *Molla Ali* where he said मन अरफा नफसोहु फक्त..... one who knows his own self, he knows his lord. In our own tradition it has been stated in various sutras सर्व शास्त्र पिरयोजनम् आत्मज्ञाना् the purpose of all knowledge, all sciences is to understand the self; *Aatman*. When whenever I read the quote of Molla Ali I am remained of this *sutras* from *sanatan* tradition. So Quran now since I have said I am coming to meaningful life. I think it is abundantly clear from the verses of the Quran that meaningful life according to Quran is 2-3 ingredients are there:

Believe in that supreme

Believe in accountability

Whatever I am doing either publically or privately I am accountable. All both same as the *Karma* theory and then one has been assured I had not thought earlier of referring to that verse but relying on my memory I like to quoted अल लजीज़ आमनू ...अल लजीना..... weather they are those who believe in prophet Mohammad or those who are juise or those who are Christian or those who are sabayons and about the sabayon there is difference of opinion among the the interpreters some considered there was a heretic set of the Christians in Syria who used to worship of stars there is another set of interpreters who says the sabiyans are they have used

the term for Buddhist but there is difference of opinion. And after that anybody who believes in the supreme मन आमना बिल्लाई..... in the theory of accountability वल अमीना सालोहिन.... and does right deed *satkarm* their reward is with their god and they have nothing to fear or grief. When I read this verse and try to understand its meaning I was bit shaken because I had been told from my childhood that only Muslims will be rewarded and Quran says everybody will be rewarded. Nobody has any reason to feel any reason if they believe in god, if they believe in accountability, if they do rightist deed then there is nothing to fear. And when I ask somebody then he told me that this particular word has been abrogated by another words. Later on I found similar words in another chapter so why abrogated verses coming again and again. Anyhow this abrogation theory is not worth discussing. But this is to understand the meaningful life. Meaningful life depends on your. When we talk about belief so belief is not 'blind belief' because elsewhere in Quran prophet is being ask to say that उल हाजिही सबीली .... say this is the path to which I invite you with opened eyes not with closed eyes. What I had written there on the question of believe there are, there very seriously differences among the Muslim scholars I won't go into that question because I can't assume that authority. And although it is a lighten note but justice *munir* commission in Pakistan which was constituted after the rights against the Hindis demand was to declare them non Muslims which later the great secular Bhutto did. This is again import that he committed that heinous crime. Who are you to sit in the judgment about the faith of a person? You can't call me by a name which I did not give to myself. If you call me by a name which I did not give to myself you ridiculing me, you are making fun of me. I have to decide what name I should give myself who was Pakistan government to decide whether they are Muslims or non Muslims and that let to what blood bath and what bad feeling and migration and everything in fact

Pakistan has not become normal since that time so I am not going into that question but this Munir commission it will help you to understand I am just giving you a lighter note that *Munir* commission when it was the demand was to declare them non-Muslim. So *munir* commission they invited all these Muslim scholars who belong to various set of organizations and they ask them we can declare somebody non- Muslim only if we know who is a Muslim so first define the Muslim. There were more than 100 Muslim scholars. Some of them more than two belonging to the same organization and if you read the report of munir commission you will find it so interesting. Justice *munir* in his report that what to say of individual scholars even two *Ulma* belonging to the same organization did not agree on the definition of Muslim. So if we do not agree and we have every right not to agree because diversity of thought is law of nature, fine but don't call anybody, let everybody live with his own way. In fact it shows the richness of the tradition it does to my mind there is no weaker but justice Munir said that if we introduce one more definition then it will become 89th definition if we accept one of those 88 definitions then others will rejected. So he left a question there. So I am coming to this now. So to understand the meaning of life and I find this very-very important. It's very difficult to I said earlier there are so much difference on the question of what actually religion and religion is? People's definition, scholar's definitions are differing. But Quran clearly define what religion is not or what is the denial of religion that Quran clearly defines and if Quran clearly defines then everything which comes in the category of define religion anything oppose to that will fall in the category of religion and natural logical. Quran says and one hopeful 4-5 verses full chapter, it says अराइकल लज़्जी.... have you seen the man who denies the religion? फजालुक.... this man is the one who pushes away the orphan does not help. The orphan comes to him, parentless child come to him with his

problem he does not entertain him rather he push him away. वल्लाह.... he is the one who does not feed the hungry nor ask others to feed the hungry. They are the ones who offer prayers to the god; they are the ones who were denying the religion. But they are not mindful of the demands of the prayer. अल लजीनाहुम..... they want to be seen preying in a place of prayer वयन उनल.... but they fail to extend a helping hand to their neighbors this is what is described as a denial of religion or irreligious life. Now everything to my mind, everything oppose to it will be religious life. One who looks after the orphan according to Quran will be a religious man will be living a meaningful life. One who feeds the hungry and he does not have enough means then he persuades others to help them to feed them. He will be living a life of religion and one who offers prayers he is conscious of his duty that he has to be helpful in his neighbor and neighbor not necessarily what religion ones belongs to because the tradition of the prophet says that the legitimate money that you have earned through the didn't of your sweat it becomes illegitimate for you. If someone in the neighborhood of 40 houses goes hungry that night. Then the food which you have eaten which you have purchased with your legitimate money even that food becomes illegitimate. And to further pursue this point there is a tradition of the prophet but it comes in the category of their 40 traditions which are called hadisey kusti. हदीसे कुसती are not ordinary traditions. They are given status between the traditions and versus of the Quran in this tradition it has been said that on the day of judgment god will ask the men I was Unwell and you did not come to inquire about my welfare. There three questions and all three the word has been used how can be unwell you are रब्बुलआलमीन you are the lord of the world; you are cherish of the world. Then god will say so and so was unwell and if you had gone to see him and inquire his wellbeing then you would have found me with him. Then same question will be ask about somebody who had ask you for food and again the

person will say you are रब्बुलआलबीन how could I had given you food, you give to everybody, such and such person came to your door he ask for food have you given him food you would had found me with him. Then same thing and same dialogue in the third stream. So this I feel that these possibly according to my viewpoint are the teachings which sort of paved the way for living meaningful life according to the Quranic perspective. Since I have mentioned these two points particularly this *Hadisey kusti* then I also like to refer to another *hadish*. In this tradition man has been exhorted and again this is also a *hadisey kusti*. अनफिक या इब्नेआदब... now man is being exhorted and being told spend on people and god will spend on you. Now what is this measure of spending? The measure of spending which is given in Quran वैयस अलनूका माज़ा ... they ask you how much we should spend and please remember this word युनफिकूना this is mostly used in reference to charity सदकर्म। वैयस अलूनका माजा..... they ask you means they ask the prophet how much they should spend? Now you tell them कुलील अफवा anything and everything which is beyond your need you spend in the cause of *Allah*. Anything and everything कुलील अफवा whatever is beyond your own needs spend it on poor on destitute and that is the reason many people many time ask me why I had to resign *shahbano*. I had to resign because this is the teaching of Quran and those who project themselves as the saviours of Quran. They were saying 200 giving 250 Rs. to destitute Muslim divorced women will destroy Islam. Quran is asking anything which is beyond your need and this is the women who spend time with you, who have produced your children now you had divorced her, she is without any means. The law of the land is not asking you to maintain her. The law of the land is not asking you to maintain her, law of the land is only asking you to provide bare minimum to her so that she can keep her body and soul together and the saviors of Islam saying that if this is done then Islam will be destroyed. I am

not saying when I say difficult time, does not mean that I was disserted no but to mean that was a better basically it was not just that the rights of a destitute were deny it was because what they were doing was distortion of Islamic particularly Quranic teachings that's why I extent to resigning from the government. And Quran clearly says who are the people, who are the benefited by this charity? This is the फुकरा वलमसाकीन। *Fukra* the destitute *Masakeen* same category. This money can also be spending to win heart of the people. This money can be spend to free the slaves because that was the society where slavery was rampant so this money is ...can we use for that. The worlds over some slavas karva there but the hotels were not there so this money can be used. Even to look after the people who are journey who were on travelling, who are on their way these are the people and elsewhere it has been said that there are other people who apparently do not look needy. So it is your duty to find about them and the ignorant feel that they are very well to do but to help them because they do not ask anybody to gives them anything. So it is your duty to find them out and helped and that has been described as charity of create merit. I am going to bring it to an end with a tradition of the prophet and a line from the Quran where it has been said and this is to understand what meaningful life from the Quranic and Islamic perspective can be. That First of all as per the Muslim the believers in the Quran are concern they have been told. कुन्तुम खईरा..... now many a times I have heard the stop telling of the full story. The meaning of line is you have been evolved as a best community for whom? For yourself, No! Not for muslimen, linnas. You have been evolved as a best community for people at large do good to them, we stop short, you have been evolved a best community that's all. I am the best. Here to by doing so I assert my supremacy over others. Quran has made me best. And I absolve myself of the duties which are placed on me. The duty placed on me is I have to be best to the

people, to the poor, to the needy, to the diseased; anybody whom I considered less fortunate than me that person has a right over. Prophet in its tradition made it abundantly clear. He said हैरकुम मन..... the best among you, the one is lived best life is who? Who is best to the people? यन फन उन्नासा....and then finally great principle inherent in one line वामा मा यन.... this is not about the Muslims, this is not about any particular person this is a general principle of wisdom and the general principle of wisdom is वामा मा यन.... whatever benefits mankind abides on the earth we make we give it longevity. Now longevity is not in terms of age, longevity in terms of people remembers those who do well to the people. They are remembered as long as their name lives as long as their good deeds are remembered by the people. To me I have tried to its very difficult subject for me, I have already told Vijay Bhai he did not spare me. I am not a scholar; I am merely a student of religion. I am not even a defender of religion. In fact I doubt about my faith but I am a student and I considered these scriptures a great source of wisdom. And from that view point I tried to study them. Thank you very much.

Suresh Sharma: Put on historical canvas this very important intervention by Arif Mohammad Khan sahib. It is very extra ordinary intervention in many ways and I say that with full consideration, In Islam and Christianity had a long encounter here. In fact encounter which is much sustained now but extra ordinary thing is it did not lead to the kind of philosophical and cultural conversation into the world of Islam and in the world of Christianity. I say this quiet knowing the very rich complex tradition around the courts in Spain. But that was a conversation convened..... If you look at European history it has very little presence in folk touch. It is very little presence in folk memory for instance. It did not confused any confirmed picture which lay a kind of compiling claim on folk attention of the politic memory of the kind we have and that is how can truly extraordinary and it

is something which we should not get and the pressures to make forget that it is very great. They comes largely from political process, I don't think that kind of pressure quiet transmuted into any kind of significant cultureless and that is indeed a same grace but I don't want to give lecture on that but I want to say that for example Willion johans came to India and what example from Willion johans because the thematic that Arif Sahab is taken up is about universality. And I tare up of universality religion cause as the heart of the predicament which lights enter of the legitimization. Religion in a sense is act of joint boundaries but spiritual commitment against on thresh wants it negates this boundaries. Arif sahab if I am periphery says is being talking about precisely the presence of vital, very intense, very deep and very powerful space within this very confined religious boundaries. But seeks to negate and transient and the word transient is very important here because life as we know is finned its experienced even the most gifted person are circumscribed by certain finned. But the very notion meaning arises thought request to be able to transient this. So the meaning is in the sense all about infinity and therefore it contained against special boundaries and this is a conversation we have very grand tradition of that I will just mention a concept which I recall and striking initiatives with such great power and sensitivity दर्शगो .... very sisciofic marked, what is he saying is that the notion of demand when it gets treated with law, creates very tropics because kufri can defined in terms of the law and not in the terms of the attitude question. So that is another strained of the symmetric traditions which arif sahab is did. I was most educated but his focus in certain words from the Quranic lexicon the word *Fukra,* it is common world in Hindi usage. and in the usage of many Indian languages I am stuck, I never suspected that it had a Quranik linage it means significant it bite very quietly and the Quranik reference in it may be written by most people unknown a the fact is the unknown does it mean its mange because it has power to reach and I site this also because

you know about in the junction of my Arif Sahab sited about this very category of *hadis Kusti*. Now he is a great paradox in my view that *hadis* a *kusti* it is a attempt at almost a kind of lawful legal framework that making you the right thing but all the great examples in it come from a source which means attention. I won't to focus on this word *fukra* and the word dignity which is a word greatly favoured in politically discourse and in the discourse of political connectness in its orignis the world dignity, dignitas is a privilege which the most disposed the most destitute you won't bear so this again it's a idea which refer to a kind of inner line the binding in a finite light and this inner light would be refers on the point of infinity so this is wonderful and extremely educated so this not really a comment but just a foot note.

ओम थानवी : मैं थोड़ी देर से आया हो सकता है आपने इस पर रोशनी डाली हो ये जो हल्ला खड़ा हो गया 'भारत माता की जय' वाला तो हमने तो ये सोचा है कि इस्लाम में सलाम तो कर सकते हैं लेकिन वंदना जो है जिसको इबादत कहते हैं वो अल्लाह की ही है। तो ये बात हमको तो समझ में आती है लेकिन महात्मा गांधी ने कभी भारत माता की जय बोली हो ये मुझे याद नहीं पड़ता है कि कभी बोला हो। यदि बोला हो तो कोई कोट करके निकाल ले। नेहरू जी ने जरूर डिस्कवरी ऑफ इंडिया पर इस बात पर विस्तार से लिखा जब लोगों ने भारत माता की जय के नारे लगाए तो उन्होंने गुस्से में कहा कि ये भारत माता कौन है, तो लोग समझे नहीं तो उन्होंने सवाल किया कि ये कौन है औरत है, उसका क्या रंग–रूप है, उसके बाल कैसे हैं वगैरह। फिर उन्होंने कहा कि आप और हम ही भारत माता हैं तो जब हम भारत माता की जय बोलते हैं तो हम अपनी ही जय बोलते हैं। तो उनको समझा कि ठीक है जब अपनी ही जय बोल रहे हैं तो उसपर इतना हल्ला क्यों है तो एक तो मैं इस बात को समझना चाहता हूं। अभी एक बड़ी तकरीर पॉर्लियामेंट में जावेद अख्तर साहब कर गए वो थोड़े चालाक आदमी हैं क्योंकि वो सिनेमा के हैं। उन्होंने सोले फिल्म के डॉयलॉग लिखे हैं तो उनकी बात को

लोगों ने सोशल मीडिया में किया और कहा कि कितनी बढ़िया तकरीर करके गए हैं। उन्होंने ये कहा है कि ये मेरा अधिकार है कि मैं भारत माता की जय बोलूं और उसके बाद ओवेसी के ऊपर हमला भी किया कि जिसे कोई जानता नहीं है वो शेरवानी, टोपी क्यों पहनते हैं ऐसा कौन से कुरान में लिखा है। तो इसलिए भारत माता की जय बोले में क्या दिक्कत है ये मेरा अधिकार है। मेरा कहना ये है कि ये बात उन्होंने चालाकी से कही, उन्होंने अधिकार की बात तो कही है, दायित्वों की बात नहीं की। उसको ड्यूटी नहीं बताया जब वो ड्यूटी नहीं है, अधिकार है। तो जितना अधिकार बोलने का है उतना ना बोलने का भी हासिल हो सकता है और कोई बोले तो अच्छा न बोले तो अच्छा। शेरवानी पहने, न पहने तो आप इस बारे में क्या सोचते हैं क्योंकि मैं इस विषय पर थोड़ा कनफ्यूज हूं।

आरिफ मोहम्मद खान : पहली बात तो ये है कि 'भारत माता की जय' में इबादत कहां है, कहीं तो कुछ तो हो। दूसरी बात है कि मैं अगर 'जय हिन्द' कहता हूं तो भी हम अपनी ही जय लगा रहे हैं 'जय हिंद' मतलब कि 'हम सब'। तो भारत माता की जय, हम सब तो एक मामले में तो मैं पूरी तरह थानवी साहब की बात से सहमत हूं और न केवल सहमत हूं बल्कि मैंने कहीं पर लिखा भी है वो 'आर्गेनाइजर' पत्रिका में छपा है। विजय प्रताप मल्होत्रा का लेख है वंदे मातरम की विवाद में। और क्योंकि मैंने वंदे मातरम का अनुवाद किया था हिन्दी में और उसके बारे मैं कुछ कहूं तो वो मैं कोई तारीफ में नहीं कह रहा हूं लेकिन मैं ये बताने की कोशिश कर रहा हूं कि हम दुर्भाग्य से चीजों को समझे बगैर केवल नारों से प्रभावित होकर बहुत सी राय बना देते हैं। एक बहुत वरिष्ठ बीजेपी के नेता ने मुझे फोन किया और कहा कि आरिफ भाई मैं आपका शुक्रिया करना चाहता हूं। तो उस समय कई लोगों ने मुझे कहा कि मैंने बहुत अच्छा लिखा तो मैं उनका भी शुक्रिया अदा करना चाहता हूं। वो बोले कि मुझे तो इसके अर्थ का पता ही नहीं था। मुझे वंदे मातरम के इस अनुवाद से पहले इसका अर्थ पता नहीं था और मैंने बहुत बाद में जिंदाबाद, मुर्दाबाद भी की है। उन लोगों के खिलाफ जो मना

करते हैं। मैंने वंदे मातरम का अनुवाद करके अपने एक मित्र को जो कि लखनऊ में नदवा जो बहुत लीडिंग इस्लामिक सेमिनरी में हैं उन्हें तब दिया जब तक वो छपा नहीं था है और मैंने कहा कि उन्हें मेरा नाम मत बताना और कहना कि मेरे किसी दोस्त ने एक नज़्म लिखी है। ये भी मत बताना कि ये वंदे मातरम का तर्जुमा है और इसमें क्या चीजें काबिले एतराज़ है तो उन्होंने कहा कि कोई भी चीज काबिले एतराज नहीं है। यदि आप रफ़ी अहमद किदवई साहब को पढ़िए वो वंदे मातरम के ऊपर एक छोटी सी किताब है रफ़ी साहब ने कहा कि जिन्ना साहब तो हमारे साथ खड़े होकर वंदे मातरम गाते थे। लेकिन 37 के बाद क्योंकि उन्होंने एक नई राजनीति शुरू की थी और वो नई राजनीति दुर्भाग्य से उन्होंने गांधी जी उन्हें... मेरे नजदीक गांधी जी महात्मा से भी बड़े महात्मा हैं लेकिन गांधीजी ने ख़िलाफत आंदोलन का जो बलंडर किया है उसे मैं कहे बगैर नहीं रह सकता। मैंने उसे अपनी किताब में भी लिखा है, मैंने उसके ऊपर लेख भी लिखे हैं। जिन्ना ने नागपुर में गांधी जी से कहा don't play with fire, don't allow this mixing of religion with politics. लेकिन सारा मुल्ला गांधी जी के साथ था, उन्होंने सोचा कि अब मुझे जिन्ना की क्या जरूरत है, जिन्ना को हूट आउट करा दिया। जिन्ना छोड़कर चला गया। अब जमीन तैयार की गांधी जी के नेतृत्व में खिलाफत मूवमेंट ने। फसल काटी, लंदन से लौटकर आकर जिन्ना ने। जिन्ना उस वक्त तक सख्त खिलाफ था रिलीजन और पॉलिटिक्स को जोड़ने के। यही जुम्ले हैं जिन्ना के नागपुर के सेशन में don't mix politics with religion you are playing with fire. अब ये बड़ी अजीब बात थी। हम अपने देश के लिए आजादी चाहते थे और हम चाहते थे कि तुर्की खिलाफत बनी रहे, जो अरबों पर राज कर रहे थे, जो सारे बालटिक स्टेट हैं। दूसरे की गुलामी को हम खिलाफत के नाम पर जस्टीफाई कर रहे हैं। पूरी अरब दुनिया उस खिलाफत की मुगालफत में खड़ी थी और हमारे यहां नारा लग रहा था 'बोली अम्मा मोहम्मद अली की जान बेटा, खिलाफत पर दे दो।' और उसके लीडर, डिक्टेटर, फारमली डिक्टेटर चुना गया था महात्मा गांधी को। मैं महात्मा गांधी की

आलोचना नहीं कर रहा हूं। महात्मा गांधी इंसान थे। हम महात्मा किसी को बनाते हैं ताकि। हमारे एक साथी हैं गुणवंत भाई तो उन्होंने एक बड़ा खूबसूरत जुम्ला लिखा। उन्होंने कहा कि महामानव भी मानव ही होते हैं लेकिन हम उन्हें भगवान बना देते हैं ताकि हम उनका उनका अनुकरण करने की जिम्मेदारी से बच जाएं। असली खेल यही है। अभी मैंने आपको भूमिका बताई अब मैं आपको पूरा कुरानिक संदर्भ बता रहा हूं। उससे पहले एक जुम्ला कह दूं कि वो जो हैं जो कहते हैं कि इबादत, इनम इमल आलो बिनियात every actions depend on your intention whatever you may say with your tongue. अगर आपकी नीयत इबादत की नहीं है तो वो इबादत नहीं है। तो इबादत कोई फोरम से नहीं होती है, इबादत तो नीयत से होती है। मैं मंदिर में जाऊं, मैं गणेश जी की पूजा करने नहीं जा रहा हूं, मैं गणेश जी को भगवान नहीं मानता हूं। हिन्दू भी नहीं मानते। ये जो बेचारे पर स्वामी विवेकानंद और डॉ. राधाकृष्णन लिखते हैं कि ये आदर्श पूजा नहीं है। ये अभिव्यक्ति इन्हें छोड़ दें तो मसूदी ने अरब इतिहासकार ने आठवीं शताब्दी में लिखा है हिन्दुओं को बुतपरस्त समझने की गलती मत करना शिरक में और ज़हूर में फर्क है। शिरक है ये खुदा के साथ इसको भी शरीक कर दो और उसको भी शरीक कर दो। और खुदा अपनी सृष्टि/रचना में जाहिर होता है ये शिरक नहीं है। ये इब्ले अरबी का जो फससफ़ा है वैहदतो उल वजूद ये यही है। तो मसूदी ने लिखा है इसको बुतपरस्त समझने की गलती मत करना। तुम्हारा किबला मक्के में है, यहूदी का किबला जेरूशलम में है ये अपना किबला अपनी जेब में लेकर घूमता है। ये जहां पर भी पहुंचा वहां इसने अपना किबला सामने रखा और इबादत कर ली। ये मसूदी ने लिखा है जो आठवीं सदी का अरब इतिहासकार है। मैंने डॉ. राधाकृष्णन को पहले पढ़ा, स्वामी विवेकानंद को पहले पढ़ा, इसको बाद में पढ़ा तो फिर मैंने कहा कि ये दोनों तो वही कह रहे हैं जो उसने आठवीं सदी में ही कह दिया था कि तुम इधर मुंह करते हो, तुम उधर मुंह करते हो और ये अपनी जेब में रखता है। जहां पहुंचा वहीं रखा और वहीं उसने इबाबत कर दी। ये sturdy monotheist है। अब मैं कुरानिक संदर्भ में

आता हूं। इन मित्रों से पूछिए जब इंसान को बनाने के बाद, आदम को बनाने के बाद अल्लाह ने हुक्म दिया फरिशतों को। फरिशते भी तो अल्लाह की मखरूख़ है। आदम को सजदा करो। वो क्या था। हां इससे पहले एक और बात बताना चाहता था। 250 साल तक मुगलों ने जिल्ले–इलाही को कोर्ट में सजदा कराया तब इन्हीं लोगों से पूछा गया कि भई ये मुगल क्या करा रहे हैं, ये तो सजदा कराते हैं इनके यहां तो कोई काम को लेकर जाओ तो पहले वहां जाकर झुको। उन्होंने कहा कि ये इबादत का सजदा नहीं है ये तो तादीन का सजदा है। जब जो जी चाहे वो कह दीजिए। कुरान के संदर्भ में कहें तो कुरान में अल्लाह ने आदम को फरिशतों से सजदा करवाया। आदिम को सजदा नहीं कराया आदम से कराया। जिस वक्त आदम को बना दिया तब सजदा नहीं कराया। आदम को नॉलेज दी और इन चीजों की नॉलेज दी और फरिश्तों से कहा कि ये क्या है तो फरिशतों ने कहा कि हम नहीं जानते। आदम से कहा ये क्या है तो बोले कि ये–ये है फिर फरिशतों से कहा कि अब सजदा करो। तो क्या मतलब है ये जिसके पास ज्ञान होगा, विद्या होगी उसके पास अज्ञानी को सज़दा करना ही पड़ेगा। हम सजदा कर रहे हैं अब चाहे हम अमेरिका या यूरोप को जितनी भी गालियां दें लेकिन सारे नोबेल प्राइज़ वहीं हैं इसलिए सजदा कर रहे हैं। न सजदा करो तो भी जब भी हम ये आई पेड इस्तेमाल करते हैं तो हम सजदा करते हैं। हम क्यों नहीं बना सकते थे आई पेड? तो ये तो हो गया फरिशतों से आदमी को सज़दा कराने की बात अब कुरान में सुरा यूसूफ में आइए। हजरत युसुफ अली सलम पैगम्बर, उनके बाप पैगम्बर, उनके भाई पैगम्बर नहीं। एक दिन बाप से कहते हैं कि मैंने ख्वाब देखा है मुझे 11 तारे और चांद मिलकर मेरे सामने सजदा कर रहे हैं। अब वो भी पैगम्बर थे। मुसलमान इन्हें उतना ही आदर–सम्मान दें but they are essentially juist prophetes तो कहते हैं मैंने ख्वाब देखा है कि वो मुझे सजदा कर रहे हैं। तो हजरत याकुब अली इस्लाम कहते हैं प्रोफिट हैं तो कहना चाहिए कि अल्ला के अलावा कोई किसी को सजदा कर सकता। तो

उन्होंने कहा कि अपने भाईयों को ये ख्वाब मत बताना। जलन पैदा हो जाएगी और वो तुम्हें परेशान करेंगे। लेकिन उन्होंने तभी बता दिया और वही हुआ। बाप ने जब वो

when he became ruler of the Egypt it is he who brought slavery juice from Egypt.

मोज़िज लाए हैं वापिस लेकिन उनकी जो जूज की जो सुप्रीमेसी कायम हुई थी वो हजरत युसुफ अली इस्लान की वजह से हुई थी फिर भाईयों ने उन्हें कुंए में डाल दिया। फिर किसी ट्रैवलिंग कारवां ट्रेडरस ने उन्हें खरीद लिया फिर मिश्र के बाजार में बेचा। इत्तेफाक से वो मिश्र के शासक के यहां पर गुलाम होकर पहुंच गए। लेकिन उसकी योग्यता के कारण वो बहुत बड़े ओहदे पर पहुंचा और फिर उन्हीं के जरिए वो फिर मिश्र के शासक हो गए और फिर उन्हीं के जरिए सारे जूज वहां पहुंच गए जो बाद में गुलाम बने फिर हज़रत मूसा उन्हें निकालकर लाए तो फिर वहां पर उस वक्त याकूब अली सिलान जो खुद प्रोफिट हैं कुरान के मुताबिक। यकाबू अली सिलाम और उनके 12 बेटे थे एक युसूफ और 11 और। वो 11 और याकुब अली सिलान कोर्ट में सदज़ा करते हैं। वो क्या है। ये सब राजनीतिक स्लोगन हैं किसी को सजदा करने के लिए नीयत करनी जरूरी है। अकबरूद्दीन उवेसी का ताल्लुक उस वक्त जावेद अख़्तर चालाकी से कहें कि न कहें मैं बहुत जमाने से कहता हूं कि ये वो लोग हैं जिन्होंने ये उसी तरह की पार्टी थी ये तो पॉलिटिकल विंग था। इनकी असल आर्गेनाइजेशन थी ख़ाकसार जिन्होंने हैदराबाद में एक साल तक मौत का नंगा नाच नाचा और उसके बाद पुलिस एक्शन। हमारे नवाब छतारी का घर जला दिया उन्होंने। वो प्रधानमंत्री थे। और निज़ाम उनके प्रभाव में आ ही गए थे। उन्होंने उसी दिन उन्होंने और अंग्रेज रेजीडेंट कमीशनर ने इस्तीफा दे दिया। मीरलाया कली उसी पार्टी के वो प्रधानमंत्री हो गए। डेलीगेशन यहां आया। मौलाना आजाद ने कहा बल्कि सरदार पटेल भी उन सारी चीजों के। सरदार पटेल ने भी हस्ताक्षर कर दिए थे। ऐसा शानदार इनको ऑफर किया था। जब वो

बताया मौलाना ने वो घर पर चाय पी रहे थे। तो मीरलायक अली कहते हैं कि मौलाना आप तो हमें बुजदिली सिखा रहे हैं। पन्द्रह दिन के अंदर लाल किले पर निज़ाम का आसफी झंडा लहराएगा तो मौलाना ने चाय रख दी और कहा जाइए अब आप झंडा लहराइए। इन्होंने खून–खराबा करवाया था। ये आज भी। मैं हमेशा कहता था यूपीए की कॉनसिटयूशन पार्टी वो पार्टी थी दस साल तक जिन्होंने हिन्दुस्तान की इंटीग्रिटी को हमेशा चैंलेंज किया।

ओम थानवी : ओवेसी से मेरा कोई सरोकार नहीं है। मेरा सवाल अभी भी वहीं है मैंने कहा कि जब कोई 'भारत माता की जय' नहीं बोलता तो क्या उसपर कोई जिम्मेदारी आयद है और उसको संसद से इस बिना पर निकाला जाए कि उसने नहीं बोला ये तो एक सवाल। दूसरा आपने कहा कि ये जो है ये इबादत नहीं है। वंदे मातरम वंदना जो है वंदना का अर्थ संस्कृत के हिसाब से इबादत ही होता है नमन नहीं होता है। अब जो वंदे मातरम से भारत माता की जय का अनुवाद किया गया है। मैंने इसलिए कहा कि महात्मा गांधी नहीं बोलते थे। आनंद मठ से जो झगड़ा शुरू हुआ। आनंद मठ बंकिम बाबू ने लिखा तो वो उसमें मुसलमानों के खिलाफ खूब लिखा है। और उसमें लिखा है कि 'जो दाड़ी वाले आ रहे हैं उनको मारो।' वंदे मातरम का इस्तेमाल उपन्यास में हुआ और उन्होंने उसे बाद में उपन्यास में परिष्टि में भी देना शुरू किया तो जब हमारे यहां नैशनल सोंग की, एन्थम की बात चली तो झगड़ा शुरू हुआ और ऐंथम फाइनली बना नहीं और जो बीच का रास्ता इंडिया में शुरू होता है इसको नैशनल सोंग बना दीजिए तो राष्ट्रगान बना दिया और वो लाइनें निकाल दी जिसमें उन्होंने 'दुर्गा वर्द वाहिनी' कहा है, 'कमला कमल' याने जो सारे हिन्दी प्रतीक थे वो निकाल दिए। अब मान लीजिए इस पृष्ठभूमि में कोई मुझे ऐसा कहता है कि मैं इसको नहीं बोलता तो मुझे बोलने में कोई दिक्कत नहीं है। मैं बंदे मातरम की जय, भारत माता की जय ऐसा कुछ भी बोलूं और उसकी पार्टी कैसी भी है लेकिन वो नहीं बोलता उसके लिए आप उसे असेंबली से निकाल दें इसलिए मैंने कहा। कि ये जो चीजें जा रही हैं हम राष्ट्रवाद को जरूरत से

ज्यादा हावी कर रहे हैं। यहां यमुना पर इतना बड़ा तमाश हुआ संस्कृति के नाम पर तो उसमें जब पाकिस्तान जिंदाबाद बोला गया तो जो श्री श्री हैं उन्होंने जवाब में जय हिन्द बोला। उन्होंने भारत माता की जय नहीं बोला। तो ठीक है हमें कोई दिक्कत नहीं है। जब जय हिन्द में आपने बोला कि आपकी हमारी जय है तो एक विशेष नारा थोपना जो है ये मेरा मानना है ये उसके मौलिक अधिकार की बात नहीं है बल्कि उसके हनन की बात है।

आरिफ मोहम्मद खान : मैं आपसे सामान्यतः सहमत करता हूं। और जिस लेख की मैंने आपसे बात की थी उसमें मैंने यही कहा था कि वंदे मातरम हमारा राष्ट्रीय गाना है। चाहे हमने एतराज किया हो या कुछ भी किया हो लेकिन हमने उसे सोंग माना है। और राष्ट्रीय कर्तव्यों का पहली ही धारा हमारे ऊपर ये ओबलिगेशन डालता है कि हम नैशनल आइकोनस, नैशनल एनथम और नैशनल सोंग का सम्मान करें। मेरी ड्यूटी है अपने मां–बाप का सम्मान करने की लेकिन क्या आप मां–बाप का सम्मान कानून से करवा सकते हैं। तमाम लोग हैं जो अपने मां–बाप को ओल्ड ऐज होम में भेज रहे हैं। मैं कहता हूं कि ये चेतना के विषय हैं वो पुलिस एक्शन से नहीं हो सकते। आप देश भक्ति पुलिस एक्शन से पैदा नहीं कर सकते। आप लॉ बनाकर नहीं कर सकते। ये बिल्कुल गलत है और अगर हम ये करेंगे तो हम तो चारवाक के देश हैं जिसने हर चीज जो हिन्दुस्तानी सुकरात मानते थे। He rubbished everything which we have sacred हमने ये नहीं कि पत्थर बांट दो उसकी सेलिबरिल पॉवर को हमने स्वीकार किया उसको महात्मा कहा, उसे ऋषि कहा। तो ये तो हमारी अपनी परंपराओं के खिलाफ है। हमें कोई हक नहीं पहुंचता। कोई जो राय रखना चाहे। हमने एक बात कही इसमें जिसमें आपको रूचि लगेगी। ये कहां से शुरू हुआ। ये मुसलमानों में एक ग्रुप रहा है शुरू से जिन्होंने कुरान किसी इंसान को कहीं ये हक नहीं देता कि मैं जजमेंट में बैठ सकूं। उन्होंने उल ..... the judgment belongs to god and god alone.

इस हद तक कि जब ओहद की बैटिल में। बैटिल तो हम कहते हैं कि हमला था मक्के वाले आए थे और मदीने पर अटैक किया था। प्रोफिट घायल हो गए। उनके दो दांत टूट गए, बेहोश हो गए, उनको होश आया। तो उन्होंने कहा "वो कौम कैसे फला पाएगी जो अपने नबी को जख्मी करे।" How a people who injured their own prophet shall succeeded, shall prosper. अब अपने लोग किन्हें बता रहे थे वो। जो बुतों को पूजते थे, जो हमला करने आए थे जो प्रोफेट को मानने वालों को मस्जिद में नहीं जाने देते थे। और उन्हें घर छोड़ने के लिए मजबूर किया था। वो कह रहे थे कि वो मेरे अपने नबी हैं वो क्या फला पाएंगे। अब ये कुरान में आयत है कि ये बात भी अल्ला को पसंद नहीं आई और कुरान में फौरन एक आयत आई लई सलका.....फैसले में आपका कोई इख्तिार नहीं कि आप ये वंडर करें कि ये सफल होंगे कि नहीं होंगे। ये सिर्फ हमारा फैसला करने का काम है कि चाहे हम इनपर अपनी रैहमतों की यतुबाले.... या इनको सजा दें। आखिर में क्या कह दिया फैयनिमून.....इनके जालिम होने में कोई संदेह नहीं है जालिमों के ऊपर भी फैसला करने का हक आपको नहीं है, हम करेंगे तो हमें जजमेंट में फैसला करने का हक तो है ही नहीं। इसके बावजूद मुसलमानों में एक ग्रुप बन गया जिन्होंने हर किसी के बारे में फतवा देना शुरू किया इस्लामिक इतिहास में तफकीरी ग्रुप कहा जाता है। जो दूसरों को काफिर बनाने का फतवा देते थे। पहला फतवा किसके खिलाफ आया। चार जिन्हें खुलफाए राजदीन कहते हैं। हजरत अली के खिलाफ पहला फतवा दिया गया है कि ये काफिर हो गए तो जिसको जी चाहे उसको काफिर कहिए ये हमारे कुछ मित्र क्योंकि वो कोशिश कर रहे हैं भारतीय परंपराओं का सेमीटाइजेशन करने की तो वो हमारे इंसानों की ये मजबूरी है कि हम एक–दूसरे से अच्छी चीजें कम ही सीखते हैं लेकिन हम राजनीति में खासतौर से बुरी चीजें खींचकर लाते हैं। तो ये आप चेतना के मामले में कानून का सहारा लेना चाहते हैं यदि चेतना के मामले में देश भक्ति, चेतना का मामला है आप जिस तरह के किसी से अपने मां–बाप का सम्मान कानून से नहीं करवा सकते हैं यदि वो करेगा तो उसके लिए उसके अंदर से भी भावना आएगी तो

भारत भी हमारी मां है। मैं अपनी भौतिक मां को वृद्धावस्था में छोड़ने को तैयार हूं उसके खिलाफ आप कार्यवाही क्यों नहीं करते।

ओम थानवी : वीर सावरकर कहते थे कि भारत पिता है, माता नहीं।

आरिफ : हां तो पिता को भी तो वृद्धावस्था में नहीं छोड़ा जा सकता है।

वक्ता : बीच में आपने काफिर शब्द का उपयोग किया। तो जरा उसके बारे में बताएं। कुरान के माध्यम से उसका क्या अर्थ है?

आरिफ : मैं अपको अपनी समझ कुरान के हिसाब से बता सकता हूं। मैं जितना कुरान पढ़ता हूं, काफिर उसको कहा गया है जो दूसरों को उनकी मजहबी आजादी से वंचित (डिनाइ) करता हो। कुरान में बार–बार काफिर के साथ शब्द आया है 'वैयसुदूना अनसबीअल्ल।' जो दूसरों को अल्ला के रास्ते में जाने से रोकते हैं लेकिन ये माना ना तो मुस्लिम लॉ में है और न ही ये आमतौर से बताया जाता है। मेरी एक बार साऊदी अरब के मित्रों से बात हो रही थी तो मैंने कहा कि जिन लोगों को काफिर कहा गया है, मक्के में वो थे जो प्रोफिट के फॉलोवरस को मस्जिद में घुसने नहीं देते थे, अगर वो जाते थे खुद प्रोफिट को, अगर वो वहां गए वो वहां नमाज पढ़ रहे हैं, ऊंट की ओझड़ी लाकर उनके ऊपर डाल दी। उनके लिए काफिर लफ्ज आया है।

वक्ता : मैं देश और राष्ट्र के प्रति जो हमारा समाज है उसके प्रति भी थोड़ा कहें।

आरिफ : 'काफिर' हर वो आदमी है जो दूसरे के अंतकरण के अधिकार का आदर न करे, हनन न करे तो मेरे नजदीक काफिर वो है। जो लीगलिस्ट हैं उनके नजदीक तो हिन्दू भी काफिर, क्रिश्चन भी काफिर, यहूदी भी काफिर। फिर बरेलवी के लिए देवबंदी काफिर, देवबंदी के लिए बरेलवी काफिर और दोनों को मिलाकर शिया काफिर तो वो तो उनके लिए अहमदिया। कुरान के नजदीक काफिर वो है जो दूसरे के अधिकार, कॉनसियस, अंतकरण, माफिरजमीर जो उसकी इज्जत न करे वो काफिर है।

वक्ता : जो आपने बताया वो सही बताया मैं इसपर ये बताना चाहता हूं कि कई बार चर्चा होती है तो क्या है रामायण में एक पात्र है विभीषण तो उसके बारे में बताया कि जो राम का भक्त था, भगवान का भक्त था जब भगवान जी वहां लंका में पहुंचे तो सब यहां तुलसी के पेधारी, विचारधारा सब कुछ थे लेकिन पूरे विश्व में आज भी कोई अपने परिवार में अपनी संतान का नाम विभीषण नहीं रखते। जब वो भगवान का भक्त था, धार्मिक था सबकुछ था वो भी जब राम के पास आया तो उसके भाई ने उसे लात मारी। वो पहले रावण को समझाने गया, मंदोदरी ने भी रावण को समझाया लेकिन वो नहीं माना और उसे लात मारी और कहा कि जाओ तो वो आकर जैसे भगवान राम के चरणों में मिल गए। लेकिन फिर भी लोग अपने परिवार में किसी का नाम उसके नाम पर क्यों नहीं रखते। सिर्फ इतनी बात बताई गई है कि वो देशद्रोही था उसने जो भी काम किया वो अपने देश के प्रति घृणात्मक कार्य थे तो उसे देशद्रोही की संज्ञा दी गई तो इसलिए जो आपने काफिर शब्द बताया वो इसपर लागू होता है तो इसलिए उसका नामकरण कोई अपने परिवार में बच्चों का नाम नहीं रखते हैं। तो मुझे इसपर खुशी हुई जो आपने टिप्पणी करके मेरे मन की प्रसन्नता को जाहिर किया। देश के प्रति भी अगर कोई ऐसी बात कर लेता है।

आरिफ मोहम्मद खान : भारत में ये बात साफ है कि भारतीय परंपराओं में आधारभूत आस्था का केन्द्र देश नहीं है। ये मैं नहीं कह रहा हूं ये गुरूदेव रवीन्द्रनाथ टैगोर ने लिखा है। भारतीय परंपरा में जो आधारभूत आस्था का केन्द्र है पहले आप खुद, फिर आपका परिवार, आप परिवार पर त्याग कर सकते हैं, मानवता भी नहीं है, जनपद, देश, मानवता, और सारी मानवता को त्याग किया जा सकता है आत्मन के लिए और आत्मन क्या है अन्तःकरण, जमीर, चेतना। अगर मैं किसी कारण को सही समझता हूं तो सारी दुनिया मेरे खिलाफ खड़ी हो जाए तो भी मैं उसके लिए खड़ा होऊंगा इसलिए गुरूदेव रवीन्द्र नाथ टैगोर ने अपने लेख में सख्त आलोचना की है कि ये जो देश प्रेम की बातें हो रही हैं ये भारतीय परंपरा के अनुसार नहीं हैं। हमारी तो अल्टीमेटली हम भारतनाथ

नहीं कहते हैं, हम तो जग्गनाथ कहते हैं। हम विश्वनाथ कहते हैं तो ये बिल्कुल सही नहीं है।

वक्ता : क्या इक्कसवीं सदी में हमें मीनिंग ऑफ लाइफ के लिए कुरान, भागवत, रामायण इसकी तरफ जाने की जरूरत है, अब जबकि 500 साल पहले पूरा यूरोप इसे भूल चुका है। मुझे लगता है कि इस बहस को मीनिंग ऑफ लाइफ और जीने की कला में कोई ज्यादा अंतर नहीं बचता। तो क्या ये 21 वीं सदी में प्रासांगिक है क्या? तो हम जितनी जल्दी इससे दूर हों और जनता को इससे दूर करें यही अच्छा होगा।

आरिफ मोहम्मद खान : मेरे ख्याल से यदि आपने एक–दो जुमलों पर गौर किया होता जो मैंने कहे हैं तो मैंने कहा कि मैं एक आस्था के रक्षक की तरह नहीं बोल रहा हूं, मैं एक विद्यार्थी हूं और मेरे नजदीक ये किताबें हैं। सच्ची बात ये है कि कुरान तो मैंने तब थोड़ा ध्यान से पढना शुरू किया जब मेरी जिन्दगी मुश्किल कर दी गई। इसलिए कि उस तबके से लड़ने के लिए अपनी जान बचाने के लिए मुझे कुरान और सर–सैयद से बेहतर कोई दूसरा माध्यम नजर नहीं आया जिन्होंने मेरी जान बिल्कुल खतरे में डाल दी थी। और आज वो लोग मुझे बुलाने लगे, मुझे सुनने लगे, मेरे भाषण में कोई बदलाव नहीं आया मैं आज भी वही बोलता हूं बस सिर्फ ये है कि मैं कुरान का संदर्भ दे रहा हूं। मैं यही बात यदि बिना कुरान का संदर्भ दिए कह दूं तो शाम तक तो मेरे खिलाफ चार कुफ्र के फतवे आते। जो मैंने काफिर का संदर्भ दिया। तो मैं इस चीज को इस नाते नहीं। मैं यहां जो कम से कम बोला वो इसलिए नहीं बोला कि कुरान में मीनिंग ऑफ लाइफ बहुत औरों से बेहतर है या फिर मीनिंगफुल लाइफ। मेरे नजदीक कुरान खुद अपने बारे में जो कहता है वो ये कहता है कि ये हिकमत की किताब है, विज़डम। नॉलेज घटती और बढ़ती है विज़डम नॉलेज से ली जाती है। हमें इन किताबों को उससे हमारा बिलंकर्ड हॉर्ड वाला एटिट्यूड भी खत्म होगा और मैं आपको बता दूं कि मैंने कुरान कब पढ़ना शुरू किया लेकिन मुझे हिन्दू शास्त्रों को पढ़ने का शौक था जब मैं

यूनिवसिर्टी का स्टूडेंट था तो लोग मेरे कमरे में आकर इतने शास्त्रों को देखकर ताज्जुब करते थे। तो मैं कहता था कि जब मैं पढ़ूंगा तभी तो जानूंगा कि मेरे मुल्क में लोगों की मान्यताएं क्या हैं। तो ये जो अंधविश्वासपन है उसे तो हतोत्साहित करना चाहिए लेकिन मेरे ख्याल से इसकी study as a sources of wisdom के तौर पर हो। क्योंकि हमारे यहां फाइनर आर्टस जो हैं जिसे लिबरल आर्ट कहते हैं तो ये भी लिबरल आर्ट का हिस्सा है। बोलने की कला, बात करने की, चीजों को समझने की। मैं अगर पूरी तरह से वैज्ञानिक हूं, मेरा मैनेजर वाला व्यवहार है, एक समस्या आई लोग खड़े हुए तो मैंने कहा तो मैं कहूंगा कि ये ठीक है ये लोग प्रेशर भी बहुत डाल रहे हैं तो इसे कर दो। अब मैंने कर दिया तो तीसरे दिन मुझे पता चला कि इसकी तो बहुत विपरीत क्रियाएं हुई हैं और चौथे दिन मैंने अयोध्या में ताला खुलवा दिया। अब जिस आदमी ने विज़डम को पढ़ा होगा या वो पहले दिन ही सोचेगा कि इसके प्रभाव ये होंगे इसलिए मैं आपके तर्क से बहुत सहमत नहीं हूं कि यूरोप ने ये किया है तो हमें भी ये करना चाहिए। नहीं हम अपने ज्ञान को नहीं छोड़ सकते। हमें जो चीज छोड़ने की है वो है हमारी हठ और अंधविश्वास और उसमें जरूरत से ज्यादा बस उसे दिमाग में समझने की जरूरत है।

रवीन्द्र कुमार पाठक : आरिफ साहब ने शुरू में एक उम्दा बात कही कि unexamined life is not worth living तो साहब ये तो सारी बातें खुली हुई हैं। शंकराचार्य जी ने कहा कि सत्यानित्र्य मिथुना कृति प्रचलितोयम व्यवहार। ये जो समाज में व्यवहार चलता है ये झूठ और सच मिलाकर चलता है। अगर हम समझने की कोशिश करें तो स्टाइल अलग होगी और बस केवल बहस करने के लिए करें तो वो अन्नतकाल तक चल सकता है।

असित दास : वो आपने चारवाक का नाम लिया था यदि हम रिलीजन, मैजिक सबको अलग–अलग करते हैं तो सैकेंड एग्रीकल्चर की हिस्ट्री 10 हजार साल पहले उसमें जो रिवील्ड रिलीजन या ग्रेंड रिलीजन कहते हैं उसकी हिस्ट्री और भी छोटी है। हिन्दुस्तान

में यदि चारवाक का नाम लिया तो बहुत सारी परंपराएं थीं। श्रवणिक परंपरा थीं तथा और भी कई थीं। यदि हम ग्रेंड रिलीजन से बाहर विश्व दृष्टि को देखेंगे उसमें मैजिक को हम रिलीजन में शामिल करेंगे वो पता चला कि मैजिक रिसीव किया रिलीजन ने तो हमारे देश में सैकड़ों आदिवासी लोग हैं जिनके अलग–अलग विश्व दृष्टि कर्तव्य भी देता है और अधिकार भी देता है; रिलीजिस ड्यूटी भी देता है। पर कुछ तो युनिवर्सेलिटी हो। पिछले कुछ सालों से एक यूनिवर्सेलिटी निकला है वो है नैशन और नैशन ड्यूटीज भी देता है और अधिकार भी देता है तो ये जो आज के संदर्भ में रिलीजियस बायोग्रेटी और एक तरफ हम डाइवर्सिटी की बात करते हैं और एक तरफ भयंकर इंटोरेलेंस भी चल रहा है। दूसरी तरफ धार्मिक विश्व दृष्टि के अलावा एक मार्डेनिटी का देन है नैशनेलिटी वो भी कुछ ड्यूटी देता है तो फिर नैशनेलिटी और रिलीजन के बीच कहीं अंतर्विरोध आता है।

आरिफ मोहम्मद खान : इसपे डिपेंट करता है कि आप नैशनलिज्म को कैसे परिभाषित करते हैं और रिलीजन को कैसे परिभाषित करते हैं। मेरे नजदीक तो कभी अंतर्विरोध आ ही नहीं सकता क्योंकि Nationalism is a concept which is associated with nation state. Nation state अब नैशनलिज्म नैशन स्टेट, अब नैशन स्टेट अगर डिक्टेटर राज कर रहा है तो फिर है ही यूज ऑफ रूट फोर्स। मान लीजिए कि डिक्टेटर भी छोड़ दीजिए बिना रूलर जैसे कि अकबर। अकबर ने अपनी जडें जमा ली वो अलग बात है लेकिन उसकी रूट तो हिन्दुस्तान में नहीं थी। तो फौज का सहारा तो लेना पड़ेगा ना। क्योंकि बिना फौज के सहारे तो नहीं होगा। even बिना dictator we will have to use force तो डिक्टेटरशिप को तो छोड़ दीजिए क्योंकि हिटलर, चंगेज खां और हमारे यहां भी गुजरे हैं ऐसे उन्हें तो छोड़ दीजिए पर जो बिना डिक्टेटर हैं उन्हें भी फौज का इस्तेमाल करना पड़ा। अब उन्हें एक तरफ रखिए अब आइए आप डेमोक्रेटिक स्टेटस यूएसए डेमोक्रेटिक स्टेट है, आप मानते हैं ना तो वो है ना। हम भी

डेमोक्रेटिक हैं। यदि अब अगर हमारे यहां कुछ लोग खड़े हो जाएंगे देश को तोड़ने के लिए हम फोर्स यूज करेंगे कि नहीं करेंगे? अमेरिका यूज करेगा कि नहीं करेगा that will be justified use of force if you are using the forces to suppress those who are trying to break your country, break your social harmony that would be justified use of force. As far as religion is concern and here I will refer Quran particularly religion में एक आदमी कुछ भी करे, फोर्स इस्तेमाल करने की इजाजत ही नहीं है। धर्म के मामले में सजा देने का इख्तियार है ही नहीं। मैंने इंटरनैशनल फोरम में भी ये बात कही है कि स्टेट कैसे क्रिएट हो सकती है, इस्लाम के अलावा। because state even if it is benian even it is democratic will survive only on the use of force. Religion आपको कहता है ला इकराह फिकरीन कतबैये.....in matter of religion no force can be used becasue right has been distinguish from wrong. और एक आयत नहीं है एक के बाद कई आयतों में कहा गया। एक जगह तो कहा गया नहा वमा अंत आलहे जब्बार... हमने आपको जब्बार बनाकर नहीं भेजा, जब्बार मतलब कि जब्र करने वाले को। जब्बर का अर्थ है बादशाह। यदि आप सब्जी काटने वाले चाकू का इस्तेमाल गला काटने के लिए करेंगे तो समस्या तो होगी ही। आप रिलीजन का इस्तेमाल कर रहे हैं इस्लामिक स्टेट बनाने के लिए। इस्लामिक स्टेट, इस्लाम जब आया है तो इम्पायर का कॉन्सेप्ट था, स्टेट का कॉनसेप्ट नहीं था। और इम्पायर के राजा को कहा जाता था जब्बार और कुरान ने कह दिया वमा अंतालई जब्बार। हमने तुम्हें रूरल बनाकर नहीं भेजा है एक जगह कहा फज्गकिर..... आपको हमने नसीहत करने के लिए भेजा आप उपदेश किए जाइए। हमने आपको कानून लागू करने के लिए नहीं भेजा है। हुकूमत के दो और काम होते हैं to keep watch on people उसके लिए लफ्ज है हफीज़ to dispose the affairs of the people उसके लिए अरबी में शब्द है वकील। कम से कम 20 आयतों में आ गया हमने आपको वकील नहीं बनाया, हमने आपको हफीज नहीं बनाया। फिर दूसरा प्रोफिट की एक हदीस है। हुबुल वतन अर्थ जुजीलिमान अपने वतन से मोहब्बत करना ईमान का हिस्सा है, तो

कैसे कॉनफलिक्ट हो जाए। स्टेट के लिए फोर्स जरूरी है। यहां तक कि एक लोकतांत्रिक देश के लिए भी। रिलीजन में फोर्स का कोई कॉन्सेपट नहीं है only you can be puning यहां पर उसके लिए शब्द इस्तेमाल किया है अजलम मुस्ममा.....इस दुनिया में तो आपको लॉग रोप है, हमने तुम्हें सीधा रास्ता दिखा दिया है। इम्मा शातरन ... अब तुम्हारा दिल है कि तुम उसके मुताबिक चलो और चाहे उसको डिनाइ करो। ये तुम्हारे ऊपर है अब कोई उसे सजा दे ही नहीं सकता। अब जब मुसलमानों में इम्पायर बिल्डिंग शुरू हुई तो क्या करते हैं यहां पर मैं निष्कर्ष कर रहा हूं। इब्ने रोस्त was a great philosopher और उसके जो रिमार्कस हैं वो चार हैं तो जाहिर हैं कि वो उसने मुस्लिम समाज को देखकर ही कमैंट किए और इब्नेरुस्त की गिनती यूरोप में भी चौथे नंबर पर होती है। प्लेटो, सुकरात, स्टोरिस के बाद होती है। तो आज की तारीख में भी यूरोपियन यूनिवसिर्टीज में 500 से ज्यादा स्कॉलर होंगे जो पीएचडी कर रहे होंगे तो वो इतना बड़ा नाम है और उन्हें वेस्ट में इबरोज़ कहा जाता है। उसके दो जुम्ले सुन लीजिए उसने कहा कि अगर आप जाहिलों पर हुकूमत करना चाहते हैं तो अपनी हर ख्वाहिश और दावे को मजहबी लिबादे में पेश करिए। दूसरा उसने कहा जाहिल माशरों में मजहब की तिजारत ज्यादा होती है। तो हमारे हुकूमत करने वालों की समझ में आ गया कि ये आसान तरीका है लिहाजा इन्हें जाहिल ही रखो। that explains why we have so many illiterate people इस्लाम में नमाज फर्ज हुई है 13वें साल में और नॉलेज हासिल करना फर्ज हुआ है जिस दिन प्रोफिट की प्रोफिटशिप शुरू होती है उस दिन फर्ज हुआ है और मुसलमानों में इतनी बड़ी तादाद है जो कि पढ़ना–लिखना नहीं जानती है। ये कैसे हुआ? क्योंकि उनकी समझ में आ गया कि इनको जाहिल रखो तो फिर इनपर शासन करना आसान है।

रवीन्द्र कुमार पाठक : thank you you listen and now its up to you whatever you like to contribute in this such type of discourse to use. But it is very good discourse in my life. बहुत सारे सवाल आए और बहुत बेहतरीन ढंग से बिना किसी पर्दापोशी के जो

बहुत टेढ़े राजनैतिक सवाल भी आए उसका इससे बेहतर जवाब क्या हो सकता है कि साहब से ये सिखा दिया। मैं तो डर रहा था कि कहीं बड़े भाई ये न सिखाना शुरू करें कि जो नहीं आता वो सीख लो। how to mix up state, relation and other items and make some new formula to rule over such people befouling them in a nice way. तो ये इतनी बेहतरीन ढंग से जो उम्मीद थी उससे भी बेहतर बात आई। लेकिन फिर भी मैं दो–तीन बातों की और निष्कर्ष के तौर पर कहना चाहता हूं। एक–दो सवाल हैं अभी युनिवर्सिटी का ये कॉनसेप्ट भी बड़ा खतरनाक है क्योंकि यदि सारी मैरिट यूनिवर्सिटी को देंगे तो डाइवर्सिटी का क्या होगा। अब दिक्कत ये है कि हम युनिवर्सिटी भी चाहते हैं और डाइवर्सिटी भी चाहते हैं, हमारे एक दोस्त हैं उन्होंने तो उसके लिए अपनी एक किताब की दुकान खोल दी तो उनका तो नाम ही है मल्टीवर्सिटी। तो यूनिवर्सिटी से ये मल्टीवर्सिटी का कॉन्सेप्ट भी हमने ही ईजाद किया है। और दूसरी बात जो मैं कहूं कि इतने अवेयरनेस के साथ कि un examiend life is not worth living और आरिफ भाई ने बताया कि केवल ट्रेडीशन कुरान की बात नहीं है। हमारे यहां भी बौद्ध परंपरा में 'अर्थ दीपो भवा' है, हमारे यहां 'उधरेदात मनातमानम' हैं और रह गई बहुत सारे स्टैण्डर्ड हैं और रह गई हिन्दु सनातनी ट्रैडीशन तो हमारे पास तो हमारे पास तो इतनी सारी वैराइटी है कि हर चीज का कॉउन्टर है। जो आप चाहें हमें क्या जरूरत पड़ गई है भगवान की और हम तो सांख्य दर्शन गीता लेकर चलते हैं, सबसे तो बात ये है कि मैं अपनी और से तो इतना जोड़ना चाहूंगा कि ये जो जन्नत वाला मामला है ये तो आपका अपना अनुभव है, आप अच्छी तरह से राजनीति भी जानते हैं। तो ये जो जन्नत है वो तो औरतों के लिए है ही नहीं। अब सवाल ये है कि इतनी बहस चला रहे हैं भई अब वो चाहे जन्नत हो, स्वर्ग हो या हैवन हो जो भी हो उसके फेरे में औरतें क्यों खड़ी हों, ये सवाल नहीं खड़ा होता, बुनियादी सवाल ये खड़े कर दिए जाते हैं कि दुर्गा, सब सत्ती के तीन पार्ट हैं तो ये उत्तम चरित्र वाला है वो जो दुर्गा सवाल खड़े करने वाला है वो डिस्कशन, डिबेट में नहीं आता। अब ये सुर–असुर जो दोनों रिश्तेदार हैं

उसको लेकर राजनीति खड़ी हो जाती है क्योंकि राजनीति उसी को लेकर खड़ी हो सकती है। दुर्गा ने जिस वैल्यू का सवाल किया है कि तू बेहूदा है तो मैं भी उसी बेहूदगी से जवाब देने के लिए तैयार हूं और ये कहा कि मैंने इसके गलत समझा, मैंने नादानी में ये तय किया। भई जो ताकतवर होगा उसका शासन होगा तो ताकतवर का शासन होगा ये उसने कोई बुद्धिमता भरे फैसले के रूप में नहीं कहा। ऐसी बहुत सारी बातें हैं लेकिन अच्छी बातों से आज की जो सस्ती वाली राजनीति खड़ी नहीं होती है। अब ये हमारे ऊपर निर्भर करता है कि हम कैसी राजनीति आगे ले जाना चाहते हैं और इस नैशन को और इस विश्व को किस रूप में देखना चाहते हैं और ये खुला तो है ही कि जितनी पुरानी चीज है अपनी बुद्धिमता का प्रयोग किया जाए और जो नाटक लिखने वाले होते हैं वो बड़े उम्दा किस्म के लोग होते हैं तो कालिदास ने कहा कि जितनी पुरानी चीजें हैं वही सही नहीं हैं इसलिए उसको इसलिए न तो अपनाया जा सकता है और न ही नकारा जा सकता है 'पुराण मितये व न साधुसर्वम न जात सर्वम नववितमंडम' जो नई चीज हो गई है वो सब नकारने योग्य नहीं है और जो पुरानी चीजें हैं वो स्वीकार्य नहीं है तो हमें सबके लिए अपनी बुद्धिमता का प्रयोग करना चाहिए उसके बाद ही निष्कर्ष निकालना चाहिए। और जीवन है तो राष्ट्र है, जीने के खिलाफ तो राष्ट्र नहीं हो सकता। एक कुर्बानी कोई दे सकता लेकिन किसी को मजबूर नहीं किया जा सकता कि आपको कुर्बान होना है फिर वो हत्या हो जाएगी, वो कुर्बानी नहीं रहेगी।

तिथि : 7 मई 2016

स्व. श्रीमती उषा परिख की स्मृति में : बुवेन विविर श्रृंखला–2016

(Dedicated to the Memory of Usha Parikh Buven Vivir Series 2016)

THE STATE OF WORLD AND OUR RESPONSIBILITY

व्याख्यान–सामदोंग रिंपोचे

स्थान : इंडिया इंटरनेशनल सेंटर

Most respected Professor Suresh ji, the president of this gathering. Many of my dear friends who have very long standing friendship with me such as Dr. Trikha (Unclear), Gupta Ji, Prashant and Ajay; many other close friends. As mentioned in the beginning; I have been strictly instructed that I shall speak in English- a language which I never had a chance in this life to learn nor do I have any appreciation of love for it. It was a compulsion as a refugee would need to go around and communicate with people; I had to pick up a few words in broken English for emergency purposes; but I use it outside India mostly; sometimes in South-Indian gatherings mostly. In north India; I feel much convenient to speak in Hindi; although Hindi is also my own language but difference is the alphabet of Hindi and the alphabet of Tibeti language are same so it is not an A,BC, so this was defense on non-competitive. (Unclear)I do not have any confidence that I will be able to put across what I wanted to say clearly to you inspight of that I will try to say something through English language. And if you feel bored; you are all free to go away; do not hesitate or there is no formality; no need of formality!

The state of world and our responsibility, this is a very vast subject and within 40 minutes of discussion, I don't think you will be able to gain with it sufficiently, not speaking of comprehensively but I will try to touch some points for consolation and for more thinking on these points. State of world of today has so many challenges, each one of the challenges are in reality threatening the basic essence of the globe; the entire world. Each challenge has the capacity or capability to destroy entire of this small planet called the

Earth! But I have also been asked by the organizers, I should talk more about the environment and climate change and eco-system on this earth. Before coming to that issue; I very briefly would like to name the challenges we are facing today. The first and foremost challenge is the discriminatory increase of human population, many people say this is a good result of modern health facility; that more people have increased so therefore the population is also increased. I don't know how much this statement is true. It will need to be examined. The longevity and the quality of life; they are two different issues and I think the quality of life is more important than the span of life. I'll not go into details, I'll just refrain from these. The second is the gap between "have's" and "have nots", the gap between 'poor' and 'rich' are increasing instead of decreasing. As much as growth of economy, growth of wealth, logically it should reduce the gap between the 'poor' and 'rich'. The poor should be alleviated and then not become as equal with the range but they should be able to remove the sense of poverty and we are not able to do this. As much increase of the wealth the psychological urge will become more and more intense and today there will not be such poor people who doesn't have something to eat or something to wear, off course there are many people who are still dying due to starvation but they are not many but on the contrary even well to do people are also have a sense of poverty due to comparison and due to the wants we have created, we have wants imposed onto the people by the modern so called civilization, so this is the second challenge and it impacts everyone on their being. The rich people are working day and night, they get stressed and the unhappiness to increase their wealth furthermore and the poor fighting day and night to earn; to meet their ends just to survive. So therefore, this is a great challenge. And the third is the increase of violence and killing. Last century, two declared world wars have been fought, millions of people have perished as a result of these wars. Apart from the declared wars; there continued undeclared wars and conflict between nations, ethnic people and many other groups particularly the modern development of the idea of so called multi-party democracy. Democracy is a very good thing but when it becomes multi-party competitive and it causes many evil things. For example, India has a great constitution and the constitution addresses to many things,

concept of untouchability and ethnic groups; so on and so forth but the multi-party relation system has saw to it that the division sum of the people must be maintained, preserved and the hatredness between them is also to be preserved. Through that they are able to maintain their so-called vote banks and the people can be put in block on the name of caste, on the name of regionalism, on the name of language, on the name of community; so on and so forth. So the real harmony for some of the people become difficult to achieve, what the constitution has completely dismantled or still alive. So the direct violence; structural violence; violence is involved in everything! Terrorism and unnecessary killing. In the past violence was used for achieving some particular territory, power or something but today the violence is a 'trade'! It is for the selling of different weaponry products. So therefore, there is no hope to put an end to the violence! Everyone talks about we shall control, we shall never tolerate the terrorism and over the world we join together to fight against the terrorism but terrorism is a very good market for the weapon industry! And who will put an end to that? Each state; each nation are putting more and more money in the industries and production of the destructive weaponry. When they are produced they are in market; the market is on a level and it is used. Using is? It is not like a cracker like used in the Diwalior Holi. It has to be used somewhere to kill! Therefore it is really frightening when we see the situation and the majority of the states and governments are being directly or remotely controlled by this kind of industries. So there is very little hope for the reduction of violence and unnecessary killing, killing the schools; killing the hospitals, all the innocents are. It appears to be no one is safe nowhere! How much fear we have created. Each day I have to experience the unpleasant. Almost each day I go through the airplane and the security check. Everybody suspects you something; terrorist! And you have to remove your shoe and the rest I need not remove my shoe when I enter into a church but I have to remove my shoe to go through the security check and the Sikhs have to remove the turban through the security check. So all these kind of things because of the feeling of insecurity due to increase of the terrorism or the violence. Possibility of war and the fear of war is intentionally maintained between the nations so that they would remain faithful and good consumers

of the weapon industry people. Some weapon has been sold to one nation and immediately they will tell the other nation; “your neighbor has purchased from us this this this and now you have no encounter to that.” They will tell you; “we have more sophisticated more advanced weapons”, they will keep to them and sole and they would again say to the other nation, “your neighbor has purchased this and this from us, what you will do?” So by this way the weapon market is being perpetuately maintained and increased.

And it is not a small threat; even by President of atomic weapons; the entire group can be grown up. This is not theoretical, everyone knows about that. I don’t have present statistics but I think 10-15 years before; I read somewhere statistics and that says -“the atomic or hydrogen bombs which are being produced and stored in the various nations can blow up this planet earth 23 times!” So we are sitting on that storage. Then after that the fourth is ‘environmental degradation’. Environment degradation is a challenge to all the living creatures on this planet earth. No discrimination between nations or between races or between human beings or no human beings, each one of the living creature on this earth is being threatened due to the environmental degradation. I do not remember the statistics and need not to reveal all the statistics, it is available everywhere. Now scientifically; so called scientifically it is accepted by everyone; the planet earth is under danger and the global warming is one of the thing! I don’t think we need to talk about this, it is absolutely visible and experiential each day, almost each day in the news item you will find earthquake, tsunami, flood, drought, fire in the jungles; so and so forth. So called natural calamity but it is man-made not natural. Humans have created all these problems. Every life; for sustaining the life, the basic requirement is water and air. We can remain without food for several weeks. Now there are hunger strikes who remain for about 100 days without eating any food but still they are alive. I still remember Tara Singh passed away on a hunger strike of 103 days or 102 days. So this much long we can survive without food. Without water I don’t think more than 24 hours or 48 hours something like that. And without air; few minutes! So today we don’t have clean water to

drink and clean air to breathe. I myself remember; in the early days in 60's; I go anywhere through the train and on the stations we go to the water tap and take water from there. Now no one dares to drink from that tap water and again they have to pay to the multi-national companies for a bottle of drinking water. Still there is no assurance that it was clean or it becomes psychologically that we think it is clean! So this is how situation is! And then putting mask on the mouth is also increasing. People are hesitant to breathe in the open air.

It is not far away that we might have to carry a pack of oxygen in our bags or purchase from somewhere in Japan. There are breathing booths have been created in the market! Three times you breathe in it and come out. So this is a rare situation. All this increase of population; gap between rich and poor, increase of violence in all kinds, environmental degradation which threats the survival of all the species and finally the last challenge is more money! The so called rich traditions; they are considered to be source of salvation; source of happiness for all living beings and it is a source of harmonious living and religion means something superior than the in critical behavior of life. I think the religious traditions are already disappeared from all sorts. But unfortunately when the essence of religions disappear; essence of religion, my great friend Dr. Pannikar used to refer the 'religiousness'! The 'religiousness' has disappeared! What remain today is the 'religiosity' and the 'religionism'! Religiousness has disappeared. No one knows what is religiousness, but religiosity, the church; the temple; the rituals and the groups. Their religion, my religion is superior and my religion along is the real religion. So the institutional names of the religion; the groups of the religion, which remain after the disappearance of religiousness has become a very handy and powerful source of division. Conflict; fight and violence. When the medicines become poison, so I always refer to this fight culture in the world and now it is quite clear in such case, what is our responsibility! We have to decide now; what is our responsibility in the light of the challenges which we are facing.

I would use the expression 'duty' in state of responsibility. 'दैत्व', 'कर्तव्य'. दैत्व-उत्तरदैत्व is a good word but , 'कर्तव्य'is more specific word. "Have to do!" Responsibility is something in relation to others I have to answer to my parents or teacher or answer to my people; something like that but 'कर्तव्य' is not for answering to someone would ask question to you, but voluntarily you are on to nature, you have to perform that 'कर्तव्य'. 'Sudama' is more appropriate. 'Sudama' means ones own basic nature is 'naturality' there is no artificiality 'सहजता'. And when you go beyond that; your own nature then you become artificial. As soon as you become artificial; your authenticity is lost. You have no authenticity and you have no 'truthfulness' in your personality. So for the foregoing challenges; we have to decide what is our 'sudama'? We are not going to go into details, to sum up I would say- "As a human being who has the power of discrimination, the power of discrimination; the intelligence; which makes us different from the animal world and we must use our discriminative power and most important duty of ours is to dissociate ourselves as individual for contributing to these challenges that are put." We must not be a party to make an increase in the population, increase in the gap between rich and poor, increasing the violence and contributing to the environmental degradation and also contributing the so called religious intolerance.

In modernity the regut (word unclear) is big and contradictory, the expression 'religious intolerance' is a very vague language. In reality anyone is religious minded; he or she can never be intolerant. Someone is intolerant, itself is the greatest evidence, the person is not religious minded. It's not the religious person. So there cannot be any religious intolerance but today's language is usually using 'religious intolerance', in the recent days I heard whether India is increasing the intolerance or decreasing the intolerance that is a subject of debate. So there is a religiousness, there is no place for intolerance. That is by nature and similarly the 'tolerance' is a very big word. Tolerance means no respect, it is not assert able but tolerated. Accepted and to be tolerated are entirely different

connotations. I am tolerant to some other religion means I have no respect for that but I do not condemn because I have to be tolerant. So this is also a modern way of communicating. So tolerance in reality is not enough, we must have a respect to all religions. Off course each one has to choose once own suitable religion and all religions are equally sacred. No religion is more superior and no other religions are inferior or other religions are equally coming from the authentic source or divine source and if you produce it properly it will get you in the summation or religion (unclear). That's why Gandhi ji's language is very-very popular language always. I find Gandhi alone outstanding. When he coins a word, it is so perfect! And it covers the entire meaning in a small word- 'SarvadharmaSambhaav'. All religions I must give equal respect, so that is the real meaning if we need to make a connotation to the word 'secularism', 'sarvadharmasambhaav' is the real word for it. Not anti-religion or against religion. Off course anyone can be non-religion or non-believer, this is perfectly alright. Non-believer does not mean he/she must condemn all other believers, a person has right to be non-believer and he or she must respect the single right to believe for the other people and that is the only way to remain in equality in clear sense.

So I have mentioned five great challenges which we are facing day in and day out and our 'Sudama' is to dissociate ourselves for contributing for increasing these challenges, number one and secondly according to our capacity, according to our ability we must oppose to these challenges, we must think about how I personally can dissociate and also can do something to reduce or to stop these challenges. I know a single individual may not be able to make any visible difference and may not be able to reverse the course or to change the society so easily. But my dear friend, the great philosopher Jiddu Krishnamurthy used to say- "even you are unable to swim against the current you can very well step in out." This is a good metaphor. To swim against the current is difficult. All the individuals may not have the capacity to do that but to dissociate from that flow we can come out of this thing, in our own language- "तठस्त हो जाना"! We can come out of that flow, and that is possible so we must think on that.

As I had said that we must oppose the evil things, I do not suggest, I am not recommending that everybody should become an activist, I do not have an objection if anybody becomes an activist but to become an activist needs lot of inner preparation. Unless and until your mind is so pure you will not be a qualified activist. What I am trying to say is to express our disagreement peacefully and respectfully. Gandhi had a very popular word 'savinay' – it means no arrogance, no conflict, without conflict if you are able to convey this disagreement that is absolutely important otherwise keep quite when you did an injustice, you become parted because your ridgness (unclear) to the injustice and still you are keeping quite means you have some approval, a silent approval. In the ancient Indian culture approvers are usually without any word, if somebody invites you for dinner tomorrow, if you say I am not able to come then they say its refuse if you don't say anything then you have accepted so during Buddha's time, Buddha was invited for something he accepted by keeping silent. So we must express our disagreement to all the level, the person is not in agreement to this action and secondly we are able to create a point of pondering, point to ponder and think to the listener through reaching some awareness could be arising. So this is the latest hook. And at the same time the like-minded people like today will come together and discuss these problems over and over again and find out some solution.

Coming back to today's basic issue the environment, I will take few minutes for this. Environment has two portions, the environment of the planet earth or the basis of this universe or the environment of leaving future on this earth and both of these environments are interrelated, inseparably interrelated. The degradation of outer environment it affects your health, your mind and similarly the degradation of your inner environment is affecting the outer environment of the earth or of the universe. What is environment? I don't know, I am not any environmentalist, I have not studied the modern concept of environment but in our ancient, the ancient Indian 'shastra', knowledge, the environment is the composition, interrelatedness and balance of the parts of the whole, parts of the whole means parts of the planet earth or the parts of the entire galaxy or the

parts of any individual. Each solid matter is composite of seven materials according to Buddhist science. Among the seven materials the four basic elements- the water, the air, the earth and the fire, these four are being called basic element. 'Bhoot'- bhot does not mean any ghost! Bhoot means becoming or any source of becoming. Budhaya, budh; is a source of becoming and from that it becomes Bhutaya. Upon these four basic elements, the fifth is the 'voidness', the space 'aakash'! Aakash does not have any solid thing so we do not count it among the composition materials and the next composition material is the shape, the touch, smell and the taste. Sound is not necessarily a part of any solid composition because sound comes out when two solid composition touch each other, otherwise there is no sound but the taste, the texture and the smell and the shape to be visualized, all these things; the taste to be experienced, these are parts of the solid component. The basic solid components- air, water, fire and earth, which make our body and which make planet earth are by nature opposite things. The fire is in great power; it will dry up the water, it will burn the earth and it will dispel the air and then it is a destruction but when it remains in proportionate, balanced and in compatibility with each other it becomes supplementary to each other. And then this balance is destroyed then there is destruction. Our body, all these elements, the four elements and four other things remain in cooperation interdepending, responding each other properly, and supplementing each other properly we are alive and we are healthy. When there is little bit of imbalance we become unhealthy. Then these components disintegrate, we are dying because then it becomes incapable of hosting the consciousness; the consciousness has to leave this body and search for some other body, then there is next birth; you live in the next birth, if you don't live in the next birth then it is the end! So this balance is very difficult to maintain and if we do not interfere, this composition and imbalance and live near to the larger component of these things, near to the nature then environment is ok. So we have interfered with the environment, not only by interfering by trying to control and make things according to your need so in this sense it is called the entire environment. So now the present situation according to the discussions come out, last year in france, it appears to be larger disasters, even we do something very positive today,

it might be too late but inspight of that no one is ready to do some positive thing. After rio de jenerio and after the Tokyo, what called the agreement or other documents and this is not binding, the protocol is an unbinded protocol. My friend Krishnamurthy had said once in New York, 'the nations can never be united!' The idea of nation itself is a cause of division. So the so called United Nations cannot do much thing. Even this protocol is exclusively saying it is unbinded and so on and so forth, it is unbinding; I don't know how far we will be able to repair the damage. Year 2014, I was in US and we were seriously discussing about the environment issue, and one of my friend not very old; younger than me maybe in early 60's, he very casually said to me- 'yes all this challenge is there but I can assure you, during our lifetime; nothing drastic is going to happen!' That is how this person was and as if we have no responsibility; no duty for the coming generation and if my life is survived it is done. An American leader said that today's situation is very alarming and dangerous; we accept that, but the American people's way of life cannot be compromised. He said this publically and the entire world's people kept mute as if they said yes you are the Excellency; you are telling the truth. So these are the situations of the world, what we shall do. As an old person who has no knowledge and experience of modernity, have some funny suggestions to put before you, since you have asked that 'what is our responsibility?', 'what can we do so in this matter?' I respectfully or maybe my stupidity; I suggest what we individuals having no power in the decision making policies. The world is full of contradictions. Today everybody says that we are in the stage of democracy and people are agreeing and people are making decision. But in reality; the 'people' are the most powerless and they have nothing to do in the decision making! The decision making is only by few and according to their own immediate benefits, immediate money, how many crores will go to their pocket? That is the criteria of decision making, so therefore we have to think; since we are powerless and we are not able to change the course of the world or the nations but still we have individual duty, 'daitva' or 'kartavya'!

This is simple, there are five things which may constitute this constructivation (unclear) and other things which are preventive or different form (line unclear). The first we should do, plantation work, plant more trees, protect more trees that any individual can own a small garden; one or two trees and which may be preserved, if you don't have any ground or land; even in the flowerpots; you can plant something, you should really contribute something. And the second- 'water conservation'. Water conservation right from your bathroom, recharging; harvesting and particularly the new houses, the modern houses and in the construction sites, we must try and make it such a way that the roof water goes to the underground to recharge it. Electricity we are using much-much more than we need. I was constructing the classrooms, the library of Sarnath and we discussed things and the engineer suggested, how much bulbs or rods are to be fixed in this? So he said that for this small amount of work you will not get a good contractor, for a good contractor, we must increase the budget and for increased budget, the points of electricity, it is a permanent consumption. And apart from that the street lights, they are not according to the need of the street, it is according to how much they can spend. So on one hand we are always saying that there is a scarcity of power and on the other hand we discretely waste it. And we can also reduce taking tinned or preserved food, not only for the health reason, also for the environmental reason. And finally; all this what I have said above can be implemented if we have a determination and a proper way of localization of it. Localization is the key to preserve the environment. And as long as you are not able to localize, then the question of environmental protection is not possible. I am sorry I have bored you quite sufficient and with a word of apology, I will conclude my explanation here. Yes in order to make this positive and referring work for the environment, the first requirement is to improve your inner environment. Inner environment is the negative emotions to be reduced, to be controlled and positive emotions are to be increased and to be maintained and cultivated. Compassion, wisdom, if you are careful about these two then you will not be harmful to anyone and that will reduce the violence, that will reduce all our challenges and it will empower you for facing the challenges with a sense of 'satyagrah', 'sense of satyagrah' means you wil not contribute to them, you will be

separate or dissociate from them and the same time you will oppose as far as possible; oppose with sense of love and compassion. In this way you can contribute a great deal and you can improve awareness. Improve the awareness of people; and then whosoever you meet we shall talk about this; discuss about this and you must find what ‘we’ can contribute in the preservation of environment of this nation and for that matter the entire world! And for that I again come back to Gandhi’s idea; to do anything we need the purity of mind – ‘chittshuddhi’ and we need purity of the resources –‘saadhanshuddhi’. If you have chittshuddhi and saadhanshuddhi, purity of mind and purity of resources, whatever you will do, I can assure you, you will succeed! And otherwise if you are impure or ‘ashuddh’, then your efforts may not bring any positive result. Thank you very much for your attention!